※ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ※

श्रीचैतन्यचन्द्रोदयभाषा



कृष्णदास

(कुसुमसरोवरवाले)

* श्रीश्रीगौरहरिर्जयति *

प्रकाशितग्रन्थसंख्या-१४५

चैतन्यचन्द्रोदयभाषा

(हिन्दीभाषामें अनुदित)

कुसुमसरोवरनिवासी

कृष्णदास-कृता

अनुवादक

कृष्णदास

(कुसुमसरोवरवाले)

वर्त्तमाननिवास

(वृन्दावन)

सम्बत् २०२५

गौरपूर्णिमा

न्यौछावर २)५०

scanned, PDF created and uploaded by
G. Narasimhadas (GND)

समर्पण-पत्र

परमाराध्य, उपजीव्यचरण श्रीश्रीराधारमणचरणदास (बड़े बाबाजी) महाशय के कृपापात्र, संकीर्त्तनरस-विह्वल, निरन्तर अष्टसात्त्विक भावावली से विभूषित, नित्यधामप्राप्त, श्रीश्रीगौरगुणावली से जगजन हितकारी, हमारे गुरुदेव, (श्रीश्रीरामदास बाबाजी महाराज) के पुनीत स्मरण में समर्पित ।

प्रकाशक—कृष्णदास, कुसुमसरोबरवाले, वर्तमान निवास-वृन्दाबन उ० प्र०

मुद्रक—ब्रज बिहारीलाल, शर्मा, बी. एस-सी., एल-एल बी. विद्यालय प्रेस, वृन्दाबन ।

विशिष्ट-वक्तव्य

''चैतन्यचन्द्रोदय'' नामक नाटक महाकवि कर्णपूर कृत संस्कृत का सुप्रसिद्ध नाटक है । संस्कृत के प्रेमियों तथा विशेष कृष्णभक्त जनता की यह चिराभिलषित आकांक्षा थी कि इस अनुपलब्ध अथवा दुष्प्राप्य ग्रन्थ की जन-जन के लिए सुन्दर-तया उपलब्धि हो, किन्तु यह अभिलाषा दुरूह थी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से सटीक-मूल देवाक्षर में प्रकाशित होने के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया ।

कृष्णानुरागी जनता कर्णपूर कृत महाप्रभु चैतन्य लीला का वर्णन पढ़ने को आतुर थी, इस अभाव की पूर्ति चैतन्य-महाप्रभु पादपद्म सेवापरायण, कृष्णभक्ति रस संलुप्त, हृद्यायन पूज्य श्रीबाबा कृष्णदास जी ने स्वास्थ्य की बाजी लगाकर की है । प्रसन्नता की बात यह है कि आपने उसका हिन्दी-अनुवाद सरल भाषा में कर दिया है जिससे इस ग्रन्थ की उपयोगिता और भी बढ़ गई है तथा हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि इस अनुवाद से इस नाटक का प्रचार और भी अधिक शीघ्रता के साथ होगा तथा श्रीचैतन्यमहाप्रभु के स्वरूप का वास्तविक, पार-मार्थिक रूप सर्व सुलभ हो जायगा । कविवर कर्णपूर की संस्कृत-भाषा सम्बन्धी मधुरिमा का आस्वादन भी होगा । ऐसे सुन्दर प्रयास के लिए संस्कृत जगत् चिरकृतज्ञ रहेगा । आनन्दकन्द कृष्णाभिन्न गौरचन्द्र की भक्ति मन्दाकिनी में गोता लगाने वाली भक्त जनता आनन्द विभोर हो उठेगी ।

शुभेच्छु—

फाल्गुन शुक्ला एकादशी

हरिदत्तशास्त्री

सुघ्नोपघ्नाभिजन: वेदान्ताचार्य, काव्यमार्तण्ड, एकादस तीर्थ

दीनशरण जी का स्थान

(पत्थरपुरा, वृन्दाबन प२)

सम्मति :—

मैंने "श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटक" का हिन्दीअनुवाद पढ़ा। इसके रचयिता श्रीकविकर्णपूर गोस्वामी अपने समय के जाज्वल्यमान भक्त-कवि रत्नों में थे। आपकी रचना से सर्व-साधारण भक्तवृन्द लाभान्वित नहीं हो सकता था इस विचार से ब्रजभूमिवास-रसिक, वैष्णव-समाज के कण्ठहार, षड् गोस्वामि-कृत तथा अन्य आचार्यकृत अप्रकाशित-प्रकाशित अलब्ध रचना उद्धार में तत्पर श्रीकृष्णदास बाबा जी कृत हिन्दी-अनुवाद सर्वजन गम्य होने के कारण साहित्य मर्मज्ञ भक्तवृन्दों को लाभान्वित करेगा वहाँ हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा द्वारा हिन्दी जगत के गौरव वृद्धि में सहायक होगा।

"चैतन्यचन्द्रोदय" १० अङ्कों में पूर्ण हुआ है यह उस कवि की कृति है जिसकी आद्यवाणी —

"श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसि महेन्द्रमणिदाम।
वृन्दाबनरमणीनामखिलमण्डनं हरिर्जयति"॥
रूप में प्रस्फुटित हुई थी।

गौराङ्गस्वरूप एवं भक्ति का मुक्ति से श्रेष्ठत्व वर्णन आदि प्रसंगों को पढ़कर पाठक आत्मविभोर हो उठता है। अङ्कों के नाम-स्वानन्दावेश, सवावतारप्रदर्शन, दानविनोद, संन्यासपरिग्रह अद्वैतगृहविलास, सार्वभौम अनुग्रह, तीर्थाटन, प्रतापरुद्रअनुग्रह, मथुरागमन, महामहोत्सव हैं जो कथा भाग से सम्बन्धित हैं।

यह नाटक अपने में अद्वितीय है क्योंकि जहाँ नाटकीय तत्वों का सहज आनन्द उपलब्ध होता है वहाँ साथ ही साथ आध्यात्मिक तत्व का परिशीलन भी उपलब्ध होता है। ऐसी

कृति के निःस्वार्थ प्रकाशन से बाबाजी की साहित्य-निष्ठा एवं साहित्यचिन्तनधारा दोनों की महनीयता सुस्पष्ट है।

श्रीबाबा जी के द्वारा शीघ्र ही अलङ्कारकौस्तुभ सटीक हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित हो रहा है। यह ग्रन्थ भी अलङ्कार सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। रासरसेश्वरी श्रीराधा-रानी से विनीति प्रार्थना है कि बाबाजी को आरोग्य प्रदान करें जिससे वे उत्तरोत्तर हिन्दी साहित्य की सेवा में लगे रहें।

आशा है विद्वान तथा भक्तवृन्द इन कृतियों से अवश्य लाभान्वित होंगे।

डा० वासुदेवकृष्णचतुर्वेदी

नव्य व्याकरण-साहित्य-धर्मस्मारक, पुराणेतिहास-सांख्य-योग-वल्लभवेदान्ताचार्य एम. ए. सा. रत्न।

अध्यक्ष

संस्कृत विभाग

इन्स्टीट्यूट आफ ओरियण्टल फिलासफी

वृन्दाबन।

गौरः कृष्ण इति स्वयं प्रतिफलन् पुण्यात्मनां मानसे
नीलाद्रौ नटतीह संप्रथयते वृन्दावनीयं रसम्।
आद्यः कोऽपि पुमान् नवोत्सुकवधूकृष्णानुरागे व्यथा
स्वादी चित्रमहो विचित्रमहहो चैतन्यलीलायितम्॥
(अंक १०।४२)

———

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयताम्

श्री श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक की अवतरणिका

श्रीश्रीराधारमणदेवो जयति

"चैतन्यचन्द्रोदयस्य कविकर्णपूरकृतेः ।
हिन्दीभाषाख्या प्राग्भवा कृष्णदासप्रकाशिका ।।"

करुणावरुणालय प्रेमावतार भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभु की असीम अनुकम्पा से तदीय लीलावर्णनात्मक "श्रीचैतन्य-चन्द्रोदयनाटक" नामक अनुपम ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित होकर प्रेमी-जनता के समक्ष उपस्थित हो रहा है। मूल-ग्रन्थ संस्कृतभाषा में है तथा बंगाक्षर में बंगभाषानुवाद के साथ इस का प्रकाशन भी हो चुका है। हिन्दी-भाषा में अनुदित होकर प्रकाशित होना इसका यह प्रथम अवसर है।

मूल-ग्रन्थकार श्रीपाद कविकर्णपुर हैं आपका प्रकृत नाम परमानन्दसेन था। पुरी में जन्म होने के कारण महाप्रभु ने आपका नाम पुरीदास रखा था। आपके पिता शिवानन्दसेन जी महाप्रभु के अनन्य भक्त थे। वंगदेश काँचन-पल्ली में आपका निवास-स्थान रहा। १४०७ शकाब्द में श्रीमन् महाप्रभु का आविर्भाव है। पुरीदासजी का जन्मसमय १४४८ शकाब्द है। आपने १४९४ शकाब्द में इस नाटक की रचना की थी। इसके अतिरिक्त आप का रचित-श्रीगौरगणोद्देशदीपिका, आनन्दवृन्दाबनचम्पू, श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्य, कृष्णाह्निककौमुदी, आर्याशतक, अलङ्कारकौस्तुभ, चैतन्य-सहस्रनामस्तोत्र, चैतन्यामृतव्याकरण, दशमस्कन्धस्य टीका आदि ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। हाल में द्वारभंगा-संस्कृत विश्व-

विद्यालय ने कविकर्णपूर के नाम से "पारिजातहरण" नामक महाकाव्य का प्रकाशन किया है। कर्णपूर जब ५ पांच वर्ष के थे तब उनके माता पिता उनको साथ लेकर श्रीनीलाचल में रथयात्रा उपलक्ष में पधारे थे। वहाँ पर जाकर महाप्रभु के श्रीचरणों में उन्हें लिटा दिया गया अर्थात् प्रभु के शरणापन्न कर दिये गये। तब प्रभु ने उस बालक से "हरि बोलो हरि बोलो" करके कहा परन्तु वह कुछ नहीं बोला। अनन्तर महाप्रभु श्रीस्वरूपगोस्वामी से कहने लगे—

स्वरूप ! हरिनाम यज्जगदबोधयं तेन किं,
न वाचयितुमप्यथाशकमिमं शिवानन्दजम् ।
इति स्वपदलेहनैः शिशुमचीकरत् यः कविं,
विराजतु चिराय मे हृदि स गौरचन्द्रप्रभुः ।।

अर्थात्—हे स्वरूप ! मैंने इस जगत् में पशु-पक्षि-सिंह-व्याघ्र तक सब को हरिनाम कहलाया परन्तु उससे क्या हुआ ? आज इस शिवानन्द के पुत्र को हरिबुलवाने में असमर्थ हो रहा हूँ। ऐसा कह कर आपने अपना पदांगुष्ठ उसके मुख पर रखकर चटाया तथा उस माध्यम से कविता बनाने की शक्ति प्रदान की।

महाप्रभु के पदांगुष्ठ के लेहन से कवित्व-शक्ति प्राप्त कर उस समय उस बालकने एक अनुपम श्लोक की रचना की तथा सब को सुनाया भी। वह श्लोक इस प्रकार यथा—

"श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसि महेन्द्रमणिदाम ।
वृन्दाबनरमणीनामखिलमण्डनं हरिर्जयति"

अर्थात्—कानों में नीलकमल रूप, नेत्रों में अञ्जन रूप तथा वक्षः स्थल पर महाइन्द्रनीलमणि-मालारूप इस प्रकार—

व्रजरमणियों के अखिल भूषण-स्वरूप श्रीहरि जय प्राप्त हो रहे हैं।

इस अनुपम श्लोक का श्रवण कर सब कोई आश्चर्य हुए तब से महाप्रभु ने बालक का नाम कविकर्णपूर रखा।

प्रस्तुत नाटक की रचना श्रीगौरांगलीला-वर्णन साङ्गोपाङ्ग रूप से करने के लिए ही हुई है। यह नाटकीयलक्षणाक्रांत होने के कारण उक्त लीला-समूह का पारम्पर्य यथावत् रक्षित न होने पर भी सिद्धान्त-विरोध व रस-परिपाटी आदि की मर्यादा-लंघनदोष कहीं पर भी नहीं हुआ है। वस्तुतः इस नाटक में अनेकानेक अपूर्व-सिद्धान्त निहित होने के कारण परम आदरणीय. नित्य-आलोचनीय तथा आस्वादनीय ही हुआ है। यह ग्रन्थ दश अंकात्मक है। अंक समूह इस प्रकार है—स्वानन्दावेश नामक प्रथम अंक, सर्वावतार दर्शन नामक द्वितीय अंक, दानविनोद नाम तृतीय अंक, संन्यास परिग्रह नाम चतुर्थ अंक, अद्वैतगृह-विलास नाम पंचम अंक, सार्वभौम अनुग्रह नाम षष्ठ अंक, तीर्थाटन नाम सप्तम अंक, प्रतापरुद्र-अनुग्रह नाम अष्टम अंक, मथुरा-गमन नाम नवम अंक एवं महामहोत्सव नाम दशम अंक है।

प्रत्येक अंक का विषय-विवरण इस प्रकार है—

प्रथम अंक में—श्रीमन् महाप्रभु का अप्रकट के बाद उनका विरह से असहनीय होकर इस नाटक-प्रबन्ध सुनाने के लिये राजा-प्रतापरुद्र का आदेश, सूत्रधार-मुख से श्रीगौरांग-स्वरूप का वैशिष्ट्य प्रतिपादन, श्रीचैतन्यकल्पवृक्ष में श्रीराधा-कृष्ण नामक लीलामय विहङ्गमयुगल का अभिन्नरूप से भिन्नतया सन्निवेशहोना,श्रीचैतन्यप्रवर्तित उदारमत में सब लोगों की प्रवृत्ति न होने का कारण, भक्ति का ही मुक्ति से श्रेष्ठत्व, श्रीगौरांगावतार में कलि का कृतार्थहोना, इसके बाद कलि तथा अधर्म की कथोपकथन छल से अनेकानेक गौर-तत्त्वों का उद्घाटन, उनके अवतार के पहले ही लीला-सहायक श्री अद्वैत-नित्यानन्द आदि के रूप में शम्भु एवं बलदेव प्रभृति का आविर्भाव। श्रीगौरांग स्वय भगवान् हैं इसका प्रमाण यह है कि इस प्रकार आप बालकलीला में ही आनन्द दान के द्वारा समस्त जनों के चित्त चमत्मकारकारक हुए। अधर्म के द्वारा कामजय की कथा, जगाइ-माधाई उद्धार में अहैतुकी कृपा का विस्तार, अभिषेक के माध्यम से ईश्वरावेश का सुन्दर रूप में वर्णन। इस विष्कम्भक के बाद भगवदावेश से महाप्रभु द्वारा 'श्रीवास' का पूर्व जीवन-वृत्तान्त कथन, मुरारी की ज्ञान-चर्च्चा में आक्षेप, शचीमाता का वैष्णवापराधक्षालन इत्यादि स्वानन्दावेश वर्णित है।

द्वितीयांक में—विराग के द्वारा शम-दम-मैत्री प्रभृति अपने जनों को न देखकर विपरीत धर्म-कर्म आचरण निरत चतुर्वर्ण, चतुर्थाश्रम में आक्षेप,तर्कादिपरायण तार्किक आदि में तथा पाशुपत आदि स्वस्वमत प्राधान्य वादियों में भक्ति न रहने के कारण निन्दा, केवल उदरभरण के लिए साधुवेश का अभिनय करने वाले तैर्थिकादि की निन्दा, गया-काशी आदि बहु तीर्थों में उन स्वजनों को ढूढ़ना, अनन्तर न देखने से एवं समभावापन्न वैष्णवों का अवलोकन के लिये वैराग के द्वारा दारुण आर्त्त-नाद से रोदन करना, दैववाणी से नवद्वीप-गमन का इङ्गित, अनन्तर भक्ति देवी के साथ साक्षात्कार, दोनों का कथोपकथन्, नवद्वीप धाम का उत्कर्ष वर्णन, महाप्रभु के वैभव-नाम-रूप-गुण-लीलाओं का सर्वोपरि रूप में स्थिरीकरण (उट्टंकित), दोनों का अपनी सेवा-सम्पादन के लिये नवद्वीप गमन, महाप्रभु का परिकरों के साथ श्रीवासादि के भवन में नृत्यविनोद,

मुरारिभवन में संकर्षण-रूप का आविर्भाव इस प्रकार से समस्त अवतारों की लीला-प्रकटन, नित्यानन्द के प्रति षड् भुज प्रकाश, कुष्टरोगी-ब्राह्मण का रोग निदान एवं अपराध-क्षालन का उपाय कथन इत्यादि सविशेष वर्णित है ।

तृतीय अंक में—मैत्री तथा प्रेमभक्ति का सम्बन्ध निर्णय, आचायरत्न का मन्दिर में श्रीगौरांगदेव का राधा-भाव से नृत्य (गर्भांक में) । श्रीनारद जी के मुख से दानबिहारी की दानलीला अभिनय प्रस्तावना कथन, श्रीवृन्दावन में मुरली-ध्वनि करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रवेशधारी अद्वैत प्रभु का रंगमञ्च में प्रवेश, गोपबालाएँ गोपीश्वर पूजन के लिये जा रही हैं यह सूचना देकर मधुमंगल की दानग्रहण करने के लिये श्रीकृष्ण के प्रति इङ्गित, प्रसंग से श्रीगौरांग स्वरूप में तीन मूर्तियों का (स्वयंहरि-सखि तथा श्रीराधिका) विद्यमान है इसका निर्णय, श्रीराधिका दर्शन से श्रीकृष्ण की उत्प्रेक्षा, पुष्पचयनरत श्रीराधा एवं श्रीकृष्णका वार्तालाप दान, उभय पक्ष में बादानुबाद, वाद में विबाद की चरम-सीमा होने पर श्रीनित्यानन्द प्रभु की योगमाया-भूमिका त्याग एवं सविशेषरस सुरस होता है इस विचार से नाट्य यवनिका का पतन ।

चतुर्थांक में—गौरांगदेव का संन्यास लीला आविष्कार, भक्तगणों का हृदयभेदी आर्त्तनाद, गंगादास के मुख से श्रवण करके प्रभुके "श्रीकृष्णचैतन्य" नाम का शास्त्रीय याथार्थ्य निरूपण ।

पंचमाङ्क में—शान्तिपुर में श्रीअद्वैतगृह में परिकर सह मिलनादि ।

षष्टाङ्कमें—नीलाचल यात्रा, रेमुना में श्रीगोपीनाथविग्रह (क्षीरचोरा) दर्शन, कटक में साक्षिगोपाल-दर्शन, नीलाचल में प्रवेश, महाप्रभु की भगवत्ता सम्बन्ध में गोपीनाथाचार्य के

साथ सार्व्वभौम के शिष्यों का विचार, जगन्नाथदेव दर्शन के बाद श्रीचैतन्यदेव का सार्वभौमगृह में गमन एवं भिक्षा, परदिन प्रभातकाल में बिना स्नान-दन्तधावन अवस्था में भी प्रभु के द्वारा सार्वभौम के लिये जगन्नाथ प्रसाद प्रदान तथा सार्वभौम का प्रसाद भोजन, भट्टाचार्य की अद्वैतवादमूलक-व्याख्या का परिहार तथा महाप्रभु की कृपा-प्राप्ति ।

सप्तमाङ्क में—प्रभु की दक्षिणयात्रा, रामानन्दमिलन, बौद्धों का प्रभु के प्रति अनाचार प्रकटन, रामनाम जपपरायण ब्राह्मण का कृष्ण नाम ग्रहण का कारण, गीतापाठक का वृत्तान्त, नीलाचल में पुनरागमन ।

अष्टमांक में—भक्तगण सह मिलन, परमानन्दपुरी तथा स्वरूप गोस्वामी का आगमन, गोविन्द की सेवा स्वीकार, ब्रह्मानन्दभारती-मिलन, प्रतापरुद्र के मिलन-प्रस्ताव में महाप्रभु की असम्मति, प्राणत्याग के लिये राजा की दृढ़प्रतिज्ञा, सार्वभौम की मन्त्रणा से आश्वासन गौड़ीय-भक्तगण का आगमन तथा भक्तसम्मेलन, प्रतापरुद्र के प्रति अलक्षित में कृपा ।

नवमांक में—लोकानुग्रह प्रकार त्रय—(१) साक्षात् (२) परहृदय में प्रवेश, (३) आविर्भाव । नकुल ब्रह्मचारी में आवेश, नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के द्वारा रचित अन्न-व्यञ्जनादि भोजन के लिए आविर्भाव । पुनः नीलाचल में प्रत्यागमन, वनपथ से मथुरा-गमन, प्रयाग में श्रीरूपमिलन तथा शिक्षादान, काशी में श्रीसनातनशिक्षा इत्यादि ।

दशमांक में—नीलाचल में भक्त समागम, स्नानयात्रा-दर्शन, कीर्त्तनानन्द में मूर्च्छादि, गुण्डिचामार्जन, रथयात्रा, हेरा-पंचमी-प्रसंग, श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा दास्यादि समस्त रस के भक्तगण को वृन्दाबनसम्बन्धी करने के लिये प्रस्ताव, श्रीअद्वैत की

प्रार्थना का स्वीकार। प्रार्थना-आपकी इच्छा से जन्मान्तर प्राप्ति होने पर भी हम सब जातिस्मर होकर भी आपकी इस लीला विचित्रता को सदा स्मरण करेंगे, कवि-गण कल्पपर्यन्त आपकी लीला का ही निरन्तर अभिनयकरें,साधु-सज्जनगण मात्सर्य विहीन होकर आपकी लीला का ही श्रवण दर्शन करें इत्यादि।

प्रस्तुत नाटक का हिन्दी-भाषा में अनुवाद कर प्रकाशन करने के लिये जिन सज्जन महानुभावोंने मुझे प्रोत्साहन किया एवं जिनके आग्रह प्रोत्साहन से मैं प्रभु को इस महती साहित्य-सेवा में समर्थ हो रहा हूँ उन बान्धवों की नामावलि निम्न है—

(१) बाबा दीनशरणदास महाराज, १३१ न० पत्थरपुरा, वृन्दाबन।

(२) बाबा श्रीहरिदास शास्त्री (न्यायाचार्य, नवतीर्थ, विद्यारत्न) कालीदह, वृन्दाबन।

(३) श्रीयुक्त स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज, वृन्दाबन।

(४) श्रीयुक्त दामोदरलाल गोस्वामी जी, राधारमण-घेरा, वृन्दाबन।

(५) श्रीमान् लज्जाराम ललाम प्रिंसीपल, विद्यापीठ,वृन्दाबन।

(६) श्रीमन् भाई जी हनुमानप्रसादजो पोद्दार (गोरखपुर)

(७) उदारमना सेठ जयदयाल जी डालमिया, नई दिल्ली तथा उनकी धर्म पत्नी उदारचेतृ श्रीमती कृष्णादेवी।

(८) महन्त श्रीदीनबन्धुदासजी,चतुःसम्प्रदायअखाड़ा (नासिक)।

जिन उपजीव्य चरणों की कृपा लव बल से इस भयङ्कर समय में भी इस ग्रन्थानुवाद तथा प्रकाशन में हम समर्थ हुए उन की नामावली क्रम से यह—

(१) श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु, (२) श्रीश्रीजान्हवा-ठाकुरानी, (३) श्री वीरचन्द्रगोस्वामी, (४) श्रीरामचन्द्रगोस्वामी, (५) श्री-

किशोरी-मोहन-गोस्वामी, (६) श्रीराधावल्लभ-गोस्वामी, (७) श्रीराधारमण-गोस्वामी, (८) श्रीराधामाधव-गोस्वामी, (९) श्रीसत्यानन्दगोस्वामी, (१०) श्रीराधिकाप्रसादगोस्वामी, (११) श्रीकृष्णचैतन्य-गोस्वामी, (१२) श्रीनित्यराधागोस्वामी, (१३) श्रीशंकरारण्यगोस्वामी, (१४) श्रीश्रीराधारमण चरणदासबाबाजीमहाराज (बड़े बाबाजी), (१५) नित्यधामगत, संकीर्त्तन प्रचारक,प्रेममूर्त्ति,गुरुदेव (श्रीश्रीरामदासबाबाजीमहाराज)।

(यह अनुवादक तथा प्रकाशक की—
गुरुपरम्परा)



आश्चर्यं यस्य कन्दो यतिमुकुटमणिर्माधवाख्यो मुनीन्द्रः
श्रीलाद्वैतप्ररोहस्त्रिभुवनविदितः स्कन्ध एवावधूतः।
श्रीमद्वक्रेश्वराद्या रसमयवपुषः स्कन्धशाखा स्वरूपा
विस्तारो भक्तियोगः कुसुममथ फलं प्रेम निष्कैतवं यत्॥
ब्रह्मानन्दश्च भित्वा विलसति शिखरं यस्य यत्रातनीड
राधा-कृष्णाख्यलीलामयखगमिथुनं भिन्नभावेन हीनम्।
यस्य च्छाया भवाध्वश्रमदमनकरी भक्तसंकल्पसिद्धे-
र्हेतुश्चैतन्यकल्पद्रुम इह भुवने कश्चन प्रादुरासीत्॥

(अंक१-१०।११)

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ।

शुभसूचना

करुणावरुणालय भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभु की असीम अनुकम्पा से तदीय चरित्र-वर्णनात्मक "श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटक" नामक अनुपम-ग्रन्थ का सर्वप्रथम प्रकाशन हिन्दीभाषा में हुआ जो कि मानव-समाज के लिये अवश्य आनन्ददायक वस्तु है ।

प्रस्तुत विषय का श्रेय बाबा श्रीकृष्णदास जी महाराज को ही है । आपने अपने जीवन का सम्पूर्ण समय स्वास्थ को न देखते हुये भी इसी कार्य के लिये अर्पण किया है । प्रस्तुत सुप्रसिद्ध-ग्रन्थ की रचना संस्कृतभाषा में हुई है और इस ग्रन्थ के रचयिता श्रीमन्महाप्रभु के कृपापात्र श्रीकविकर्णपूर-गोस्वामीचरण हैं । इसमें श्रीमन्महाप्रभु की नवद्वीपलीलादि सुसिद्धान्तपूर्ण एवं प्राञ्जल-रूप से वर्णित है। हिन्दीभाषाभाषी जनता के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीमन्महाप्रभु के चरित्र की जानकारी में अनुपम सहायक होगा ।

बाबाजी महाराज की प्रबल लगन रूप चेष्टा से—अलङ्कार-कौस्तुभ, षट् सन्दर्भ, हरिभक्तिविलास, भाष्यपीठक, लघुभागवतामृत आदि ग्रन्थ आपके द्वारा हिन्दीभाषानुवाद सहित देवनागरी लिपि में प्रकाशन के लिये यन्त्रस्थ हैं ।

श्रीहरिदासशास्त्री

न्याय-वैशेषिक-शास्त्री, प्राचीन नव्य न्यायाचार्य,
काव्य-व्याकरण-सांख्य-मीमांसा-वेदान्त-
तर्क-तर्क-तर्क-वैष्णवदर्शनतीर्थ,
विद्यारत्न । कालीदह
वृन्दाबन ।

गौरपूर्णिमा
सम्वत्-२०२६

महाप्रभोः स्वरूपम्

राधा कृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्मा-
देकात्मानावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम् ॥
श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा
स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः ।
सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभात्
तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः ॥

(श्रीचैतन्यचरितामृते)

गोपीनां कुचकुंकुमेन निचितं वासः किमस्यारुणं
निन्दत्काञ्चनकान्तिरासरसिकाश्लेषेण गौरं वपुः ।
तासां गाढकराभिबन्धनरसाद्लोमोद्गमो दृश्यते,
आश्चर्यं सखि पश्य लम्पटगुरोः सन्यासिवेशं क्षितौ ॥

(नरहरिपादानां शचिनन्दनाष्टके)

अपरिकलितपूर्वः कश्चमत्कारकारी
स्फुरति मम गरियानेष माधुर्य्यपूरः ।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव ॥

(ललितमाधवे)

पूर्णप्रेमरसामृताब्धिलहरीलोलाङ्गगौरच्छटा-
कोट्याच्छादितविश्वमीश्वरविधिव्यासादिभिः संस्तुतम् ।

दुर्लक्ष्यां श्रुतिकोटिभिः प्रकटयन्मूर्त्ति जगन्मोहिनी-
माश्चर्यं लवणोदरोधसि परं ब्रह्म स्वयं नृत्यति ॥
कोऽयं पट्टधटीविराजितकटीदेशः करे कङ्कणं
हारं वक्षसि कुण्डलं श्रवणयोर्विभ्रत्पदे नूपुरौ ।
उर्द्धवीकृत्य निबद्धकुन्तलभरप्रोत्फुल्लमल्लीस्रगा-
पीड़ः क्रीड़ति गौरनागरवरो नृत्यन्निजैर्नामभिः ॥

(चैतन्यचन्द्रामृते)

स्वपीतच्छटाच्छादितक्ष्मादिसर्वं
श्रुतीनामतक्याद्भुतप्रेमचर्वम् ।
शिव-ब्रह्म-देवैः स्तुतं सर्ववृत्तं
तटे वारिधेर्नृत्यति ब्रह्म मूर्त्तम् ॥

(टीकाकारस्य)

निशिदिन एह सोच मेरे उर ।
कौन काज ब्रजराज कुंवर वर धारचो गौर कलेवर ॥
सुख को परम सदन वृन्दाबन परिजन निपट सनेह ।
सो सुख छाड़ि बसत नदियापुर समझि परत नहिं यह ॥
संकीर्त्तनरस सतत विलसत कौन माधुरी तामें ।
भोगी रस श्रृंगार सार तजि लोभी होय रहे यामें ॥
जाको भाव करी एसी सो सबतें अधिकाई ।
इह अनुमान मनोहर तन मन चरण कमल बलि जाई ॥
निज कृष्ण भये गौराङ्ग महाप्रभु भाव राधिका लीनोरी ।
दर्पण में अवलोकि निज मुख कुंवर मनोरथ कीनोरी ॥
एहि विधि आस्वाद करै आपनो सुख परहित में चित दीनोरी ।
श्रीगोपालदास प्रभु प्रगटे प्रेम सुधा रंग रस भीनोरी ॥



चैतन्यचन्द्रोदयभाषा

प्रथम अङ्क

वृंदावनवास छाड़ि नदिया-विहारी बने
वंशी धुनि छाड़ आज नाम धुनि भायो है ।
वांसुरी की ध्वनि सुनि ध्यान छाड़ि भागे शिव
नामरस पान को अद्वैतरूप पायौ है ।
पार हूँ न पायो अज शुक सनकादि ऋषि
नाम संकीर्त्तन मधि रास को छकायो है ।
लोभी मकरंद मधुपान मद मत्त भयो
माया ग्रस्त जीवों को जो प्रेमरस प्यायो है ॥

श्रीश्रीगौरहरिचरणाश्रित—
मधुसूदनदास

अथ श्रीश्रीगौरहरिचरणाश्रित कुसुमसरोवरनिवासी कृष्णदासकृत-भाषानुवाद :—

※ सबैया ※

पद पंकज श्री गुरु पायौ जभी तव
गौर चरण अपनायौ है ।
अरु कृपा भई वृजबासिन की वृज
को रस दरशन पायो है ।
जय रूप-सनातन-भट्टयुग-रघु
दास-जीव रस गायो है ।
चैतन्यचन्द्रोदय मधि महारस
कृष्णदास मन भायौ है ॥

जो श्रवणादि नौप्रकार भक्तिरूप चन्द्रकान्त-मणियों द्वारा कुमुद, पद्म, शंख, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्द तथा नील नामक नौ निधियों में अरुचि अर्थात् अनिच्छा उत्पन्न कर देते हैं एवं जिन्होंने कलिकालरूप चक्रवाक् पक्षी के अन्तर में शोक-शंकु अर्थात् शोक रूप चोवा (कील) विद्ध किया है वे श्रीगौरचन्द्र जगत् के विषय-रूप अन्धकार को दूर करें ।।१।।

इस मंगलाचरण पाठ के बाद—सूत्रधार अभिनेतृगण को सम्बोधित कर कहने लगा—

सूत्रधार—बस, मंगलाचरण यहाँ तक रहने दो, अधिक विस्तार से प्रयोजन नहीं ।

अहे ! अहे ! रत्नाकर (समुद्र) तट से उत्पन्न विदलित कज्जल की भाँति उज्वल प्रशस्तनीलकान्तमणि-स्वरूप, नील-पर्वत की गुहा में विराजमान तथा निविड़ पर्णमाला से सुशोभित तमालतरुसमूह की भाँति श्यामल, गम्भीर कोटर वाले अक्षय-वट के निकट प्रकाशमान मदमत्त हस्ति स्वरूप, भगवान जगन्नाथदेव की रथयात्रा-उपलक्ष्य में समस्त दिशा-दिशान्त से समागत मनुष्यगण के मुखोच्चारित मनोहर "जय जय" ध्वनि से ब्रह्माण्ड के समस्त स्थान प्रतिध्वनित हो रहे हैं । समस्तजन मन के अतिशय आनन्द से अपना-अपना ब्राह्मण-शूद्रादि जातीय-अभिमान परित्याग कर नामसंकीर्तन प्रारम्भ कर रहे हैं, नारीगण की "हुलु हुलु" ध्वनि की प्रतिध्वनि से मानो समस्त दिगङ्गनाएँ आनन्द सूचक शब्द कर रही हैं, अन्य ओर मधुर मृदंग के साथ महापण, पणव, ढक्का, जयढक्कादि वाद्य बजने लगे हैं, भेरी के गंभीर निनाद तथा दुन्दुभि के हुंकार से मानवगण वधिर होकर अन्य किसी शब्द की उपलब्धि नहीं कर पा रहे हैं । ऐसे समय में जगन्नाथदेव के

सेवाधिकारी गजपति महाराज प्रतापरुद्रदेवजी, भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र के तिरोभाव भाव का चिन्तन करते हुए विषण्ण-भाव से वहाँ उपस्थिति हुए । मन की विषण्णता ही एकमात्र निरानन्द का कारण होता है । अतएव उस प्रकार महानन्दजनक समय में भी उनको किसी भी प्रकार आनन्द प्राप्त नहीं हो रहा है । बाद में वे हमें सम्बोधित कर मन के निगूढ़-भाव को व्यक्त करते हुए कहने लगे ।।२।।

अहे नटराज ! देखो देखो, समस्त ऐश्वर्य से परिपूर्ण वे ही नीलगिरीश्वर सम्मुख में विराजमान हैं, वही रथयात्रा उपस्थित है, उस उपलक्ष में नाना-देशों से समागत पुण्यात्मा भक्तगण भी दर्शनार्थ उपस्थित हुए हैं, नन्दनवन की शोभा को तिरस्कार करने वाले वे उपवन समूह विराजमान हैं, परन्तु तो भी महाप्रभु के बिना ये समस्त मेरे लिये शून्याकार बोध हो रहे हैं ।।३।।

अतएव इस समय तुम प्रेममय भगवान् यतीमुकुटमणि उन महाप्रभु के गुणगन्ध से परिपूर्ण रसगर्भ किसी एक नाटक—प्रबन्ध द्वारा हमारा आनन्द सम्पादन करो ।।४।।

क्योंकि-सुहृज्जनों की आश्वासनवाणी अथवा गुणपूर्ण नाटक के अभिनय के बिना प्रियजन के अदर्शन जात विरह का सहन करने में अन्य कोई उपाय नहीं है ।।५।।

अतएव इस विषय में प्रयत्न करना अवश्य उचित है । परन्तु आश्चर्य विषय यह है—

जिन का प्रतापानल निर्धूम होकर भी समस्त दिशा में अनुमित हो रहा है, जो शिष्टजन पालन में निपुण एवं विपक्ष-पतंग दहन में तत्पर हैं, जिनकी प्रतापाग्नि के उत्ताप प्रारम्भित होने पर मानो ब्रह्माण्ड दग्ध न हो जाय इस भय से महाविष्णु-

ने पृथिव्यादि आवरण द्वारा मानो बाहिर-ब्रह्माण्ड का लेप किया है ॥६॥

वह महाराज प्रतापरुद्र मानो पुञ्जीभूत (मूर्तिमान) साक्षात् पराक्रम रूप में विराजमान हो रहे हैं। क्रम सञ्चित भगवद्भक्ति स्वभाव से अब वे शान्तरस में अवगाहन कर रहे हैं। उनके हृदय से राजसिक एवँ तामसिक भाव—मालिन्य दूरीभूत हो गया है, ऐसा बोध होता है कि स्वयं शान्तरस शरीरधारण कर विराजमान हुआ है। इस अवस्था में अपनी बात तो दूर रही औरों के मन में भी विषय वासना हो इस प्रकार जो इच्छा नहीं कर रहे हैं। अतएव अब मैं सन्देह का परित्याग तथा अपने को कृतार्थ कर उन करुणामय चैतन्यदेव के प्रियपार्षद शिवानन्दसेन के पुत्र परमानन्ददास—कवि विरचित हृदयान्धकार नाशक "चैतन्यचन्द्रोदय" नामक नाटक का अभिनय कर उन महाराज की मनोवांछा पूर्ण करूँगा ॥७॥

(सम्मुख में दृष्टिपात कर) अहे! अहे इधर, इधर (रंग-भूमि में पारिपार्षिक प्रवेश कर)—

पारिपार्षिक—भाव! (विद्वन्) आश्चर्य है! आश्चर्य है!

सूत्रधार—आर्य! क्या आश्चर्य?

पारि०—श्रीनीलाचल के महान् आनन्दकन्द भगवान श्रीपुरुषोत्तमदेव की महानन्द जनक इस प्रकार रथयात्रा महोत्सव उपस्थित हो रहा है। परंतु कुछ मनुष्य मन के दुःख से अत्यन्त विमनस्क एवं ब्रह्माण्ड को अन्धकार से आवृत क्षुद्र भाण्ड रूप मानते हुए निरंतर विलाप कर रहे हैं ॥८॥

देखिये! अहो! यह वही नीलाचलतिलक-जगन्नाथदेव की रथयात्रा है, ये वेही उपवनसमस्त विराजमान हैं, रथ का प्रशस्त वही मार्ग पूर्व की भाँति सुशोभित हो रहा है, परंतु वे

सब पित्तज्वर की भाँति चक्षुःदाहक, हृदयव्रण की भाँति समस्त शरीर में वेदना एवं खलवचन के समान मन के उत्साह का भंग कर रहे हैं। अतएव इसका निगूढ़ तत्त्व क्या है, कहिये ॥९॥

सूत्रधार—आर्य! आप धन्य हैं, क्योंकि आपने नयन-साफल्यकारक जगन्निस्तारकारी उन परम भगवद्भक्तों का दर्शन किया है।

पारि०—विद्वन्! वे कौन हैं?

सूत्रधार—वे सब श्रीकृष्णचैतन्य के पार्षद हैं।

पारि०—वे चैतन्य-गोस्वामी कौन हैं?

सूत्र०—आर्य्य! आप आज तक जननी-जठर के जरायु में आवृत हो रहे हैं, क्योंकि श्रीचैतन्य-महाप्रभु का नाम तक भी श्रवण नहीं कर पाये हैं। सुनिये अति आश्चर्य? यतिमुकुट-मणि श्रीमाधवेन्द्र जिसके मूल हैं, श्रील अद्वैतप्रभु जिसके अंकुर हैं, भुवन विदित श्री अवधूत अर्थात् नित्यानन्दप्रभु स्कन्ध हैं, श्रीमद्वक्रेश्वरादि पण्डितगण जिसके रसमय शरीर हैं, स्वरू-पादि गोस्वामीगण स्कन्धशाखा हैं, सुविस्तीर्ण भक्तियोग जिसके कुसुम हैं, और अकैतव प्रेम जिसका फल है ॥१०॥

अपितु—जिसकी शाखा ब्रह्मानन्द का भेदन कर विलास कर रही है, जिस कोटर में राधा-कृष्ण नामक लीलामय खग-मिथुन अभिन्न भाव से आश्रय कर रहे हैं, जिसकी छाया संसार मार्ग के श्रम को शमित करने वाली है, जो भक्तगण के अभीष्ट दाता के हेतु है वह चैतन्य नामक कोई अनिर्वचनीय कल्पवृक्ष इस अवनी-मण्डल में अवतीर्ण हुआ है ॥११॥

पारि०—भाव! अचिन्त्य प्रभाव वाले वे महापुरुष किस लिये अवतीर्ण हुए हैं?

सूत्र०—मारिष ! सुनिये सुनिये–निर्विशेष अपरिच्छिन्न परब्रह्म में मन का लय ही परम पुरुषार्थ है, उसका साधन-धन एक मात्र जीवात्मा-परमात्मा की अभेदभावना है, यह समस्त शास्त्रों का प्रतिपाद्य विषय एवं सारमर्म है। आग्रहरूप ग्रह ग्रहीत जो समस्त अद्वैतवादी पण्डित हैं, उनके मत खण्डन रूप सिद्धान्त को लेकर उन उन शास्त्रों में निगूढ़ रूप से विराजमान सच्चिदानन्द विग्रह नित्यलीलाकारी सर्वशक्तिमान परम पुरुष श्रीकृष्ण ही सविशेष ब्रह्म तथा परम तत्व है, उनकी उपासना सनन्दनादि मुनियों से कही हुई है, अर्थात् सेवा ही एकमात्र पुरुषार्थ है, उसका साधन नाम-संकीर्त्तन प्रधान नाना भक्तियोग है, इन बातों को जगत् में प्रचार करने के लिये चैतन्यरूपी भगवान् जगत् में अवतीर्ण हुए हैं ॥१२॥

पारि०—भाव ! क्या उन गौरहरि ने निजाभिमत किसी ग्रन्थ का प्रणयन किया है ?

सूत्र०—यद्यपि उनको वेदकर्त्ता करके कोई नहीं जानता तो भी अन्तर्यामी लोगों के अन्तर में जो प्रवृत्ति अर्थात् मत प्रकटित करते हैं वह इतर शास्त्र-उपदेश से किसी देश तथा काल में अन्यथा नहीं होता ॥१४॥

पारि०—विद्वन् ! तब समस्त लोग उन महापुरुष के मत में रत क्यों नहीं होते ?

सूत्र०—भोग-मोक्षादि विविध वासना करके युक्त मनुष्य किस प्रकार उस लोकातीत पथ में प्रवृत्त होंगे ? वासना-युक्त श्रद्धा ही भिन्न भिन्न मति उत्पन्न कर देती है ॥१५॥

पारि०—विद्वन् ! शास्त्रीय पण्डितों के अगोचर भक्ति-योग सचमत्कृत ज्ञान उत्पन्न कर देता है, निर्वाण-मुक्ति उस भक्ति का चरम फल है। अतएव भक्ति एवं ज्ञान में विशेष क्या रहा ?

सूत्र०—आर्य ! "इस प्रकार भागवत-धर्म से दीक्षित होकर अपने रुचि अनुसार भगवान के नाम कीर्त्तन करने पर हृदय में प्रेम का संचार होता है तब भक्त की हृदय-ग्रन्थि शिथिल हो जाती है और उससे हृदय द्रवीभूत हो जाता है जिससे वह भक्त कभी रोता है तो कभी उच्चस्वर से गाता है और कभी उन्मत की भांति लोकवाह्य नृत्य करता है" इत्यादि प्रमाण से भगवन्नाम-कीर्त्तनादि रूप भक्तियोग के रतिजनक भावविशेष क्रम से परिवर्द्धित होकर वह भगवान के पार्षदभाव में अवस्थान करता है ॥१६॥

और भी 'तैर्दर्शनीयावयवैरित्यादि" तृतीय स्कन्ध, श्रीमद्-भागवत पच्चीस अध्याय के तेंतीस श्लोक से आरम्भ कर भगवान् कपिलदेव ने अपनी माता को उपदेश दिया है यथा "हे अम्बे ! भक्तगण मेरे हास्ययुक्त प्रसन्नमुख एवं अरुणवर्ण नयनादि युक्त मनोहर रूप का दर्शन करते हैं और उन मनोहर अंग-प्रत्यंगों की प्रशंसा करते हुए अनुरागयुक्त वचन बोलते रहते हैं" इत्यादि प्रमाणों से भक्तों की भगवत् साक्षात्काररूप मुक्ति होती है परन्तु ब्रह्मकैवल्य नहीं। कपिलपाद ने और भी कहा है- "निष्काम भगवद्भक्ति मुक्ति से श्रेष्ठ है" इत्यादि। अतएव कलियुग में नाम संकीर्त्तन ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को तिरस्कार करके रति नामक भाव विशेष को प्रत्यक्ष कराता है ॥१७॥

पारि०—भाव ! आप का यह भावमय—वचन मुझे अत्यन्त विस्मावित कर रहा है। क्योंकि भगवान् का नाम-संकीर्त्तन मुक्ति उत्पन्न कर देता है ऐसा शास्त्र में लिखा हुआ है। यदि आप अन्यथा करते हैं तब अजामिल ने अन्त-काल में नारायण नाम कीर्त्तन कर मुक्ति लाभ किया इस का संगत किस प्रकार होगा ? ॥१८॥

सूत्रधार—(उच्चहास्यकर) अहे ! यहाँ मुक्ति-शब्द भगवत्पार्षद'स्वरूप है क्योंकि उसी भागवत में कहा है—अजा मिलने उसी समय भगवान के पार्श्ववर्त्ति-स्वरूप को धारण किया। यह श्रीकृष्णचैतन्यदेव का मत अन्य मतों का निराकरण कर रहा है, जिसको पुण्यशील पण्डितजन ग्रहण करते हैं। अधिक क्या कहूँ, उस अवतार से यह घोर कलियुग कृतार्थ हो गया है ॥१९॥

पारि०—यह कैसा है? "हे राजन्! कलियुग में समस्त लोग पाषण्डगणों से हतबुद्धि होकर ब्रह्मादिदेववन्दित जगत् पिता उन अच्युत भगवान की प्रायतः पूजा नहीं करेंगे" इस प्रकार निन्दावाद सुनने में आता है। तब महाप्रभु ने कलियुग को कृतार्थ किया यह आप का वचन किस प्रकार सम्भव पर होगा? ॥२०॥

सूत्रधार—कलियुग के निन्दापरक वे सब वचन श्रीकृष्णावतार के पूर्व पूर्व कलिपरक हैं। नहीं तो "कलियुग में जो सब मनुष्य जन्म ग्रहण करेंगे उनके प्रति अनुग्रह केलिये श्रीकृष्ण—ने दुःख-शोकरूप अन्धकार नाशार्थ अपने लीलायुक्त पवित्र यशः का विस्तार किया है," "कलियुग में उत्पन्न लोग-समस्त अवश्य ही नारायण परायण होंगे।" "सत्यादि युग में उत्पन्न प्रजा कलियुग में जन्म ग्रहण के लिये वाञ्छा करती है" इत्यादि भावी चैतन्य अवतारपरक वचन के साथ परस्पर विरोध आ पड़ता है ॥२१॥

पारि०—उन कृष्ण भक्तों को कलियुग क्यों पराभव नहीं कर पाता?

सूत्रधार—यह दोषाकर कलियुग, कृष्णपक्ष में अर्थात् कृष्ण सम्बंधि भक्तों के निकट प्रतिदिन क्षय प्राप्त होता है—जैसा कि दोषाकार चंद्र कृष्णपक्ष में प्रतिदिन क्षय प्राप्त होता। सुतरां वह विष्णुपदाश्रित जनों को अर्थात् कृष्ण भक्तों को किस प्रकार पराभव कर सकता? (पक्ष में) वह चंद्र विष्णुपदाश्रित अर्थात् आकाशस्थित अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों की प्रभा धारण नहीं कर सकता ॥२२॥

(नेपथ्य में) अरे! तुम कोन हो? चंद्रवर्णन छल से मुझे दोषाकर करके निन्दा कर रहे हो।

सूत्रधार—(भली भाँति दृष्टिपात करके) हे आर्य! देखिये जिसका प्रस्ताव हो रहा है वह निर्दय कलियुग निज प्रियसखा अधर्म के साथ क्रोधान्ध होकर इधर आ रहा है, अतएव हम सब यहाँ से भाग चलें (ऐसा कहकर दोनों चले जाते हैं) ॥२३॥

प्रस्तावना अर्थात् नाटक के प्रतिपाद्य विषय यह हैं—

(अनन्तर अधर्म के द्वारा उपास्यमान होकर कलि का प्रवेश होता है)

कलि—सखे अधर्म! इस चारणाचार्य सूत्रधार ने जो कहा है वह सत्य है।

अधर्म—उसने क्या कहा?'

(**कलि**—"कृष्णपक्षेऽनुदिवसं" इत्यादि श्लोक का पुनः पाठ करने लगा)

अधर्म—सखे युगराज! उस अधम ने दोषाकर करके आप की निंदा की।

अरे! दुर्वृत्त पापी नटाधम! सुन—शौच, आचार, तपस्या, क्षमा, शम, दम तथा विवेकादि सैन्य के साथ धर्म नृपति को मैंने समूल उच्छेदित किया है। जिनके दर्शन-मात्र से सब कोई पवित्र होते हैं उन धर्मप्रिय व्यक्तियों को मैंने अन्ध बनाया है! अहा! वह मैं जिसका आज्ञाकारी हूँ उस युगराज कलि की तुम निंदा कर रहे हो, अरे पाप! ठहर! ठहर! जहाँ धर्म वहाँ कृष्ण हैं जहाँ कृष्ण हैं वहाँ विजय है। तुम जो कह रहे हो

कृष्णपक्ष में कलि का क्षय होता है वह कैसा है ? धर्म-भाव में कृष्ण कहाँ ठहर सकता ।।२४

कलि—सखे ! उसको निन्दा मत करो, अब मेरा वह समय (प्रभाव) रहा नहीं । जिस प्रकार धन्वतंरि के निकट महौषधि का उद्गम देखकर नागराज तक्षक हतश्री हुआ उस प्रकार मैं उस कुमार के निकट हत-पराक्रम हो गया हूँ ।।२५।।

अधर्म—युगराज ! जिस कुमार की बात आपने कही है वह कुमार कौन है ? कु शब्द से कुत्सित माना जाता है, क्या वह कुत्सित मारक है ? अथवा कु शब्द का अर्थ पृथ्वी है, क्या वह पृथ्वीमारक है ?।

कलि—नहीं नहीं, दोनों से मेरे भय का कारण नहीं है। परंतु नवद्वीप में जगन्नाथ नामक मिश्रपुरंदर से शची-गर्भ में उत्पन्न वह कुमार है। उस बालक ने मेरे समस्त कार्य का उच्छेद किया है ।।२६।।

अधर्म—(उच्च हास्य करके) अहे युगराज ! आश्चर्य्य, जिसके अत्युच्च भुजदण्ड प्रताप रूप महामार्त्तण्ड तेज: भय से एक चरण में अवशिष्ट उस वृष रूपी धर्म ने उल्लू की भाँति नि:शब्द होकर पर्वत गुहा में पलायन किया है वह तुम हो । हम जैसे चरण सेवक भृत्यजन तुम्हारे मौजूद हैं । सामान्य एक ब्राह्मण बालक से तुम भीत हो रहे हो। अतएव जान लिया, तुम्हारे मन में विलक्षण भ्रम हो गया है ।

कलि—सखे ! वह केवल भूदेव बालक अर्थात् ब्राह्मण बालक नहीं है, अपितु देवदेव है । सुनो, हाय, हाय, खेद की बात है । श्रीहरिनिज भक्ति-योग के द्वारा जगत् पवित्र करने के लिये मानस के स्वर्णकमल की भाँति मनोहर रूप धारण कर नवद्वीप में द्विजभवन में अवतीर्ण हुए हैं । जो इस समय बाल्य-लीला कर रहे हैं ।

और सुनो, उन्होंने पूर्णिमा तिथि में जन्म ग्रहण कर चन्द्रग्रहण छल से एक ही समय जगत् के समस्त जनों को हरि-नाम ग्रहण कराया है ।।२८।।

धर्म—यह तुम्हारा भ्रम है । क्योंकि तुम काकतालो न्याय से उत्पन्न वस्तु को अन्य रूप से कल्पना कर रहे हो । अर्थात् कौआ बैठा, ठीक उसी समय गिरने वाला पक्का ताल गिरा तो सब कोई "कौए ने ताल गिराया" कहने लगे । उसी प्रकार ग्रहण का समय था, सब कोई हरिनाम लेने लगे जिससे यह उस ब्राह्मण बालक के नाम में आरोपित हो गया । अहे ! सुनो, सुनो, आप तो महाप्रभावी हैं, हम जैसे आपके प्रधान प्रधान सहायक मौजूद हैं, विशेष करके हम सब से आप बद्ध-मूल हो रहे हैं ! वह असहाय सामान्य बालक आपके आगे कौन हो सकता । उस पर वह ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ है, ब्राह्मण तो स्वभाव से बलहीन होते हैं । हाय ! उस ब्राह्मण बालक से तुम्हें भय हो रहा है । यह तो भ्रम माना जा सकता ।।२९।।

कलि—सखे ! यथार्थ श्रवण करो । जो स्वयं प्रकाश-मान है उसको काल, देश, वयस तथा वंशादि किसी सहायक वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती है । सूर्य के उदय समय सब कोई बाल सूर्य करके कहने लगते हैं, परन्तु वह सूर्य उदयमात्र से ही जगत की अतिगाढ़ अन्धकार राशि को नष्ट कर देता है । और भी वह असहायक नहीं हैं । क्यों कि अपने अवतार के पहले से ही उन्होंने अवनी मण्डल में प्रियपार्षदों को आवि-र्भावित कराया है ।।३०।।

सुनो, साक्षात भगवान के समान महादेव के अवतार आचार्यवर श्रीअद्वैत प्रभु प्रकट हुए हैं । संकर्षण जिनके साक्षात् तेज: स्वरूप हैं वे नित्यानन्द प्रभु अवधूत वेश में अवतीर्ण हैं ।

और श्रीकान्त, श्रीपति तथा श्रीराम इन तीन भ्राताओं के साथ द्विजकुलतिलक श्रीवास पण्डित अवतीर्ण हुए हैं जो देवर्षि नारद करके विख्यात हैं ॥३१॥

और भी आचार्यरत्न, हरिदासजी, मुरारिगुप्त, गंगादास-पण्डित, गदाधरपण्डित, विद्यानिधि, वासुदेव-सार्वभौम, श्रीमुकुन्द, वक्रेश्वरजी, श्रीनृसिंह, शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, श्रीदामोदर, श्रीशंकर एवं जगदानन्द आदिक प्रधान प्रधान परिकर गण सहायक-रूप में अवतीर्ण हुए हैं, वे सब नाना-भाव, नाना-विलास एवं नाना प्रकार नृत्यादि में रसिक हैं, परम प्रेम के आश्रय स्वरूप हैं तथा यह सब बाल्यकाल से ही उन के बन्धु हैं इस प्रकार वे प्रभु आज जगत् परित्राण के लिये अवतीर्ण हुए हैं ॥३२॥

अधर्म—उन को ईश्वर कर के आप सबने कैसे निश्चयकिया है ?

कलि—सखे ! भगवान् आनन्दमय हैं, सब के चित्त को आकर्षित करना उन का असाधारण लक्षण है। आनन्दमय पुरुष ही समस्त जीवों को आनन्दित करने में सामर्थ्यवान् होता है। जैसे प्रचुर धनवान जन दूसरे को धनी बना सकता है उसी प्रकार प्रचुर आनन्दमय भगवान् जगत् को आनन्दित कर सकते हैं। यह असाधारण गुण ईश्वरत्व का परिचायक है। बाल्य-काल से ही उन में सर्वजन-चित्त—चमत्कारकारी गुण देखने में आरहा है ॥३३॥

अहो ! आश्चर्य्य आश्चर्य्य, बाल्यकाल से ही निखिल-जनविशेष आकर्षणकारी गाम्भीर्य्य, धैर्य्य, स्मृति, मति, अत्य-न्तविद्याविलास, अतिशय माधुर्य्य एवं स्निग्धतादि गुणगण उन में मौजूद देख रहा है, अतएव उन को देख कर किस की विष्णुबुद्धि उन में नहीं होगी ? ॥३४॥

अधर्म—तुम्हारा यह वचन ऐकान्तिक नहीं समझ रहा हूँ। क्योंकि ये समस्त गुण किसी प्रकृष्ट जीव में भी हो सकते है ॥

कलि—ऐसा नहीं कह सकते हो, क्योंकि भगवद्गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा है—"हे अर्जुन ! जो सब विभूतियुक्त वस्तु हैं तथा जो श्री विशिष्ट हैं वे समस्त मेरे तेज तथा अंश से समुत्पन्न जानना।" यह तो भगवान् की सामान्य उक्ति है अर्थात् भगवान ने साधारण रूप से कहा है। परन्तु उनमें तो उस प्रकार असंख्य अधिक गुण मौजूद हैं, वे ईश्वर हैं, उन्हें सामान्यगुण वाले जीव कभी नहीं माना जा सकता। और भी, इस विषय में हम सब से बड़ा यह प्रमाण मान रहे हैं कि—साधारण जीव से हमें इस प्रकार भय नहीं होता ॥३५॥

अधर्म—उसने तो विवाह कर लिया है ऐसा सुनने में आया है।

कलि—इस से क्या हुआ ? उन ईश्वर के जगत् में अवतरित होने पर उनकी लक्ष्मी-रूपिणी शक्ति मनुष्य—लीला के अनु-करण के लिये लक्ष्मीप्रिया नाम धारण कर अवतीर्ण हुई। बाद में उन देवदेवने उसके साथ विवाह कर कुछ दिन दाम्पत्य-भाव में रहकर उसे अन्तर्धापित कराया है ॥३६॥

और भी उस की मानुषी भाव की स्थिति हुई। ईश्वर जब देवता-रूप में अवस्थिति करते हैं तब उनकी शक्ति देवीरूप में उनके निकट विराजमान होती है। जब भगवान् मनुष्यलीला करते हैं तब उन की शक्ति मानुषी होकर जन्म लेती है।

और सुनो, वे देवदेव पृथ्वी की अंशरूपिणी विष्णुप्रिया को विवाह कर जगत में वैराग्य शिक्षा के लिये नवीन वयस में ही सन्यासी होकर उस षोड़शी प्रिया को परित्याग करेंगे ॥३७॥

और सुनो, इन के अग्रज जो जगत् में विश्वरूप करके विख्यात हैं तथा साक्षात् भगवान् संकर्षण के अवतार हैं वे भी दारपरिग्रह न कर पहले ही सन्यास ग्रहण कर अपनी ज्योति को ईश्वरपुरी में स्थापन कर अन्तर्हित हुए हैं ॥३८॥

अधर्म—(क्षणकालचिन्ता—करके मन ही मन में) अहो ! कष्ट ही देख रहा हूँ । यदि मैं अपने बुद्धि कौशल से सखा की भावना को अन्यथा कर सकता, परंतु मेरा हृदय निरानंद सा हो रहा है, प्रति अंग शिथिल हो रहे हैं, समस्त इन्द्रिय-वृत्ति निरोध हो रही हैं, स्मृति भ्रंश हो रहा है तथा धैर्यच्युति हो रही है । उस महत् व्यक्ति के नाम संकीर्तन के बिना इस कष्ट का कारण और कुछ नहीं देख रहा हूँ ॥३९॥

कलि—मैंने अनुभव किया है, अब तुम बार बार अनुभव करो ॥

अधर्म—उस के पराभव के लिये तथा हम सब के मंगल के लिये एक अखण्ड उपाय है ।

कलि—क्या उपाय ? ।

अधर्म—आपके काम-क्रोधादि जो छै जन अमात्य विद्यमान हैं उनको असाध्य कुछ नहीं है । जिनके अखण्ड भुजदण्ड-प्रभाव से आपका इस विश्व में एकछत्र राज्य हो रहा है ॥४०॥

वर्तमान में दिग्विजयको गये हुए हैं, एक एक जन एक एक दिशा का विजय कर विश्व को निष्कण्टक कर शीघ्र ही आपके चरण-सेवा में उपस्थित होंगे । उस शत्रु को पराजित करने के लिये एक ही साथ उन छै जनों को नियुक्त करूँगा । उन के पराक्रम की बात कुछ वर्णन करता हूँ सुनिये ॥

जिस के प्रबल भुजदर्प से स्वयं पद्मयोनि ब्रह्मा अपनी कन्या के प्रति मोहित हुए हैं, आत्माराम पशुपति मोहिनी के प्रति धावित हुए, अधिक क्या कहूँ, जिसके प्रभाव से प्रधान प्रधान व्यक्तिगण रमणियों के निकट साधारण क्रीड़ा-बिड़ाल (क्रीड़ा बिल्ली) की भाँति वशीभूत हुए हैं उस त्रिभुवन-विजयी लब्ध-प्रतिष्ठ कामदेव के निकट वे सामान्य व्यक्ति कौन हो सकते हैं ॥४१॥

कलि—सखे ! तुम भगवत्ता-विषय में अज्ञ हो, अर्थात् भगवान के ऐश्वर्य को नहीं जानते । पहले इस कामदेव ने भगवान् नारायण को पराजित करने के लिये उनके निकट गमन किया था परन्तु स्वयं पराजित हो गया । अतएव जगन्मोहन-कन्दर्प दर्पहारी श्रीहरि को कोई भी मोहित नहीं कर सकता ॥४२॥

तो भी उनके पराजय के लिये मैंने कामादि को नियुक्त किया है । उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि शैशवकाल गत होने पर हम सब उन को पराजित करेंगे । परन्तु वह भी असम्भव सा प्रतीयमान हो रहा है । क्योंकि वे देवदेव गौरांग यौवन का प्रारम्भ होते ही अपूर्व रूपलावण्यवती भार्य्या का परित्याग कर जगत् में निर्मल वैराग्य धर्म की शिक्षा के लिये गयाधाम को गमन करने लगे तथा पिता के अर्द्धदेहिक (पिण्डादि)कर्म को सम्पन्न किया ॥४३॥

बाद में जितेन्द्रियवर जगत् के शिक्षागुरु श्रीगौरांगदेव उस गया क्षेत्र में दैववश संन्यासीवर ईश्वरपुरी जी को प्राप्त कर उन को गुरु बनाया तथा उनसे श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी दत्त दशाक्षर-गोपालमन्त्र की दीक्षा लो ॥४४॥

उस के बाद निजभवन में आ कर प्रिय सम्प्रदाय श्रीवास, रामानन्द तथा हरिदास प्रभृति परिकर से परिवृत होकर उच्चःस्वर से हरि—संकीर्त्तन अथवा कभी नृत्य वा हरिलीला का अभिनय तथा रोदन करते हुए त्रिलोकी को आनन्दसागर में निमज्जित करने लगे। तो तुच्छ कन्दर्प उन पर आक्रमण हेतु किस प्रकार अवसर प्राप्त करेगा ।।४५।।

अधर्म—सखे ऐसा मत कहो, जो शम, दम, नियमादि के साथ ध्यान-धारणादि अष्टांगयोगाध्यास रूप अति कठोर तपस्यादियों से निरत हैं, जो दुर्ज्जय काम-लोभादि पंच रिपुओं को अनायास ही विजय कर ब्रह्मपद एवं त्रिभुवन आधिपत्य को वमन की भाँति बोध कर रहे थे, वे सब जिस के स्पर्शमात्र से गिर गये, कहिये तो उस क्रोध को कौन जीत सकता है ?।।४६।।

कलि—सखे ! कोप वराक उन का क्या कर सकता है अर्थात् कुछ नहीं, करेगा, उसका एक कारण सुनो : —नाना प्रकार के विधर्म ही जिनके क्रीड़ा-कौतुक के सहायक थे, सविस्तार पंच महापाप (गौ-ब्राह्मण-स्त्री-वालक हनन एवं गर्वागनाहरण) से जिनका चित्त पक गया था, समस्त लोगों का विनाश करना ही जिन का संकल्प था जो परम दस्यु थे, जो निरन्तर कुपरिच्छेद वाले तथा कुकार्य में तत्पर थे। कुकर्म में निपुण, एक हो गर्भ से उत्पन्न, कपट के दक्कावादय् (ढ़ाक ढोल) स्वरूप, प्रतिदिन जिन का मनोमालिन्य वढ़ता जा रहा था, इस प्रकार महापापो जगाई-माधाई नामक दोनों भाईयों को अनुग्रह कर स्वयं उनको सम्मुख वुलाकर कहने लगे। अरे ! जगाई अरे मधाई ! तुम दोनों ने पापरूप विषों से लुब्ध हो कर जो जो कुकर्म किये हों उन सव महान् पापों को निःशंक होकर मुझे प्रदान करो, इस प्रकार उन का वचन सुन कर

दोनों विस्मित तथा चमत्कृत होकर क्षणिक मौन हुए और बाले लो जिये प्रदान करते हैं" उन्होंने उसी समय उन दोनों के हाथों से जल ग्रहण कर दोनों को निष्पाप तथा शरीर से देदीप्यमान कर दिया। तव दोनों के शरीर विपुल पुलकावलि रूप कंचुक द्वारा आवृत होने लगा, नयनों से निरन्तर आनन्दाश्रु वहने लगा, प्रेम से कंठ रोध हो गया और गद्गद स्वर से केवल "कृष्ण कृष्ण" यह वचन बोलने लगे। बहुकाल के बाद उन के चित्त विशुद्धभक्तियोग के संयोग से पवित्र हो गये और कामादि दोषों से मुक्त हो परम भागवत पदवी पर आरूढ़ हुए। इस प्रकार उन्होंने दोनों को प्रेमविकार प्रदान कर संशयकारी दर्शकों को चित्र-पुत्तलि की भाँति विस्मयापन्न कर आकर्षित किया। हे सखे ! जो कटाक्षपात्र मात्र से दूसरे के हृदय स्थित कामादि छै रिपुओं को पराजित कर देते हैं उन सर्वपापहारी भगवान् विश्वम्भरदेव का क्रोधादि जीत लेना आश्चर्य की बात नहीं है ।।४७।।

(नेपथ्य में कोलाहलध्वनि का होना)

कलि—(कर्णपात करके) सखे ! तुमने सुना है, आज श्रीवास-भवन में यह आनन्द कौतुहल-ध्वनि सुनने में आ रही है। उस से बोध होता है उन चैतन्यचन्द्र के चित-चमत्कारि उत्कृष्टतम कोई चरित्र प्रकाशित हो रहा है ।।४८।।

(पुनः नेपथ्य में उलुलु ध्वनि के साथ विविध ध्वनि का होना)

कलि—(पुनर्वार निर्णय करके) अहे ! हमारा यह अनुमान सत्य हो रहा है। यद्यपि यह विषय देखने में नहीं आता है तो भी दृश्यमान की भाँति प्रतीयमान हो रहा है। देखो सुरसिका विप्ररमणियों की मगल सूचक उलूलु ध्वनि के साथ जय जय

ध्वनि हो रही है, साथ ही साथ विविध वाद्यध्वनि तथा शंख और घंटा-ध्वनि भी हो रही है। इस प्रकार कर्ण कुहर परितृप्तिकर अमृतवर्षी ध्वनि के द्वारा बोध होता है कि कोई अद्भुत महोत्सव समय उपस्थित है। अतएव विशेष कर के इसका निर्णय करना होगा (ऐसा निर्णय करने लगे) ।।४६।।

(पुनः नेपथ्य में) हे राम ! तुम अर्घ्यादि द्रव्य का आयोजन करो, श्रीपति ! तुम शीघ्र ही एक सौ आठ नवीन मंगलघटों को लाओ, हे श्रीकान्त ! तुम वधूवर्ग तथा पवित्र ब्राह्मणियों को गंगाजल लाने को आदेश करो।

कलि—सखे ! मैंने निर्णय कर लिया। जब श्रीवास जी सहोदरों को द्रव्यों के लाने को आदेश कर रहे हैं तब बोध होता है कि वे विश्वम्भर ईश्वरावेश से व्यक्तरूप में कोई असीम प्रभाव प्रकाश कर रहे हैं, इसीलिये यह महान् अभिषेक-महोत्सव आरम्भ हो रहा है ।।५०।।

अधर्म—सखे ! जब वे स्वयं स्वतन्त्र ईश्वर हैं तब क्यों उनका आधुनिक ईश्वरावेश हो रहा है ?

कलि—यद्यपि ईश्वर के ऐश्वर्य्य नित्य एवं वलवान हैं तो भी इच्छामय भगवान अपनी इच्छा से सर्वदा उसे व्यक्त नहीं करते हैं। कभी कभी वे कौतुकवश लौकिकी चेष्टा का आचरण करते हैं जिसे विज्ञजन परम मधुर लीला करके कहते हैं ।।५१।।

(पुनर्वार नेपथ्य के प्रति दृष्टिपात करके) सखे ! देखो देखो, सूर्य की प्रखर किरणावली से युक्त सुमेरुपर्वत के कांचन शृंग की कान्तिलहरी के समान जिन की अपूर्व श्री से ब्राह्मण श्रेष्ठ श्रीवास पण्डित का भवन मानो इलावृत वर्ष की एक भूमिखण्ड को भाँति समस्त मनुष्यों के नेत्रगोचर हो रहा है। जो प्रचुरतर आनन्द से उन्मत्त हो, नयन अश्रु जल से परिपूर्ण

हो रहे हैं। अंग समूह काँप रहे हैं, केशपाश तितर बितर एवं कपोल पुलकायमान हो रहा है यह सब आश्चर्य्य प्रतीयमान नहीं होता है क्या ? ।।५४।।

अधर्म—इन के केशपाश में शिथिलता आ गई है अतएव यह तो सब अनंगदेव का प्रभाव है, ऐसा कहिये। क्योंकि—जहाँ जहाँ हरिणीनयना रमणियों का पदसंचालन होता है वहाँ वहाँ मदन का विक्रम अवश्य ही मानना होगा। क्या सेनापति युद्धविशारद सैन्यसमूह के विना अकेला जयलाभ कर सकता है ? ।

कलि—यह नहीं है-देखो मदनभाव से आक्रान्त होने पर कामिनी एवं पुरुष दोनों का अन्तःकरण चंचल हो उठता है परन्तु इनके अन्तः करण अतिनिर्मल हैं अतएव केवल आकार से ही दोषारोपण करना उचित नहीं है ।।

(पुनर्वार नेपथ्य में तुमुलध्वनि को पुष्ट करने वाली पुरुषसूक्त पारायण से सुरस कलकलध्वनि)

कलि—(निर्णय करके) अहो, अति अद्भुत है। पितामह ब्रह्मा के कमण्डलु के समान इन घड़ों से निरन्तर निपतित मन्दाकिनी वारिधारा द्वारा सुमेरु पर्वत के समान गौरांगदेव का श्रीअंग आर्द्र हो रहा है, अनन्तर यह महाभिषेक वारिधारा भूतल में निपतित होकर अतिवेग से चारों ओर बहने लगी ।।५७।।

और भी देखो, कोई भक्त अभिषिक्त गौरांगदेव के अंग से सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्त्र के द्वारा जल को पोंछ कर मनोहर वस्त्र पहिराय के सुशोभित कर रहा है, कोई अत्यन्त प्रफुल्लचित्त से चन्दनादि लेप रहा है, कोई अलंकार पहराय रहा है, कोई प्रियतम जन अतिकौतुक से चरणकमल को धो रहा है।

इस प्रकार समस्तभक्त अतिप्रेम से तप्तकांचन को तिरस्कारकारी गौरकान्तिधारी भगवान् विशम्भरदेव के चरणारविन्द के समीप अपने अपने वैभवानुसार सुवर्ण तथा मणि-मेखलादि उनसे अभिन्न अद्वैत प्रभु को आगे कर उपहार दे रहे हैं ।।५८।।

अधर्म—सखे ! यह तो लोभ का अवसर हो रहा है । क्योंकि इस भूमण्डल में लोभ नामक दुर्ज्जय शत्रु को कोई पराजित नहीं कर पाता है । जिस के वश में आने पर धीरव्यक्ति का धैर्यक्षय हो जाता है, लज्जाशील व्यक्ति में निर्लज्जता आ जाती है, देखो, इस लोभ से आक्रान्त होकर जगत्पालक भगवान् विष्णु ने भी क्षीरसागर-मथन से उत्पन्न महामणि कौस्तुभ एवं रमादेवी की इच्छा की ।।५९।।

कलि—इनको ऐसा मत समझो, देखो देखो यह गौरांगदेव न कुछ कह रहे हैं, न किसी के प्रति दृष्टिपात कर रहे हैं, न किसी के वचनों को सुन रहे हैं । वे तो केवल निजानन्द से परिपूर्ण होकर अपने असीम प्रभाव से वृद्धिशील हो रहे हैं ।।६०।।

अधर्म—सखे ! यह तो धनमत्तता का चिन्ह है । कहो तो, यह धनमद किस का अनिष्टकारी नहीं होता है । जिसकी उत्तेजना सुवक्ता को मुक की भाँति वाक्य रहित, नयनधारी को अन्ध की भाँति नेत्र विहीन, अबधिर को बधिर, तथा मनस्वी को विमनस्क कर देती है ।।६१।।

अब वृथा-चिन्ता का प्रयोजन नहीं । एक के अवसर में सबका प्रवेश होना अनुमान किया जाता है । इस एक मात्सर्य्य के प्रवेश से सभी कामादि का प्रवेश मानना होगा । मात्सर्याक्रान्तजन दूसरे की उन्नति को देखने में असमर्थ होकर मलिन, क्रूर एवं प्रतारणापटु बन जाता है । कोटरस्थित अग्नि जिस प्रकार वृक्षों को दग्ध कर देती ठीक उसी प्रकार

मात्सर्य-रिपु उत्पन्न होकर उस व्यक्ति को नष्ट कर देता है । जिस के आक्रमण से मनुष्य दुष्ट (खल) संज्ञा का प्राप्त होता है । वह विश्वविक्षोभकारी तथा आप का प्रधान मंत्री मात्सर्य उस गौरांग में विराजमान है ।।६२।।

(पुनर्वार नेपथ्य में) अहो आश्चर्य्य, हे अद्वैत ! जिन के अष्टादश प्रहर क्षणकाल के समान बीते आनन्दमय उन गौरांगदेव के सन्तोष के लिये हम सब क्षुद्र क्या उपचार कर सकते हैं ? अतएव अब आप सब इस प्रकार उन की स्तुति कीजिये कि जिससे वे स्वाभाविक निविड़ आनन्द का संकोच त्याग कर निज भक्तवात्सल्य गुण से बाह्यवृत्ति का अवलम्बन करें ।।६३।।

कलि—सखे ! तुमने सुना है, भक्तगण केवल ऐश्वर्य का सहन नहीं करते हैं क्यों कि श्रीवास ऐसे कह रहे हैं ।।

अधर्म—हाँ सुना है, परन्तु वे सब भक्तगण उन के भीतर के अहंकार एवं मोह का प्रचार कर रहे हैं ।

यदि उन का आनन्द स्वाभाविक है तब कभी उसका परित्याग नहीं कर सकते । अतएव भीतर में प्रबलतर अहंकार विद्यमान है जिसके प्रभाव से विश्व को तृणज्ञान कर रहे हैं । और यदि उनका निजजन में मोह नहीं रहता तो उन के वचनों को क्यों सुनते ।।

कलि—वात्सल्यता के कारण उन की बातों को सुन रहे हैं ।

अधर्म—सामान्य व्यक्ति के इस प्रकार आचरण को मोह एवं महज्जन के आचरण को वात्सल्य ही कहा जाता है ।।

कलि—मूर्ख ! छोटा-बड़ा विचार तो जीवगत धर्म माना जाता है । अतएव जीवगण-यह क्षुद्र है यह महत् है-इस प्रकार पृथक् बुद्धि करते हैं ।

(पुनः नेपथ्य के प्रति दृष्टिपात करके) अहो! अकस्मात् ही अद्वैत प्रमुख भक्तगण, श्रीवासादि चार सहोदर एवं उन की वधूगण एक ही समय भूतल में दण्ड की भाँति क्यों गिर रहे हैं। हाँ जान लिया, भगवान् गौरचन्द्र अपने आनन्द तरंग से मुकुलित बाद में प्रफुल्ल कमल की भाँति करुणा मधु-वर्षी दोनों नेत्र को उन्मीलित कर रहे हैं ॥६८॥

(पुनः बहु समय तक निरूपण करके) अहो! अति अद्भुत है-भगवान् विश्वम्भर मेघसमूह की भाँति गम्भीर एवं धीर स्वर से "हे भक्तगण! तुम सब हम में चित्त का समर्पण करो," इस प्रकार कहकर उन के मस्तक में अपने चरणारबिन्द को अर्पण करने पर वे सब अश्रुपूर्ण नयनों से उत्कण्ठा, वाष्प, शीत्कार, पुलक, उल्लास तथा कौतुकादि सात्त्विक विकार से परिवृत हो महानन्द से विमुग्ध हो रहे हैं। अतएव इस के बाद वे भक्तगण यहाँ आ जावेंगे, अब चलो हम अन्यत्र जाकर परामर्श करें ॥६६॥

अधर्म—सखे! मेरा वासस्थान कहाँ निर्णय किया है?।

कलि—स्थिर किया है, सुनो।

जो विद्वान्, सच्चरित्र, तपस्वी, सद्वंशजात, आश्रमी एवं जितेन्द्रिय होकर भी उन प्रभु गौरांगदेव के निर्मल चरित्र की निन्दा करते हैं उन मनुष्यों में तुम निवास करो, तुम्हारी भार्या मिथ्या उन के विमुख जनों में निवास करे और तुम्हारे पुत्र दम्भ भक्तिरसशून्य केवल शुष्क कर्म निरत जनों में निवास करें। सखे! तुम सब का निवास स्थान निर्णीत हुआ अब खेद मत करना ॥

अधर्म—सखे! जैसा तुम्हारा अभिप्राय वैसा ही करूँगा। (ऐसा कह कर दोनों का प्रस्थान)

(विष्कम्भक अर्थात् भूत-भविष्यत् वस्तु की अंशरूप से सूचना)

(जहाँ अंक से अंक की सूचना होती है)

(अनन्तर दिव्यवेशधारी, पर्यंकारूढ़ एवं आनन्दनिद्रा से जागरित की भाँति भगवान् विश्वम्भरदेव एवं चारों ओर घिरे हुए अद्वैतादि भक्तवृन्द तथा दूर में संकीर्त्तन-परायण अन्य भक्तगण प्रवेश करते हैं।)

भगवान्—हे अद्वैत! आपने असाधारण विशुद्ध प्रेमामृत वन्या द्वारा गोलोक से मुझे अवतीर्ण कराया है ॥६८॥

अद्वैत—(अंजलिपुट से) भगवन्! मैं अति क्षुद्रतम हूँ। आपने ही जीव के प्रति अनुग्रह प्रदान में यत्नवान् होकर इस पृथ्वी पर लीलावश आप ही ने अपने को अवतीर्ण कराया है। ऐसा नहीं होता तो भागवत में जो कुन्ती देवी ने कहा है-"हे कृष्ण! आत्मानात्म विवेकी परमहंसगण तथा मननशील रागद्वेषरहित मुनिगण तुम को नहीं देख पाते हैं इसीलिये भक्तियोग विधानार्थ तुमने जन्म लिया, हम सब स्त्रीजाति हैं, कैसे तुम्हारा दर्शन प्राप्त करेंगी।" इस उक्ति के अनुसार उस प्रकार भक्ति-रस-शून्य शुष्कहृदय मुनिगण के अन्तःकरण सरस करने के लिये एवं जगमङ्गलार्थ स्वयं भगवान् ब्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण आप अवतीर्ण होकर धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्षादि पुरुषार्थ-तिरस्कारी श्रवण-कीर्त्तनादि परम धर्म प्रचार कर रहे हैं, साथ में गोकुल-मथुरा एवं द्वारकालीला ब्रह्मानन्द से चमत्कार-कारी हैं इस का भी प्रचार करते हैं ॥६६॥

और भी गोपियों के प्रति उद्धव-उक्ति है "तुम सब भाग्यवश उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण में मुनिदुर्लभ अतिश्रेष्ठ भक्ति प्राप्त कर रही हो"-इसी के अनुसार अशेष रससागर के परपार विराजमान, गोकुलादि नाम से विख्यात परमानन्दमय श्रीवृन्दाबन मध्य श्रीकृष्ण में गाढ़ानुरागवश परमभाग्यवती तथा मूर्त्तिमती-ह्लादिनी शक्ति रूपिणी आभीररमणियों के

द्वारा उस प्रेमतत्व का प्रवर्तन किया है। परन्तु वह प्रेमतत्व उस समय उस वृन्दावन में मौजूद रहा। अब उस अपूर्व प्रेमरस के आस्वादन के लिये तदुचित मूर्तिधारण कर निरन्तर उस रसामृत के गण्डूष (चुल्लु) रूप से पान कर रहे हैं। आप की अंगुलियों से गिरे हुए कण मात्र में हम सब पान कर रहे हैं सुतरां हम सब की भक्ति से आप अवतीर्ण हुए हो यह कभी सम्भव नहीं है ॥

भगवान्—श्रीवास ! तुम्हें स्मरण होता है क्या तुम्हारी मरण-दशा हो गई थी, मैंने चांटा मारकर वहिर्गमनशील प्राणवायु का रोध किया था ॥७०॥

श्रीवास—(स्मरण का अभिनय करके) हाँ मेरा स्मरण हो रहा है। प्रभो ! मैं कालकवल में पतित हुआ था, किसी प्रकार रक्षा हुई ॥ (सुन कर सब भक्त विस्मित होते हैं)

भगवान्—श्रीवास ! प्रारम्भ से समस्त वृत्तान्त कहो, **सब** कोई श्रवण करें ॥

श्रीराम—भगवन् ! आप के अवतीर्ण होने के पहिले मैं बाल्य-काल से ही सोलह वर्ष तक दुर्दान्त स्वभाव एवं ब्राह्मण-गुरुदेव में अपराधी रहा। मेरा चित्त कुपथगामी होने के कारण शान्ति-लाभ नहीं कर पाता था। मेरा काष्ठवत् नीरस हृदय दुरवस्था-वश दया रहित था। वृथा कलह एवं कुआलाप वश मेरी बुद्धि अभिमान से पूर्ण एवं चंचल थी। कभी स्वप्न में भी मैंने भगवद् गुणादि का श्रवण व कीर्त्तन नहीं किया। एक समय निद्राविर्भाव में मेरी वाह्येन्द्रिय की वृत्तियाँ विलुप्त हो गई। पूर्व जन्मों में संचित प्रचुर पुण्य-फल वश कोई एक महात्मा स्वप्न में उपस्थित होकर करुणाद्रचित्त से उपदेश करने लगे यथा-अरे ब्राह्मणाधम ! रे चंचलहृदय ! यद्यपि उपदेश करना उचित नहीं है तो भी कहता हूँ सुनो, केवल एक वर्ष तुम्हारी

आयु रह गई है, अतएव अब वृथाकार्य में कालक्षेप मत करो ॥७१॥

अनन्तर रात्रि प्रभात हुई, "एकवर्ष से अधिक जीवित नहीं रहूँगा" यह बचन निरन्तर स्मरणपथ में आरूढ़ होने के कारण अन्तःकरण अन्य-विषयों में चंचल न होकर केवल मृत्यु-भय से उत्कण्ठित हो गया। तब से आहारादि परित्याग कर केवल उपदेशामृत पान से ही समय बिताने लगा। किस उपाय से मनुष्यों का मंगल होता है इस का निर्णय करना हुआ नारदीयपुराण से यह पद्य प्राप्त हुआ ॥७२॥

यथा— 'हरिनाम बिना हरिनाम बिना हरिनाम बिना इस कलियुग में अन्य प्रकार कोई गति नहीं है, गति नहीं है, गति नहीं है।" तदनन्तर इस पद्य को दैत्यदलनकारि भगवान् श्रीहरि का उपदेश मानकर समस्त कर्म परित्याग कर केवल हरिनाम का आश्रय लेने लगा। अपने घर में अब मन का अभिनिवेश रहा नहीं। सब के उपहास करने पर भी चित्त में क्रोध नहीं रहा। अन्तःकरण के अन्य विषयों में विलिप्त न रहने के कारण संसार में अनुराग रहा ही नहीं। निरन्तर दुःखित हृदय से मृत्यु दिवस की गणना करने लगता था। इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हुआ कि-मृत्यु दिवस को निकट जानकर भागवत के अध्यापक देवानन्दपण्डित के घर पर भाग-वत सुनने के लिये समुत्सुक होकर जाने लगा ॥७३॥

प्रह्लादचरित्र का श्रवण कर रहा था, जब मृत्यु काल उपस्थित हुआ तब भवन की सीढ़ी से आंगन में नीचे गिरा। तदनन्तर किसी करुण-हृदय ने पुनर्वार परमायु प्रदान कर मृत्यु से मेरी रक्षा की ऐसा जान कर विवश हो मैं पुनः उठने लगा। उस समय सब कोई उठाकर मुझ को घर पर लाये ॥७४॥

भगवान्—रात्रि में मैंने ही स्वप्न दिया एवं मृत्यु के समय जीवन दान कर तुम्हारी रक्षा मैंने ही की है ।। (समस्त भक्त विस्मित हो जाते हैं)

भगवान्—जिस प्रकार स्पर्शमणि के स्पर्श से लोहा सुवर्ण भाव धारण कर लेता है उसी प्रकार तुम्हारे इस शरीर में नारद-शक्ति के प्रवेश हेतु अन्य प्रकार प्रतीयमान हो रहा है ।।

अद्वैत—सत्य ही कहते हैं, नहीं तो मृतव्यक्ति किस प्रकार पुनर्जीवित हो सकता । हे भगवन् यद्यपि आपका स्वतः सिद्ध सुमधुर भाव इन समस्त भक्तों को अत्यन्त प्रिय है तो भी "हमारे भजन से मनुष्योंका शरीर अन्य शरीर की भाँति पूर्व स्वभाव से रहित होता है" इस उपदेश प्रदान के अभिप्राय से आपने इस प्रकार ऐश्वर्य दिखलाया । वस्तुतः आपकी भक्तिरूप अपूर्व सम्पत्ति के गृहरूप श्रीवास की यह आश्चर्य-महिमा है ।।७५।।

भगवान्—अद्वैत ! यह सत्य है ।

अद्वैत—भगवन् ! नयनानन्द-प्रद आपके मुरारि तथा मुकुन्दादि भक्तों का हृदय आपके उत्कृष्ट दास्यभाव से निर्मल हो रहा है ।

भगवान्—अद्वैत ! मुरारि एवं मुकुन्द के अन्तःकरण में महान् अन्याय मौजूद है ।

दोनों—(बज्रपात के समान इस बचन का श्रवण कर काँपने लगे)

अद्वैत—देव ! इन दोनों का क्या दोष है ?

भगवान्—मुरारि के अन्तःकरण में भक्तियोग की अवस्थिति नहीं है । क्योंकि लसुन-दुर्गन्धि की भाँति अत्यधिक कटु अध्यात्म भावना में इसका अत्यन्त आग्रह देखने में आ रहा है । अभी भी मैं योग-वशिष्ठ शास्त्र में इसका अत्यन्त आग्रह देख रहा हूँ ।।७६।।

अद्वैत—अध्यात्मयोग में क्या अपराध है ? ।

भगवान्—तुम ऐसा क्यों कह रहे हो । जो व्यक्ति निरन्तर सर्वमंगल पति भगवान् श्रीहरि के भक्ति रूप अमृतसागर में विचरण कर रहा है उसकी अन्य क्षुद्रगर्त्तजल में स्प्रहा नहीं रहती है ।।

अद्वैत—मुकुन्द ने क्या अपराध किया है ? ।

भगवान—भगवान् की श्रीमूर्त्ति चतुर्भुज है ऐसा इसका सिद्धान्त है एवं भक्तिपूर्वक उसी की उपासना करता है ।

अद्वैत—क्या यह मत अमत है ?

भगवान्—भगवान् की मूर्त्ति स्वभाव से द्विभुज है, परन्तु वे इच्छानुसार चतुर्भुज मूर्त्ति प्रकट करते हैं । जैसा कि—शास्त्रों में कहा है— "नराकार परब्रह्म" "मनुष्य-चिन्ह से आक्रान्त होकर परमेश्वर गूढ़ रूप में अवस्थान कर रहे हैं" "परमात्मा मनुष्य की भाँति आकार वाला है" इत्यादि । यहाँ नराकार के कथन से द्विभुजत्व सिद्ध होता है ।।७८।।

अद्वैत—हे पुरुषोत्तम ! आप स्वयं ही अपने को जानते हैं । अतएव अपने रूप-तत्व का उपदेश कीजिये ।

भगवान्—(अनुग्रह प्रकाश कर) तुम को दर्शन कराऊंगा ।

अद्वैत—अनुग्रहीत हुआ, परन्तु मुरारि तथा मुकुन्द गुरुतर अपराध से मर्म्मातिक यातना को प्राप्त हो रहे हैं । अतएव इनके प्रति प्रसन्न होवें । हे प्रभो ! दुरन्त विषय वासना रूप काल-कूट से जर्जरित अंग जिनकी शीतल-छाया से शीतल हो जाता है एवं जिनसे निरन्तर करुणा मकरन्द विगलित होता रहता है, कमल-निन्दि उन चरणरूप छत्रछाया को अनुग्रह करके इनके मस्तक पर प्रदान कीजिये ।।७९।।

भगवान्—(ऐसा करके) गोपिकासुत भगवान् भक्तिमान जनों के जिस प्रकार सुखलभ्य हैं उस प्रकार देहाभिमानी तापसादि

एवं निवृत्ताभिमानी आत्मभूत ज्ञानियों के सुखलभ्य नहीं हैं। (यह पाठ कर अनुग्रह पूर्वक कहने लगे) हे मुरारि! हे मुकुन्द! इसके आगे इस प्रकार विजातीय-वासनायुक्त मत होना॥

दोनों—(दण्डवत् पतित होकर) हे भगवन् श्रीहरे! हम आपके चरणकमलों के एकमात्र आश्रित दासों के दास पुनः होंगे एवं अभी भी हैं। हे प्राणसमूह के पति! हमारे मन आपके गुणों का स्मरण करें, वाक्य आपकी गुणावली का कीर्त्तन करें, हमारे शरीर आपके कर्मों में लिप्त रहें॥ (यह श्लोक पाठ करने लगे)

भगवान्—ऐसा ही हो।

शुक्लाम्बर—(दैन्य के साथ) देव! मैंने प्रचुर तपस्या की, अनेक तीर्थों का पर्यटन किया, तो भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं हो पाया। अतएव आप प्रसन्न होंवे तथा करुणानेत्र से दृष्टि-पात करें। (ऐसा कह कर निर्भय एवं असंकुचित चित्त से उन के चरणों पर मस्तक अर्पण करने लगे)॥८१॥

श्रीवास—(अवलोकन करके निकट में आगमन पूर्वक) गदा-धर! देखो, देखो, इस ब्राह्मण का चित्त अति कठिन तपस्या जात उत्कट अहंकार से वज्र से भी अति कठिन हो गया था। अब प्रभु के चरणस्पर्शमात्र से द्रवीभूत होगया मानो वह चित्त नयनद्वार से अश्रुधारा छलसे विगलित और रोमाञ्च छल से प्रकाशमान हो रहा है। पहले संकीर्त्तनरस में इन प्रभु के साथ हम सब निरन्तर विचरण करते थे। परन्तु इनकी माता शची देवी इन्हें सामान्य पुत्र मानकर "मेरे पुत्र को ये सब अन्याय उपदेश कर उन्मत्त कर रहे हैं जिससे वत्स की सांसा-रिक प्रवृत्ति बिलकुल विनष्ट हो गयी है", ऐसा कहकर नाना प्रकार से भर्त्सना करती थी। जिनका अन्तःकरण असीम

आनन्द से निमग्न हो रहा है इस प्रकार असाधारण तेजस्वी गौरांगदेव को यदि वह एक बार देखती तब हृदय में चिर-विराजित पुत्र भाव विदूरित हो जाता। यह किस प्रकार होगा?॥

गदाधर—आचार्यचरण यदि कहेंगे।

अद्वैत—क्या कहेंगे?

श्रीवास—(कर्ण संलग्न में मृदुस्वर से समस्त कहने लगे)

अद्वैत—उत्तम कहा है, अब निश्चिन्त होकर शचीदेवी को ले आओ, उनकी बहु काल की भ्रान्ति विदूरित हो।

श्रीवास—जैसी आज्ञा (ऐसा कह कर बाहिर जाकर शचीदेवी के साथ पुनः प्रवेश कर कहने लगे) हे प्रभो अद्वैताचार्य्य! आप विचार करके जगज्जननी शची देवी का आगमन सम्बाद प्रदान कीजिये। जिससे कि भगवान् विश्वम्भर इनके प्रति कृपा-प्रसाद विस्तार करें॥८३॥

अद्वैत—(अंजलि बाँध कर) हे देव! पहले कपिलदेव रूप में आपने अपनी माता देवहूति को ज्ञान एवं भक्तियोग का उपदेश देकर कृतार्थ किया है। हे विश्वम्भर अब अपनी नीति-परायणा जननी शचीदेवी को सुनिर्मल प्रेमानन्द प्रदान कर कृतार्थ कीजिये। (ऐसा कह कर शचीदेवी का हस्तधारण कर प्रफुल्ल सुस्थिर अन्तःकरण से भगवानके सम्मुख उपस्थित कराने लगे॥८४॥

शची—(विस्मित तथा चमत्कृत होकर अपूर्व निज आनन्दरस में निमग्न अद्भुत नीति वाले पुत्र को देख कर उनकी अनुकंपा से कम्पायमान शरीर हो गई, उस समय मानो वाग्देवता-अवतार प्रतिभावाली होकर वह कुछ कहने लगी। "हे प्रभो! प्रलय काल में समस्त विश्व जिस के उदर में अनायास अव-स्थान करता है वह परमेश्वर आप मेरे गर्भ में जन्म ग्रहण

किये हैं यह तो मनुष्यलोक में विड़म्बना मात्र है" (ऐसा कह कर ग्रहग्रस्त की भांति अत्यन्त विह्वल होकर बलपूर्वक चरण धारण की इच्छा करने लगी) ॥८५॥

अद्वैत—(निषेध करके विस्मय के साथ) अहो ! यह स्फूर्ति क्या है ? श्रीकृष्ण के आविर्भाव समय में माता देवकी ने जो स्तव किया है यह वही स्तव कर रही हैं। यह स्वभाव सिद्ध मातृभाव है। क्योंकि सुनिर्मल पूर्वतनभाव जन्मान्तर में भी मनुष्य के अंतर में उदय होता है ॥

भगवान—देवि ! यद्यपि आप जगज्जननी हैं तो भी श्रीवासादि भक्त गण के निकट आपका अपराध हुआ है। उसकी निवृत्ति न होने पर आप कभी परमेश्वर का अनुग्रह भाजन नहीं हो सकती हैं क्योंकि भगवद्भक्तगण के अपराध समस्त शुभ कार्य का बाधक होता है ॥८६॥

अद्वैत—भगवन् ऐसा नहीं। जगज्जननी शचीदेवि में कोई अपराध नहीं हो सकता। जगत्पति आप जिसके उदर में जन्म ग्रहण किये हुए हैं। हाय ! सन्तानगण माता के निकट अपराधी होते हैं परन्तु माता कभी पुत्र के निकट अपराधिनी नहीं हो सकती। (अनन्तर श्रीवास को सम्बोधित करके) अहे श्रीवास ! यद्यपि अपने तनय श्रीकृष्ण में देवकी की ईश्वर बुद्धि थी तो भी उसका इस प्रकार भक्तियोग का उदय नहीं हुआ था। यह तो अपने सन्तान के चरणों के धारण में उद्यत हो रही हैं ॥८७॥

श्रीवास—अब हम सब निःसंकोच हुए ॥

अद्वैत—अहे अहे श्रीवासादि भक्तगण ! ईश्वरावेश से गौरांगदेव का केवल मातृभाव निरस्त हुआ ऐसा नहीं अपितु माता शचीदेवी का इनके प्रति चिरन्तन पुत्रभाव भी विदूरित हो रहा है। अब आप सब इस प्रकार स्तुति कीजिये जिससे उनका ईश्वरावेश निरस्त हो जाय ॥

सब—स्वामिन् ! ऐसा ही होगा। (ऐसा कह कर श्रीअद्वैत प्रभु के साथ उस प्रकार स्तव करने लगे) यथा-भो देव ! ह्लादिनी-सन्धिनी एवं सम्वित् नाम्नी तीन शक्ति एवं छः ऐश्वर्य यद्यपि अविच्छिन्न भाव से आपके आश्रित हैं तो भी स्वेच्छावश जब जो शरीर धारण करते हैं तब उस रूप से प्रकृति को प्रकाशित करने लगते हैं। अतएव प्रभो ! अब आप हम सबके प्रति ऐसी अनुकम्पा कीजिये। आप भक्तभाव से बाल्यावधि हम सब के सौभाग्यवश जो परम मनोहर मानव रूप धारण करके तथा हम सबके समस्त दुःख को दूर करते हुए परमानन्द प्रदान किये हैं अब उसी रूप का प्रकाश कीजिये। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अर्जुन ने कहा है-"हे प्रभो ! उसी रूप को देखाइये"—यह आरम्भकर शेष में अर्जुन कहने लगा—"हे जनार्द्दन ! आपके अतिरमणीय सौम्य मानवरूप दर्शन करके पूर्ववत् चेतना लाभ किया" इत्यादि। वस्तुतस्तु एक ही सूत में सामान्य मणियों को गूंथने से चिंतामणि की जिस प्रकार उत्कर्षता की हानि नहीं होती है उस प्रकार इन्द्रियातीत पर वस्तु परमेश्वर सामान्य मानव का व्यवहार करने पर भी उनके ऐश्वर्य की अणुमात्रा भी त्रुटि नहीं होती ॥८८॥

भगवान्—(पूर्व प्रकृति अवलम्बन करके भक्तभाव से कहने लगे) अहे ! अद्वैतादि भक्तगण ! क्या मैं अब तक निद्रित रहा। तुम सबने क्यों निद्रा भंग नहीं कराया ?

भक्तगण—भगवान् ! आपकी आनन्दनिद्रा भंग न हो इस भय से।

भगवान्—हाय हाय ! मेरा इतना समय वृथा ही व्यतीत हुआ। अतएव सब चलो, कृष्ण-संकीर्त्तन करें।

भक्तगण—(सहर्ष) देव ! जैसी आज्ञा ।

(ऐसा कह कर सब प्रस्थान करने लगे) ॥८६॥

इति श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटके कुसुमसरोवरनिवासी कृष्णदास कर्तृक अनुवादित निजानन्दावेश नामक प्रथमाङ्क समाप्त ।



द्वितीय अङ्क

(अनन्तर विराग का प्रवेश)

विराग—(चारों ओर देखकर) अहो ! आश्चर्य्य, समस्त जगत् बहिर्मुखता से परिपूर्ण हो रहा है—

शुचि नहीं सत्य नहीं कहीं शम दम नहीं,
कहीं तो नियम नहीं देखूँ अहो जग में ।
शान्ति नहीं क्षान्ति नहीं हाय हाय मैत्री नहीं,
कहीं दया नहीं अहो गये किस मग में ॥
अहो वे तो कलिराज कृत उन्मूलित ह्वै कै,
अज्ञात निवास करें चलूँ रग रग में ।
दीन हीन जन मन पवित्र-करण कारी,
"कृष्णदास" समाश्रित महाप्रभु पग में ॥

कहीं शौच है, न सत्य है, न शम-दम-नियम हैं, न शान्ति है, न क्षमा है, हाय हाय न कहीं मित्रता है न दया है । अहो हमारे निष्कपट प्रिय सुहृद्गण कहां गये ? क्या वे सब मानव-गण द्वारा उन्मूलित होकर अलक्षित स्थान में निवास कर रहे हैं ? ॥१॥

हाय ! उनका निवास स्थान नहीं देख पा रहा हूँ, वे कहाँ होंगे ? देखिये—

केवल दान कम में प्रगाढ़ है बुद्धि रखें,
सूत्र मात्र चिह्न धारी द्विज-गण जेते हैं ।
क्षत्रि-गण धरावन कर्मादि छाँड़ि के सदाँ,
नाम मात्र राजै बोद्ध इव वैश्य तेते हैं ॥
शूद्र सबै पण्डिताभिमानी ह्वै कै अन्य प्रति,
उपदेश करत है गर्व-युत देते हैं ।
वर्णाश्रम गति एह कलिराज कृत भई,
दास-गण महाप्रभु पग धूलि लेते हैं ॥

द्विजगण यज्ञोपवीत चिह्न मात्र धारण करके दान-ग्रहण कर्म में मग्न हो रहे हैं,क्षत्रियगण धरा-पालनादि कार्य से कुण्ठित होकर केवल "क्षत्रिय" इस नाम का धारण कर रहे हैं वैश्यगण बौद्ध की भाँति हो रहे हैं और शूद्र सब पण्डिताभि-मानी होकर धर्मोपदेश करने लग गये हैं हाय ! कलिने यह दुरवस्था की है ॥२॥

विवाहादि में असक्त ह्वै के ब्रह्मचारी बने,
अपने को परिचय देवें घर घर में ।
गृही सबै स्त्रिरिपुत्र-उदर भरणासक्त,
नाना-चेष्टा रत आधि व्याधि जर जर में ॥
बानप्रस्थ नाम मात्र सुनिवे को आवत हैं,
बन वास छाँड़ि के जु फिरैं घर घर में ।

परिव्राज वेश लक पर द्रव्य-हारी ह्वै कै,
अपने को ख्यात करें फिरें तर तर में ॥

और भी कोई कोई तो विवाह न होने के कारण ब्रह्मचारी बने हुये हैं, गृहस्थगण केवल स्त्री-पुत्रादि के उदर भरण में लगे हुए हैं, वानप्रस्थगण तो नाम मात्र से ही सुनने में आ रहे हैं, संन्यासीगण केवल वेशमात्र धारण कर आत्म परिचय दे दूसरे का धन हरण कर रहे हैं ॥३॥

(कुछ दूर गमन करके) अहो ! सम्मुख में यह पण्डित-मण्डली बिराजमान है । तब तो इनके भीतर- बाहिर के भाव की परीक्षा करके देखूँ । (ऐसा कहकर कुछ काल स्थिर रूप से निर्णय करके) अहो ! ये सब तार्किकगण हैं—

जाति अनुमिति उपमिति व्याप्ति बहुव्याप्ति,
शब्दावली रटत हैं मन मधि चाह है ।
जन्म से ही भगवत कथा में पराहत हैं,
अति दूर ही में रहे तर्क मन माह है ॥
जितने जो कल्पना विषय कों पटुता माने,
प्रधान पण्डित बने उतने ही ठाह है ।
निज कृत कल्पना ही महाशास्त्र मानत हैं,
अहो ये तार्किक सबै चलूँ नहीं थाह है ॥

ये सब जन्म से लेकर केवल-जाति-अनुमिति-उपाधि-व्याप्ति इत्यादि शब्दों का आलाप कर रहे हैं, इनकी भगवद्वार्त्ता तो बहुत दूर चली गई । इनमें से जो कल्पना-विषय में अत्यधिक पटु हैं वे ही प्रधान पण्डित माने जा रहे हैं । ये सब अपनी अपनी कल्पना को शास्त्र करके मानते हैं ॥४॥

अतएव इनके साथ वाक्यालाप करना वृथा ही है । यहाँ से अन्यत्र चलूँ (ऐसा कह कर कुछ दूर गमन करके) अहो ! सम्मुख में अत्यन्त पवित्रतम कुछ व्यक्तियों को देख रहा हूँ, ये

सब भगवदनुशीलन में अनुरत प्रतीत होते हैं । अतएव इनके भाव की परीक्षा करके देखूँ ! (ऐसा कहकर उसी प्रकार निरूपण करके) अहो ये सब मायावादी हैं !

सन्मात्र जु निर्विशेष उपाधि भेद-रहित,
निर्विकल्प निरीहरु अपने में माने हैं ।
निरन्तर "ब्रह्मैवास्मि" अपने को कहत हैं,
हाय हाय प्रभु जू में विश्वास न ठाने हैं ॥
श्रौत सिद्ध अचिन्त्य अशेष शक्ति मूर्त्तिधारी,
भगवत स्वरूप को अन्य बुद्धि जानै हैं ।
अहो अपने को ज्ञानी जन करि कहत हैं,
कर बद्ध ह्वै कै इतहि ते नमः लाने हैं ॥

ये सब सन्मात्र, निर्विशेष, उपाधि एवं भेद-ज्ञान रहित, निरीह, हम ब्रह्म हैं-इस प्रकार निरन्तर कह रहे हैं । हाय ! भगवद्विग्रह में इनका विश्वास नहीं है । "भगवान् ने अचिन्त्य शक्ति से अशेष मूर्त्ति धारण की है" श्रुति प्रसिद्ध इस बात का प्रत्याख्यान कर रहे हैं, श्रीविग्रह में इनका किञ्चिन्मात्र अनुराग नहीं है अतएव उनको नमस्कार ॥५॥

(ऐसा कहकर उनका त्याग कर अन्यत्र गमन करके चारों ओर दृष्टि पात करके) अहो ! ये सब जन परस्पर में विवाद कर रहे हैं, इनके भी भीतर का भाव ज्ञात करूँ । (ऐसा कहकर स्थिर चित्त से निर्णय करके) अहो ! ये सब कपिल-कणाद-पतंजलि-जैमिनि आदि के मत को जानने वाले परस्पर विवाद कर रहे हैं । इनमें भगवान् तत्त्व को कोई नहीं जानता है अतएव यहाँ से भी चले जाना अच्छा है । (पुनः कुछ दूर जाकर) अहो ! मैं तो दक्षिण दिशा में आ गया । यहाँ तो जैन सौगत, बौद्ध, कापालिक आदि प्रचण्ड पाषण्डिगण देखने में आ रहे हैं । हतायुष ये पाशुपतगण हम को विनष्ट कर डालेंगे अतएव यहाँ

से भी पलायन ही उचित है (ऐसा कहकर कुछ दूर गमन पूर्वक कुछ देखकर) अहो ! यह व्यक्ति साधु होगा, क्योंकि यह नदी तीर में शिला-विनिर्म्मित आसनोपरि बैठकर गुणातीत परात्पर परमेश्वर का ध्यान कर समय बिता रहा है। इसके मन का भाव ज्ञात करूँ। (ऐसा कहकर उसी प्रकार आचरण कर) ।।६।।

जिह्वाग्र को ललाट-सुधा क्षरण मारग में,
रोधकरि निज ध्यान पटुता को दिखावे।
नदीतटोपरि बद्धासन ह्वै के बैठे रहै,
नयन मुद्रित कर बड़ा ध्यानी लखामें ।।
अहो अकस्मात याको ध्यान भंग हो गया है,
कारण याको जो लखूँ रमणी की निधा में।
जल लैवें आई वह वाकी शंखध्वनि सुनि.
मति फिरि गई सब स्वांग भई फिका में ।।

अहो—यह तो जिह्वा के अग्रभाग से ललाट-स्थित चन्द्र के अमृत क्षरण मार्ग को रोध कर अपनी ध्यान-पटुता का प्रकाश करता नदी तट में आसन बाँधकर नेत्रों को मूँद ध्यान कर रहा है। अहो ! अकस्मात इसका ध्यान भंग क्यों हुआ ? (ऐसा कहकर विस्मय के साथ चिंता करता हुआ) हाँ ! जान लिया, एक तरुणी रमणी जल भरने को आई है, उसकी शंखध्वनि सुनकर इसकी यह अवस्था हुई। अतएव केवल उदर भरने के लिये यह नाट्य मात्र है (ऐसा कह कर अन्यत्र गमन पूर्वक चारों ओर अवलोकन कर) अहो ! यह व्यक्ति निष्परिग्रह प्रतीयमान हो रहा है, बोध होता है यह कोई तैर्थिक संन्यासी है। वह दैवागत किसी पथिक के साथ आलाप कर रहा है। इसके भी भीतर का भाव ज्ञात करूं। (ऐसा ज्ञात कर स्वयं कहने लगा) ।।७।।

गंगा-गया-प्रयाग-मथुरा-वाराणसी अरू
पुष्कर श्रीरंग कोशल वदरिका है
रामेश्वर प्रभासादि जग मधि तीर्थ जैतें
प्रति सम्बत्सर फिरूं बार बार ठिका है
कितने ही शत शत सम्बत्सर गत हुए
हमें कौन जान सके जग-उच्च जीका है
तीर्थ वासी हम नाना तीर्थ में भ्रमण करें
हम सम कोई नहीं आओ देवें टीका है ।।

अहे ! हम तो हरिद्वार, गया, प्रयाग, मथुरा, वाराणसी, पुष्कर, श्रीरंग, उत्तर कोशल, बद्रिका, सेतुबन्ध एवं प्रभासादि तीर्थों में प्रति वर्ष तीन-चार बार पर्यटन करते हैं, इस प्रकार कई सौ वर्ष बीत गये हैं हमें कौन जान सकता है ? ।।८।।

(इसके पश्चात् उल्लेख कर) अहे ! अच्छा है अच्छा है, कलि के उत्पात से द्रवित होकर निभृत में तुम में रहता है। अतएव यहां से चलूँ। (ऐसा कर आगे देखता हुआ) अहो यह एक तपस्वी देख रहा हूँ, ज्ञात होता है यह पण्डित है। इसको भी देखूँ। (ऐसा कर) हाय कष्ट हाय कष्ट यह तो उससे भी दुष्कृतिशाली है।

जैसा कि—यह तो बार बार हुंकार ध्वनि करता कुटिल दृष्टि तथा निष्ठुर वचनों से सम्मुख स्थित लोगों को हटा रहा है, अपने पांव फेंकता रहता है। ललाट-बाहु-गलदेश, ग्रीवा, उदर एवं वक्षःस्थल में शुभ्र मृत्तिका लेपन कर रहा है। हाथ में कुशा धारण किया है मानों मूर्तिमान दम्भ आ रहा है ।।९।।

अहो ! आश्चर्य ! विशुद्ध हरि-भक्ति के बिना धारणा, ध्यान, एकाग्रचित्तता, शास्त्राभ्यास, श्रम, जप, तपस्या एवं नित्य-नैमित्तिक कर्मादि का कुशल नट की नाट्य शिक्षा-प्रणाली की भाँति केवल उदरपूर्ति के लिये ही है यह जानना ।।१०।।

अतएव हे कलिराज ! धन्य धन्य, आपने समस्त पृथ्वी-तल को चक्रवर्ती के भांति वशीभूत कर लिया है। सम एवं दमादि को तुमने दूर कर दिया है, धर्म रूप तरु एवं मैत्रादि रूप की शाखा-प्रशाखा को भृत्य की भाँति निजेच्छा से धनोपार्जन में सन्निवेशित कर उन्मूलित किया है और आगे अधिक क्या कहें ? ॥११॥

(क्षणकाल मन ही मन में चिन्ता कर) हाय ! उन सब बन्धुजन के वियोग से कातर एवं उनके बहुत अन्वेषण से परिश्रान्त हो गया हूँ। पृथ्वी मेरे लिये अन्तःसार रहित प्रतीयमान हो रहा है। मैं तो बहुत व्याकुल हो गया हूँ अतएव कहीं क्षण काल विश्राम करूँ। (ऐसा कर साश्रु नयन से) ॥१२॥
अहो ! इन सब वहिर्जनों को मैंने देखा, जिनका मन तथा वचन कलि-प्रभाव से प्रचुरतर पाप से आक्रान्त हो रहा है। परन्तु श्रीकृष्ण का कीर्त्तन करते हुए, निरन्तर भजन-शील, अश्रुजल से परिपूर्ण एवं रोमाञ्च से युक्त, भीतर तथा बाहिर समान वैष्णववृन्द को कब देखूँगा ? ॥१२॥

(अनन्तर दैववाणी होती है)।

जय जय गौड़ भूमि सर्वतीर्थ-शिरोमणि
हृदय में वहति है नदीया नगरी जो,
जहाँ वर स्वर्ण रुचि ईश्वर को अवतार
चैतन्य गौरांग महाप्रभु नाम धरी जो।
जहां भक्ति मूर्त्ति मति ह्वै के पुरी पुरी राजै
झांझ-मृरदंग-ताल धुनि बड़ी भरी जो।
जय जय व्रज रस प्रकट भैयो है जहाँ
कौन वरनत प्रेम दाता शुभकरी जो ॥१४॥

विराग—(आकाश में कान लगाकर) क्या कहते हो, जहां भक्तिदेवी वहाँ ही देखोगे। (क्षणकाल चिन्ता कर) अहो ज्ञात होता है, कहीं भक्तिदेवी विराजमान है। (पुनः आकाश के प्रति लक्ष्य करके) अहे ! क्या कहते हो,— जहाँ स्वयं भगवान श्रीकृष्ण स्वर्ण विनिन्दित अपूर्व कान्ति को धारण कर अवतीर्ण हुए हैं, एवं जहाँ प्रतिगृह में भक्तिदेवी मूर्तिमती होकर विचरण कर रही है इस प्रकार नवद्वीप नाम्नी नगरी जहां विराजमान है उस पवित्रतम तीर्थ-शिरोभूषण गोड़ भूमि की जय हो। (सुनकर आनन्द के साथ) क्या जीते हुए उस स्थान को देखूँगा ? अतएव यहाँ से वहाँ चलूँ (ऐसा कहकर कुछ पद गमन करके) ॥१४॥

(अनन्तर भक्तिदेवी प्रवेश करती है)।

भक्तिदेवी—(आगे दृष्टिपात करके) आहा ! यह कौन आ रहा है ? निरन्तर गुरुतर वेदना से इसका अन्तर जर्जरित हो रहा है, दुःसमय वश वदन मलिन है। यद्यपि मेरे साथ इसका परिचय नहीं है तो भी मुझे देख कर इसका एक अपूर्व भाव उदय हो रहा है। इस का हृदय आह्लाद से परिपूर्ण एवं दुःख समूह विदूरित होता जा रहा है। आहा ! हम सब के इस सुखमय समय में भ्राता विराग कहाँ है ? नहीं जानती दुरन्त कलि-जन ने उसकी क्या दुरवस्था की। उसका जीवन है किम्वा नहीं यह नहीं कहा जा सकता ॥१५॥

विराग—(दृष्टिपात करके) वे ही भक्तिदेवी है क्योंकि यह सब के अन्तःकरण प्रसन्न कर रही है, सब के इन्द्रियों का शोधन करती है. मोक्ष सुख को भी तुच्छ कर रही है, अर्थ एवं काम के बारे में क्या कहना है ? निकटस्थित जीवों को तत्क्षण ही कृतार्थ कर आनन्द-सागर में डुवा रही है। अतएव निकट चलूँ। (ऐसा कहकर समीप में उपस्थित होकर) देवि ! कहो

तो, सत्य-दयादि की भाँति कलिने तुम्हें पराजित क्यों नहीं किया ? ॥१६॥

भक्ति०—तुम नहीं जानते हो, हम सबके लिये परम कारुणिक भगवान् गौरचन्द्र अवतीर्ण हुए हैं।

विराग—भगवति ! इसका क्या अभिप्राय ?

भक्ति०—विराग ! इस कलिकाल में अन्य कोई धर्म लेश मात्र नहीं है। जो भी कुछ है उसकी स्थिरता नहीं है। अतएव संसार बन्धन एवं मोहमय पराभवकारी एक मात्र भागवत-धर्म ही इस कलिकाल को अलंकृत कर मौजूद है। इसी कारण घोरतरताप एवं विविध पाप संहारकारी भागवत धर्म एवं विशुद्ध भक्तियोग द्वारा चण्डालादि समस्त जाति की दुरन्त दुर्वासना विनाश के लिये मुझ जैसी भक्तिदेवी को साथ में लेकर भगवान् भक्तरूप में अवतीर्ण हुए हैं ॥१७॥

विराग—गगनवाणी द्वारा अवगत हुआ है। अब इस समय आप सब क्या कर रही हैं तथा वे देव गौरचन्द्र क्या कर रहे हैं ? निराश्रय मुझ जैसे जनका क्या वे आश्रय होंगे ? ॥

भक्ति०—(संस्कृतभाषा का अवलम्बन करके) विराग ! श्रवण करो, यदि उन भगवान की कृपादेवी एक बार नेत्रपात्र करती है तब चण्डाल आदि नीच जानि को भी पवित्र कर, समस्त जगत् के पाप का संहार एवं उनके हृदय में चिर विराजमान अति दृढ़ संस्कार का छेदन तथा उनके अन्तःकरण में अपूर्व रस भाव का विस्तार करूँगी ॥१८॥

विराग—उनकी करुणा के बिना आप सब की निजी कोई क्षमता नहीं है।

भक्ति०—उनके किम्बा उनके भक्तगण के अनुग्रह बिना हम सब नहीं ठहर सकतीं,तब कैसे उस प्रकार व्यवहार करेंगी ? ॥

विराग—दूसरे प्रश्न के उत्तर ?

नदीया में ऐसो जन देखने में नहीं आया,
जाकी पुरी मधि हरिमन्दिरजु नहीं था।
श्रीहरिमन्दिर न था वैसी प्रभु-मूर्त्ति न थी,
मूर्त्ति न थी वैसी जहाँ सेवा-रस नहीं था।
रस वैसा न था जो संकीर्त्तन-परक न था,
संकीर्त्तन न था जो नर्त्तन युत नहीं था।
इही भाँति नवद्वीप सब को आधार बनो,
अहो कलिकाल को ही परवेश नहीं था ॥

भक्ति—विराग ! श्रवण करो, नवद्वीप में ऐसा व्यक्ति कोई नहीं है कि जिसके गृह में भगवत् मन्दिर न हो, कोई ऐसा मन्दिर नहीं है जिसमें भगवान् की मूर्त्ति न हो, कोई ऐसी मूर्त्ति नहीं है कि जिसकी सेवा नहीं होती हो, सेवा भी ऐसी नहीं है जो सरस न हो, ऐसा रस नहीं कि जिसमें संकीर्त्तन-नृत्य की प्रधानता न हो। यह तो उन गौरहरि की इच्छा से होता है ॥१६॥

विराग—क्या वे स्वयं उस प्रकार अनुमति करते रहते हैं अथवा उनके अभिप्राय को जानकर भक्तगण उस प्रकार व्यवहार करते हैं ? ॥१६॥

भक्ति—उनकी ऐसी अपार महिमा है कि दर्शन मात्र से मनुष्य-गण ग्रहग्रस्त की भाँति विह्वल हो जाते हैं एवं उनके भीतर के भाव को जानकर उस प्रकार आचरण करते हैं। और उनके साथ कमला देवी मानो अवतीर्ण हुई है क्योंकि किसी को दीनता न थी। अब वे गौरांगदेव बाल्यकाल से जिस प्रकार आचरण करते हैं उसका श्रवण करो ॥२०॥

(संस्कृत भाषा में)—

वे कभी श्रीवास के गृह में, कभी आचार्यरत्न के गृह में, कभी मुरारिगृह में, कभी विद्यानिधि के मन्दिर में मधुर संकीर्त्तन परायण पार्षदगण से परिवृत होकर रोमांच, स्तम्भ,

स्वेदादि आठों सात्विक भावों के आविर्भाव से अपूर्व आनन्द-रस में निमग्न होकर नित्य प्रति नृत्य करते रहते हैं ॥२१॥

विराग—भगवति ! क्या वे सर्वदा भक्तभाव प्रकाश करते रहते हैं अथवा कभी कभी ऐश्वर्य प्रकाश करते हैं ? ।

भक्ति—विराग ! जिस प्रकार महादेव की मौलिविहारिणी मन्दाकिनी गंगा महीमण्डल में आकर मनुष्यों का अपूर्व आनन्द विस्तार करती है उसी प्रकार ऐश्वर्य्य लीला की अपेक्षा से भगवान्‌की मनुष्यलीला अतिरमणीय एवं लोभनीय है ॥२१॥

तो भी कभी कभी भगवान् ऐश्वर्य्य लीला का प्रकाश करते हैं । जैसा कि-किसी एक दिवस श्रीवास-भवन में भगवन्मन्दिर की प्रदक्षिणा कर रहे थे । उस समय मन्दिर की दक्षिण दिशा में सिलाई कर्म करने वाला एक म्लेच्छ सिलाई करता करता विश्वम्भर देव की निरुपम माधुरी देखकर महानन्द में निमग्न हो गया । अनन्तर प्रीतियुक्त प्रफुल्लनयनों से उच्चस्वर में हास्य करता हुआ "मैंने क्या आश्चर्य्य देखा ? क्या आश्चर्य्य देखा ?" ऐसा कहता हुआ पुलकावली से परिवृत हो गया । उसके नेत्र दोनों आनन्दाश्रु से परिपूर्ण हो गये । अब उसने उसी समय अपना सिलाई कर्म छोड़ कर ऊपर बाहु उठा कर नृत्य करना आरम्भ कर दिया । तदनन्तर उसके उस प्रकार अद्भुतभाव का दर्शन कर विश्वम्भरदेव अति प्रसन्न चित्त से श्रीवास के प्रति कहने लगे ॥२२॥

श्रीवास ! यह कैसा है ? हठात इस यवन के मन में इस प्रकार असीम आनन्द का उदय क्यों हुआ ? तब श्रीवास ने परिहास करते हुए कहा-हे भगवन् ! आपके सौन्दर्य्यमद की असीम महिमा है, क्योंकि परिपूर्ण सुराकुम्भ से जिसका चित्त विचलित नहीं होता है वह यह दरजी तिलमात्र आपके दर्शन से अत्यन्त मत्त हो रहा है । वह तो निष्पाप, संसार-बन्धन से रहित एवं जग-हितकारी हो गया ॥२३॥

विराग—तदनन्तर क्या हुआ ? ।

भक्ति—तब से उसने एक मात्र भगवन्नाम का आश्रय कर पुत्र-परिवार को त्याग कर अवधूत वेश धारण कर लिया । यवनाचार्य गण के तिरस्कार एवं ताड़न करने पर भी वह एकान्त-मन से केवल हरिनाम संकीर्त्तन कर समय बिताने लगा । जिज्ञासा करने पर "एक मात्र विश्वम्भरदेव जगत् के ईश्वर हैं और कोई नहीं है" ऐसा कहता था । भक्तगण उसके जीवन-निर्वाह में सहयोगी हुए, वह दरजी तो सिद्ध के समान भूमण्डल में विचरण करने लगा ॥२४॥

विराग—देवि ! उस यवन दरजी ने गौरांगदेव का कैसा रूप दर्शन किया ? ।

भक्ति—विराग ! भगवान् आनन्दमय हैं, उनका रूप भी आनन्द स्वरूप है, जिसके दर्शन से अपार आनन्द का उदय होता है वह उनका रूप है । इस प्रकार आनन्द एवं रूप परस्पर सापेक्ष हैं क्योंकि असीम आनन्द के होने पर भगवान् का रूप दृष्ट होता है एवं रूप दर्शन से अपार आनन्द का उदय होता है । अतएव आनन्द के तारतम्यानुसार उनके रूप दर्शन का तारतम्य रहता है यह जानना ॥२५॥

विराग—वह दरजी अति नीचजाति होकर कैसे ऐसा सौभाग्य-शाली हुआ ? ॥

भक्ति—(संस्कृतभाषा में) श्रीहरि का प्रसाद जाति, स्वभाव, आश्रम, धर्म, विद्या, कुलादि की अपेक्षा नहीं करता है । वह तो अब पात्रा-पात्र विचार न रखता हुआ लीलाक्रम से सबके प्रति प्रसन्न होता है ॥

विराग—ठीक कहती हो, अब और कुछ कहो ॥

भक्ति—एक दिवस पूर्णिमा-रात्रि में परिपूर्ण चन्द्रमा की किरणावली से समस्त दिशाएं धवलित हो रही थीं । मुरारिगुप्त के

रमणीय आंगन में भक्तगण से परिवृत भगवान् गौरांगदेव संकर्षण-मूर्त्ति धारण करने लगे ।।२६।।
विराग—देवि ! विशेष करके कहिये ।
भक्त—उस समय उनके चारों ओर भ्रमरगण मधुपान से व्याकुल होकर भ्रमण करने लगे । उनकी अति निविड़ कृष्ण-वर्ण कान्ति चन्द्रमा की किरणावलि को पराभव कर गगन मण्डल को श्यामलित करने लगी । उस समय समस्त भक्तों ने हठात् कादम्बरी (सुरा विशेष) का सौरभ आघ्राण प्राप्त किया ।।२७।।
विराग—उसके बाद क्या हुआ ? ।
भक्त—तब भक्तगण ने पूछा-भगवन् भ्रमरकुल विमोहन कारी अति निर्मल कादम्बरी का परिमल हठात् क्यों हम सब की नासा में प्रवेश कर अति विस्मय उत्पादन कर रही ? ।।२८।।
विराग—उसके बाद क्या हुआ ?
भक्त—तदनन्तर विश्वम्भर देव कहने लगे भो भक्तगण ! विश्व-मनोहारी भगवान संकर्षणदेव आज प्रादुर्भूत होंगे। अतएव उनकी अतिप्रिय कादम्बरी (मदिरा) एवं आयुध हल मूषल पहले ही देखने में आ रहे हैं ।।२९।।
विराग—उसके बाद क्या हुआ ?
भक्त—अनन्तर सब के देखते देखते विश्वम्भरदेव के सुवर्ण समान गौरशरीर श्वेतवर्ण हो गया एवं एक कर्ण में एक कनक कुंडल हिलने लगा । नयन युगल मदिरामद से आसक्त एवं चंचल हो गये ! गौरहरि तब तो कौतूहल से हलधर स्वरूप हो गये । अनन्तर भक्त वृन्द ने उनकी अद्भुत लीलामाधुरी सम्बलित अभिनव पदावली का गान करते हुए नेत्र-विस्मयकारी भगवान की विविध स्तुति की ।।३०।।
विराग—उसके बाद क्या हुआ ?

भक्ति—इस प्रकार रुद्र, बराह, नृसिंहादि प्रधान प्रधान अवतार का अनुकरण कर परिशेष में परम करुण भगवान ने नित्यानन्द प्रभु को षड्भुज मूर्त्ति का दर्शन कराया ।।३१।।
विराग—वह षड्भुजमूर्त्ति कैसी है कहिये ।
भक्ति—जिनकी दोनों भुजाओं में मनोहर मुरली तथा अन्य चार भुजाओं में शंख-चक्र-गदा-पद्म सुशोभित थे । अपितु किरीट, हार, केयूर, वैजयन्तीमाला एवं कौस्तुभमणि आदि विविध भूषणों से विभूषित थे ।।३२।।
और भी-जो निरुपम सौन्दर्य, माधुर्य, औदार्य, चातुर्य, गाम्भीर्य, धैर्य एवं शूरत्व आदि गुणरत्न के समुद्र थे । इस प्रकार आनन्दमय अपूर्व तेजोमय श्रेष्ठ तुरीय-पुरुष परमेश्वर प्रादुर्भूत हुए ।।३३।।
विराग—उसके बाद, उसके बाद ?
तदनन्तर उनकी उस अपूर्व रूप माधुरी का निरीक्षण कर नित्यानन्द प्रभु अपार आनन्द में विह्वल एवं रोमाञ्च रूप कञ्चुक से आवृत होकर स्तव करने लगे ।।३४।।
हे प्रभो ! तुम हरि हो, ब्रह्मा भी हो, और जल, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, आकाश, पृथ्वी एवं वायु आदि विश्वविधान के कारण समूह हो । अतएव हे मुरारे ! हे जगत्पते ! तुम्हारे चरणों में प्रणाम है ।।३५।।
और भी-हे नाथ ! तुम समस्त जीवों के कामादि षड्-रिपुओं का विनाश करने के लिये इस षड्भुज मूर्त्ति को धारण किये हो ऐसा कोई कहते हैं परन्तु हे महान् ! हम सब यह कहेंगे कि-तुम्हारी चार भुजा तो जीवों के चतुर्वर्ग के दाता हैं एवं अवशेष दोनों भुजाओं में से एक तो भक्ति के तथा अन्य प्रेम के दाता हैं ।।३६।।
विराग—अहो अति आश्चर्य ! उसके बाद उसके बाद ?

भक्ति—उनके ऐश्वर्य का वर्णन मैंने किया, अब प्रेमावेश की बात सुनो। उस नगरी में किसी किसी को ईश्वर में गाढ़ानुराग व किसी किसी का सामान्य अनुराग था। कोई कोई तो बिल-कुल भक्तिविहीन एवं अत्यन्त संसारासक्त थे परन्तु विद्याभ्यास-रत रहे। जब भगवान् गौरहरि सुरधुनी में स्नान कर भीगे वस्त्र से अपने श्री अंग को ढककर अव्यग्र-चित्त से नगर-मार्ग में आते थे तब उनके सम्मुख वे तीन प्रकार के जन आकर मधुर हरिनाम तथा भागवत की मनोहर श्लोकावली का पाठ करते थे एवं प्रेमानन्द से सुललित स्वर में संगीत गान करने लगते थे। जिसके श्रवण मात्र से महानन्द में विह्वल होकर गौरांगदेव भूतल में गिर जाते थे तथा लतापाश में बद्ध विद्यु-न्माला की भाँति भूमि पर विलुण्ठित होते थे। भीजे वस्त्र से निरन्तर निःसृत वारि समूह से भूतल की धूलियाँ कीचड़ होकर उनके सर्वांग को लिप्त कर लेती थीं। और निरन्तर दोनों नेत्र से निपतित अश्रु धारा से वक्षः का कीचड समूह धुल जाता था। उनकी उस प्रकार अवस्था देखकर चंचल सहचर विद्यार्थीगण हास्य मुख से परिहास करने लगते थे। मुहूर्त्त-काल के बाद उनके परिजन वृन्द अतियत्न के साथ उनको उठा कर गंगातट में होकर अंग प्रक्षालन कर स्नान कराने लगते थे। जिसका श्रवण कर माता शचीदेवी नीति-परायण होने पर भी विह्वल होकर रोदन करने लगती थीं ॥३७॥

विराग—अहो! यह प्रेमानन्द-विवशता अद्भुत है।

भक्ति—अन्य एक दिवस सूर्य के समान असीम प्रभा-वाले शचीनन्दन प्रेमावेश में विवश होकर आचार्यरत्न के भवन से नृत्य करते करते आ रहे थे। मार्ग में एक भयंकर कुष्ठरोगी ब्राह्मणाधम अपने को निरुपाय देखकर अनाथबन्धु तथा पतित-पावन उन भगवान से विनय के साथ कहने लगा— हे शची-

नन्दन! हे विश्वम्भर! तुम परमात्मा परमेश्वर हो, समस्त लोग तुमको सर्वशक्तिमान करके कहते हैं। परन्तु हे नाथ! हे कमलनयन! यदि अनुग्रह करके इस पामर को रोग से मुक्त करोगे तब तुम यथार्थ ईश्वर एवं सर्वमंगल रूप से हमारे लिये प्रतीत होगे ॥३८॥

विराग—उसके बाद उसके बाद?

भक्ति—उसके दीन वचन सुनकर दीनानाथ के हृदय में दया का संचार हो गया। तब मृत्युपथ में पड़ा हुआ तथा कंप और रोमांच युक्त उस द्विजाधम को उद्देश्य करके भगवान् कहने लगे— हे द्विजबन्धु! जगदीश्वर उन भगवान को कोई प्राप्त नहीं कर सकता, तब तुम ईश्वर करके हमारी भर्त्सना क्यों करते हो?। तुम्हारी इस विषय-रोग की शान्ति का एक उपाय है उसके अवलम्बन से इस रोग की निवृत्ति होगी, तथा तुम्हारा शरीर पहले से अति सुन्दर होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥३९॥

विराग—उसके बाद उसके बाद?।

भक्ति—तदनन्तर वह ब्राह्मण प्रफुल्ल नयन से कहने लगा, हे देव! वह उपाय क्या है?। अनन्तर भगवान् जगत के निदर्शन स्वरूप वाक्य को कहने लगे - हे ब्रह्मबन्धो! विश्वहितकारी, श्रीहरिचरण में प्रगाढ़ प्रेमबल से जिनका अन्तःकरण अति विशुद्ध है उन समस्त भक्तमण्डली के अग्रगण्य इन अद्वैता-चार्य के चरणोदक का यदि पान कर सकते हो तब तुम्हारे समस्त पाप दूरीभूत हो जावेंगे तथा रोग से अनायास मुक्त हो जाओगे। क्योंकि कारणविनाश से कार्य-विनाश है ऐसा न्याय है। अद्वैताचार्य में तुम्हारा अपराध है। उनके पादोदक पान से अपराध दूर हो जायेगा। उसके बाद ब्राह्मणाधम ने कहा— हे नाथ! तुम्हारे दर्शन मात्र से ही रोग की शान्ति होगी,

उपायान्तर की आवश्यकता क्या है ? ऐसा कहकर वह अद्वैता-चार्य का पादोदक पान करने लगा एवं उस भयानक रोग से निवृत्त हो गया और पहले से उसका अत्यन्त सुन्दर शरीर बन गया ॥४०॥

विराग—सर्व शक्तिमान् उन शची-नन्दन के लिये यह कोई आश्चर्य्य बात नहीं है। हे पूज्यतमे ! आप कहिये, अकेली इस प्रकार व्यस्त होकर किस अभिप्राय से कहाँ जा रही हैं ? ॥४१॥

भक्ति—अहो ! आर्यपुत्र गौरचन्द्र श्रीवास-भवन में आगमन कर अद्वैत प्रभु के साथ किसी एक गोपनवार्त्ता का आलाप कर रहे हैं। उनके निकट जाने के लिये मैं आतुर हो रही हूँ ॥४२॥

विराग—भगवति ! मैं आपका शिष्य हूँ। अतएव इस तीसरे प्रश्न का अर्थात् गौरांगदेव मेरे आश्रय होकर क्या मेरी रक्षा करेंगे इसका उत्तर प्रदान कीजिये।

भक्ति—(संस्कृत में) हाँ अवश्य करेंगे।

भगवान् आनन्दस्वरूप होने पर भी मतिधारी हैं, सर्व-व्यापी होने पर भी परिच्छिन्न हैं। उसी प्रकार वे नित्य विलासी होने पर भी वैराग्य के आश्रय स्वरूप हैं यह जानना। अतएव वत्स ! चलो हम एक ही साथ चलें। (ऐसा कहकर दोनों प्रस्थान करते हैं) ॥४३॥

(अनन्तर आसनस्थित भगवान् श्रीविश्वम्भरदेव एवं अद्वैताचार्य्य और चारों ओर श्रीवासादि भक्त-वृन्द प्रवेश करते हैं)

भगवान्—(परिहास के साथ अद्वैताचार्य के प्रति) लोक-कलुषनाशी कीर्त्ति वाले सीतापति की जय हो।

अद्वैत—यहाँ रघुपति कहाँ है ? यहाँ तो यदुपति आप विराज-मान हैं।

भगवान्—हे अद्वैत ! तुम्हारे साथ किस प्रकार निर्विघ्न हो निवास करूँगा उसको चिंता कर रहा हूँ।

श्रीवास—देव ! यद्यपि शान्तिपुर में अद्वैताचार्य का निवास उपयोगी है तो भी नव विध भक्तिरस के द्वीप की भाँति इस नवद्वीप में आपके आविर्भावावधि से उनका विशेष अनुराग हो रहा है। अतएव सर्वव्यापक नित्यानन्द जो भी यहाँ विराजमान हैं ॥४५॥

अद्वैत—अतएव यहाँ ही श्रीवास।

श्रीवास—आप श्री का अर्थात् लक्ष्मी का निवास कह रहे हैं वह तो तिरोधान हो गयी है।

भगवान्—श्रीशब्द से विष्णु भक्ति कही जाती है, उसका निवास तुम सब के निकट में है।

अद्वैत—अब वह विष्णुप्रिया है।

भगवान्—हाँ ज्ञानादि अनेक उपाय रहने पर भी भक्ति ही विष्णु की प्रिया है।

अद्वैत—प्रभो ! इसीलिये भगवान् ने ही उसका अंगीकार किया है।

(नेपथ्य में—भो भो भक्तगण ! विश्वजननी शचीदेवी कह रही हैं कि—मणियोग के समान अद्वैत हमारे गृह के बिना अन्यत्र विश्राम न करें)

अद्वैत—(श्रवण कर) विश्वजननी जो अनुमति कर रही हैं ऐसा ही करूँगा। अहो ! शचीदेवी से कहो, आज विश्वम्भरदेव के साथ एकत्र भोजन करने के लिये महानन्द से मेरा शरीर निश्चेष्ट हो रहा है।

श्रीवास—प्रभो ! मैं भी वहाँ भोजन करूँगा ॥४७॥

भगवान्—तब तो बहुजनों की रसोई में इनको अत्यधिक परि-श्रम होगा ?

अद्वैत—इनका क्यों कहते हैं उसका कहिये ।

(ऐसा कहकर किसी आत्मीय जन को शचीदेवी के निकट भेजने लगे)

अद्वैत—(श्रीवास के कान में कुछ कहने लगे)

भगवान—आचार्य्य जी क्या कह रहे हैं ?

श्रीवास—देव ! वे कह रहे हैं—आपने कहा था कि नित्यानन्द को जो षड्भुजमूर्ति दिखायी थी उसे तुम को दिखाऊँगा । परन्तु दुर्दैववश हमें तो अभी तक नहीं दिखायी है ।

भगवान्—(आकार गोपन करके) मेरा यह गौरांग रूप अद्वैत को अत्यन्त प्रिय है ।

अद्वैत—(मन मन में विचार परामर्श करके) अहो ! अब मैं क्या कहूँ ? यदि आपका यह गौरांग रूप ही स्वरूप है ऐसा कहूँ तो परम रमणीय श्यामसुन्दर रूप देखने की जो बासना थी वह वृथा हो जाती, और यदि कृष्ण रूप ही तुम्हारा स्वरूप है ऐसा कहता हूँ तब गौररूप में प्रणय की न्यूनता आ जाती । अब मैं क्या कहूँ (इस प्रकार क्षणकाल विचार करने लगे)

श्रीवास—प्रभो ! आपकी यही श्रीमूर्ति हम सब के अति प्रियतम है इसमें कोई सन्देह नहीं है । परन्तु आपने स्वयं कहा था उस रूप को दिखाऊँगा, तब क्यों नहीं दिखाते, ऐसा अद्वैत निवेदन कर रहे हैं ॥५०॥

भगवान—उन्माद दशा में आकर कौन व्यक्ति क्या नहीं कहता है ?

श्रीवास—भगवन् ! अन्य को उन्माद व्याधि माना जाता है परन्तु आपका यह उन्माद दर्शक एवं श्रोत्रवृन्द की व्याधि का विनाशक है । वस्तुतः क्षुद्र विषयानन्द से जीवों की बुद्धिवृत्ति विलुप्त हो जाती है जिस से धैर्यगुण लोप हो जाता है । परन्तु

परमेश्वर महानन्द स्वरूप एवं ज्ञान स्वरूप हैं, कोई उन्माद व्याधि उनको क्या कष्ट दे सकती ? ज्ञान एवं आनन्द शक्ति तुम्हारे इस उन्माद के अधीन है । अतएव जीवोन्माद के साथ आपके उन्माद का वैशिष्ट है ॥५१॥

भगवान—(कुछ हँसते हुए) हे अद्वैत ! तुम जो श्याम रूप दर्शन की इच्छा रखते हो वह मेरे अधीन नहीं है । अतएव प्रेम-नेत्र से अपने हृदय में देखो, (ऐसा कहकर उनके हृदय में श्यामरूप प्रकाश करने लगे)

अद्वैत—(नेत्र मूँदकर सुस्थिर भाव से रहते हुए)

श्रीवास—(उनके उस प्रकार भाव को देखकर) अहो ! क्या आश्चर्य ! यह अद्वैत आज अद्वैतपदवी से उत्कृष्टतम पथ में अधिरूढ़ हो रहे हैं । क्योंकि इनके बाह्येन्द्रिय की वृत्तियाँ विलुप्त हो रही हैं, अन्त.करण महानन्दरस में निमग्न होरहा है, शरीर में स्पन्दता नहीं है, इनकी आत्मा परमतत्त्व परमेश्वर में विलीन हो गई है । केवल रोमाञ्च द्वारा जीवन स्थिति का अनुमान किया जाता है ॥५२॥

भगवान—भगवान् का अनुभव इसी प्रकार होता है ।

श्रीवास—भगवन् ! आपने उस मनोहर रूप का बाहर प्रकाश नहीं किया, हम सब दर्शन नहीं कर सके । यह आपकी लीला है । जो भी हो, आपका यह गौर-स्वरूप हम सब को अति प्रियतम है । परन्तु नाथ ! अब अद्वैत के पवित्र चित्त को चंचलित मत कीजिये, इनके अन्तः करण मे उस रूप का तिरोधान करें । नहीं तो समाधि-स्थित व्यक्ति की भांति इनका स्थिर चित्त बाह्यविषय में पुनः सञ्चरित नहीं होगा । अस्तु इनके ध्यान भंग होने पर क्या दर्शन किया, पूछेंगे ॥५३॥

भगवान—स्वयं ही अद्वैत ध्यान से उठें । (ऐसा कहकर हृदय

से उस रूप का तिरोधान करने लगे)।

अद्वैत—(हृदय स्फुरित उस मधुर रूप को न देखकर निद्रा-भंग से प्रबोधित व्यक्ति की भाँति नयन युगल उन्मीलित कर क्षण-काल मानो उस रूप का दर्शन करने लगे। उनकी उस समय कोई अनिर्वचनीय दशा उपस्थित हुई)।

भगवान—हे अद्वैताचार्य! क्या दर्शन कर रहे थे?

अद्वैत—(प्रसुप्त एवं ग्रहग्रस्त की भाँति कुछ कहने लगे) अहो! अकस्मात् प्रफुल्ल कमलावली एवं सौरभ से परिपूर्ण, नवीन मेघमाला की भाँति सुस्निग्ध, पुञ्जीभूत, तमालतरु के समान निविडतर, नीलकान्तमणि के समान अत्यन्त उज्वल यह पुञ्जीभूत अपूर्व तेजोराशि हमारे नयन युगल को अपहृत कर रही है। विज्ञानमय मनोहर श्यामल कान्ति के मध्यवर्त्ति अमृत-समान माधुर्य रस से परिपूर्ण जिनके प्रति अंग विराजमान हैं। अत्यन्त कौतुक वश मुरली की कलध्वनि से जो क्रीड़ा कर रहे हैं वे विश्वभावन मेघ के समान अपूर्व तेजोराशि वाले हमारे नयन-पथ में प्रकाशमान हो रहे हैं ।।५५।।

श्रीवास—अहो! अतीत विषय को वर्त्तमान की भाँति मान कर इस प्रकार कह रहे हैं।

भगवान—इनके हृदय में अभी आनन्द विद्यमान है। इसीलिये वह श्याम रूप प्रत्यक्ष की भाँति प्रतीयमान हो रहा है। हे श्रीवास! बोध होता है ये और कुछ कहने को चाहते हैं अतएव तुम सब सुस्थिर भाव से श्रवण करो। (ऐसा सुनकर सब कोई तृष्णीभूत होते हैं)

अद्वैत—जिनके विस्तीर्ण कृष्णवर्ण केशकलाप अपूर्व शोभा को धारण कर रहा है, जिनकी भ्रूलता तथा अलकावली अत्यधिक रमणीय हो रही है, जिनके नासा युगल उन्नत एवं दोनों

नेत्र लोहितवर्ण, सुदीर्घ तथा चंचल हैं एवं जिनके दोनों ओष्ठ बन्धूक-पुष्प की भाँति अति मनोहर हैं। और भी श्रीवत्स, कौस्तुभमणि, लक्ष्मी आदि चिन्हों से विचित्र शोभायुक्त वक्षः-स्थल में रत्न निर्मित हार, एवं आपादलम्बि वनमाला विराजमान है, जिनके आजानुलम्बित, गोलाकार एवं स्थूल बाहुदण्ड युगल में विचित्र शोभा विद्यमान है वह श्यामवर्ण कान्तिसमूह हमारे दोनों नेत्रों को आकर्षित कर रहा है ।।५७।।

श्रीवास—अकस्मात् ही क्यों इनका इस प्रकार अभिनिवेश हुआ है?

भगवान्—सुनो, ध्यान परायण व्यक्तियों के अन्तःकरण में बहु-काल पर्यन्त जो श्रीहरि की स्फूर्त्ति होती है उसको स्फूर्त्ति कहते हैं और जो आकस्मिकी स्फूर्त्ति है वह अवतार माना जाता है।

श्रीवास—प्रभो! महर्षि नारद जी के पूर्वजन्म को लक्ष करके भगवान ने उनसे कहा था—तुम्हारे लिये मैंने जो अपने रूप का दर्शन कराया वह तो केवल अपनी अभिलाषा पूर्त्ति के लिये जानना। इससे वहाँ एक अवतार की प्रतीत हो रही है। और ध्रुवजी के हृदय में भगवान की जो स्फूर्त्ति है वह ध्यानाभास द्वारा जानना। यह बात यथार्थ है, परन्तु चिरकाल अभ्यास न करने से हृदय में भगवान किस प्रकार स्फूर्त्त हो सकते हैं? ५८।।

भगवान्—सुनो, जिस प्रकार सूर्योदय के पहले अरुण उदय होकर पृथिवी का अन्धकार विनाश कर देता है उस प्रकार भगवान के आविर्भाव के पहले उनका अनुग्रह हृदयस्थित अंधकार (अज्ञान) को विनष्ट कर देता है।

श्रीवास—प्रभो! यह अद्वैत अभी क्या उस रूप को देख रहे हैं? किम्बा पहले जो देखे हुए थे उसी को कह रहे हैं?

भगवान्—उनसे जिज्ञासा करो।

श्रीवास—(अद्वैत के प्रति) हे महानुभाव ! क्या आप कुछ देख रहे हैं अथवा पहले जो देखा उसकी बात कर रहे ?

अद्वैत—(आनन्द समुद्र से उत्थित की भाँति बाह्यविषय में चित्त सन्निवेशित कर कहने लगे)

हे श्रीवास ! इन गौरांगदेव के श्रीअंग से अपूर्व कान्ति-वाली एक श्यामवर्ण मूर्त्ति निःसृत होकर हमारे हृदय में प्रवेश करने लगी, अहो ! पुनः क्षणकाल में तिरोहित हुई। उस मधुर मूर्त्ति के अदर्शन से अत्यन्त व्याकुल होकर वाहिर दृष्टि-पात करके देखने लगा कि वह मनोहर मूर्त्ति पुनर्वार इन गौरांगदेव में विलीन हो गई ॥

श्रीवास—(उल्लास के साथ) प्रभो ! मेरा वचन यथार्थ है।

भगवान्—इनका यह तन्द्रादोष है।

श्रीवास—यह तो आनन्दतन्द्रा है इसमें दोष का अवसर कहाँ है?

भगवान्—(अद्वैत के प्रति) अद्वैत जी ! यह तो आपका जाग्रत् स्वप्न है।

अद्वैत—(असूया प्रकाश करके) भगवन् ! अभिनव कुवलयमाला के समान श्यामवर्ण कौन एक नवीव युवक वामजंघा में दक्षिण-जंघा रखकर विराजमान है। परन्तु उसके समान तुम एवं तुम्हारे समान वह इस प्रकार तुम में एवं उसमें कोई भेद नहीं देख रहा हूँ। तब जाग्रत् अवस्था में स्वप्न किस प्रकार हो सकता ? ॥६०॥

भगवान्—हे अद्वैत ! तुम्हारे वासनादोष से इस प्रकार प्रति-फलित हो रहा है, क्योंकि तुम्हारे बिना अन्य कोई नहीं देख रहा है।

श्रीवास—तुम्हारी उस परम रमणीय श्यामसुन्दर मूर्त्ति को हम देखगे ऐसा भाग्य कहाँ है ?

भगवान्—(परिहास पूर्वक कहने लगे) हे श्रीवास ! तुम भी अद्वैत की पदवी में पदार्पण किये अर्थात् आरूढ़ हुए।

श्रीवास—श्रीकृष्ण के साथ तुम्हारे अद्वैतरूप अर्थात् एक रूप जो पथ उसमें हम सब पद विन्यास कर रहे हैं। इसमें सन्देह क्या रहा ?

भगवान्—यदि ऐसा है तो तुम्हारे साथ श्रीकृष्ण का ऐक्य है।

श्रीवास—भगवन् ऐसा मत कहिये। क्योंकि आपके पादारविन्द सेवाजात परमानन्द कणिका को जो प्राप्त हुए हैं उनकी यह प्रणाली अर्थात् जगदीश्वर में अभेद भावना उचित नहीं है।

भगवान्—तब क्यों मुझ में उस परमानन्द रूप का आरोपण कर रहे हो ?

श्रीवास—मैं स्वतः ही आरोपण नहीं कर रहा हूँ, यथार्थ कह रहा हूँ। तुम वचन चातुरी से स्वतः सिद्ध भाव का अपलाप करना चाहते हो परन्तु नहीं कर सकते हो। प्रभो ! तुम जो अद्वैत में दोष बता रहे हो वह अनुचित है, वस्तुतः इस विषय में तुम्हारा दोष है। क्योंकि तुमने अपने श्यामरूप दिखाने के लिये वचन दिया था ॥६२॥

(नेपथ्य में) यथार्थ कह रहे हो।

श्रीवास—हम सब की जीत हुई। क्योंकि देववाणी की भाँति यह नरेङ्गित (मनुष्य का इशारा) हुआ है।

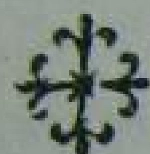
(पुनर्वार नेपथ्य में) यथार्थ है, शचीदेवी नानाद्रव्य का पाक कर अपने पुत्र के साथ अद्वैताचार्य की आगमन प्रतीक्षा कर रही हैं। इधर भगवान् सूर्यदेव भी गगन मध्य में अधिरूढ़ हुए हैं।

श्रीवास—(श्रवण कर) अब विलम्ब का प्रयोजन नहीं है। अहे!

शचीदेवी से कहो, अद्वैतादि हम सब विश्वम्भर के साथ उनके समीप आरहे हैं।

(सब कोई निज निज अभिमत प्रदेश में गमन करने लगते हैं)

। इति चैतन्यचन्द्रोदयनाटके कुसुमसरोवरनिवासी कृष्णदास कर्तृक अनुवादित सर्वावतारदर्शन नामक द्वितीय अंक ॥



तृतीयांक

(अनन्तर मैत्री प्रवेश करती है)

मैत्री—हा धिक् हा धिक् ! हमारे वंशधर प्रिय भैया विराग कलि के द्वारा सर्वस्वहृत होकर केवल प्राण-मात्र को धारण कर ठहरा हुआ है ऐसा मैंने सुना है, परन्तु वह कहां अवस्थान कर रहा है यह नहीं जान पा रही हूँ, और मैं भी जिसके नाम मात्र को धारण कर जी रही हूँ, वह भी जानने में असमर्थ हो रहा है। अतएव अब उसकी खोज करूँ। (चारों ओर निरीक्षण कर) अहो यह सामने कौन आरहा है ? (संस्कृत भाषा का अवलम्बन कर) अहो ! जो करुणा-कटाक्ष विक्षेप द्वारा सर्वभाव से दर्शकों के चित्त को प्रफुल्लित करता हुआ अपनी अंग-प्रभा से चारों ओर उद्भासित कर रहा है। क्या यह मूर्त्तिमान

आनन्द है ? अथवा अमृत की धारा बहती मेरे समीप आ रही है ? (ऐसा कहकर विस्मय के साथ देखने लगी। ॥१॥

(इसके बाद प्रेमभक्ति प्रवेश करती है)

प्रेमभक्ति—(सम्मुख में दृष्टिपात करती हुई कहने लगी) अहो ! यह कौन है ? इसका शरीर अत्यन्त क्षीण तथा मलिन हो रहा है। इसके अन्दर किञ्चिन्मात्र भी सुख नहीं देख रही हूँ। यह तो नाम मात्र से शरीर धारण कर रही है और केवल उत्कंठा के साथ मुझे देखती हुई धीरे धीरे सम्मुख आ रही है ॥२॥

मैत्री—(निर्णय करती हुई) आहा ! माता ने जो समस्त लक्षण बताये वे सब इसमें लक्षित हो रहे हैं। अतएव यह तो प्रेम-भक्ति है, मैं सम्मुख जाकर प्रणाम करूँ (निकट जाकर) देवि ! मैं मैत्री हूँ, आपको प्रणाम करती हूँ ॥३॥

प्रेमभक्ति—(चकित होकर) क्या तुम मैत्री हो ? आओ,(आलि-ङ्गन करके) वत्से मैत्री ! तुम्हारी इस प्रकार दुरवस्था क्यों हुई ? और तुम अकेली क्यों भ्रमण कर रही हो ? ॥

मैत्री—कलियुग परिजनों ने हम सबको अत्यन्त उत्पीड़ित कर रखा है, उनके भय से हम सब किसी प्रकार प्राण धारण कर इधर उधर भाग रही हैं। अतएव हमारी दुरवस्था को क्या पूँछती हो ? ॥४॥

प्रेमभक्ति—वत्से ! मैं तुम्हारी मातामह की भगिनी हूँ, अतएव तुम निर्भय चित्त से मेरे साथ निवास करो ॥

मैत्री—आपके साथ यह सम्बन्ध किस प्रकार है ?

प्रेमभक्ति—मैत्रि ! आद्योपान्त समस्त वृत्तान्त श्रवण करो—

भगवत अनुग्रह पिता भगवत जन-
आसक्ति है माता संसर्ग से बहु सन्ता है।

विवेक है पुत्र भयो साधन भक्ति है कन्या,
भाव,प्रेम मिश्रा ज्ञान मिश्रा भक्ति-मन्ता है ।
विवेक की मति नाम्नी पत्नी से भई है कन्या,
अनसूया नाम जाको सम पत्नी वन्ता है ।
स्वभावज अरु शुद्ध पुत्र भयेऽनसूया के,
मैत्री नाम्नी कन्या भई मत्सन्तोष लन्ता है ।

भगवदनुग्रह नामक पिता और भगवज्जना शक्ति माता है । उन दोनों के संसर्ग से समय पर अनेक सन्तान हुए । उनमें विवेक नामक एक पुत्र तथा साधनभक्ति, भावभक्ति, प्रेमभक्ति एवं ज्ञानमिश्राभक्ति आदि बहु कन्याऐं हुई, और विवेक को मति नामक भार्या से अनसूया नामक एक कन्या हुई । विवेक ने उस कन्या का समभाव के साथ विवाह कर दिया । उस अनसूया के स्वभाव से शुद्ध रूप पुत्र एवं मेरी सन्तोषदायिनी मैत्री नाम्नी तुम कन्या हुई ।।५।।

सत्व रजः तमः इन त्रिगुण संयोग से ही,
अधिक संख्या में बहु कन्यका निरसा है ।
श्रवणादि नव प्रेम-एक मिलि के है दश,
भई है कन्यका शुभ केवल सरसा है ।
उज्वल,अद्भुत, शान्त,हास्य,सख्य वात्सल्य रु,
सर्वोत्तम रस ये है देखिवे को लसा है ।
इन्हें आश्रय करि के भई है समस्त भक्ति,
काल पाकै रतिरूपा प्रेम चरमा बसा है ।।

पहले भक्ति नाम से जिन कन्याओं का कथन है उनमें से कुछ तो नीरस हैं और कुछ सरस हैं । नीरस कन्याऐं सत्त्व, रज तथा तम इन त्रिगुण के संयोग से अधिक संख्यक रहीं, और श्रवण-कीर्त्तनादि नौ तथा एक प्रेम ये दस केवल सरस

हुई । उज्वल, अद्भुत, शान्त, हास्य, सख्य वात्सल्य ये छै रस सर्वोत्तम हुए हैं । उनका आश्रय करने वाली वे समस्त भक्ति काल क्रम से रति (स्थायी भाव) रूप से पर्यवसित होती हैं।६।।

मैत्री—देवि ! क्या प्रेमरस भक्ति इसकी चरमावस्था है ?

प्रेम०—हाँ,

प्रेम-भक्ति में सकल रस, भाव सकल नवरंग ।
विलीन उन्मीलन होत है सागर माह तरंग ।।
खण्डानन्द रस ही सब प्रेम अखण्ड स्वरूप ।
अखण्ड में खण्डानन्द रहै पृथक नाना रूप ।।७।।

जहाँ प्रेमरसभक्ति रहती है वहाँ समस्त रस, समस्त भाव समुद्र में तरंग की भाँति उन्मज्जित निमज्जित होते हैं । प्रेमभक्ति परिपूर्ण आनन्द स्वरूप है अतः उसमें खण्डानन्द रूप से समस्त रस पृथक् पृथक् रूप से अवस्थान करते हैं । ऐसा हमारे वंश का परिचय है ।।७।।

मैत्री—देवि ! अब अकेली तुम कहाँ निवास कर रही हो ?

प्रेम०—इस समय हमारे आश्रय भगवान विश्वम्भरदेव हैं । वे अब समस्त अवतारों की लीला प्रकट कर रहे हैं । अब वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिका के भाव का अनुकरण करने की इच्छा कर रहे हैं । अतएव उनके आदेशानुसार समस्त लोगों का हृदय शोधन करने के लिये मैं जा रही हूँ ।

मैत्री—कब जाओगी एवं कहाँ जाओगी ?

प्रेम०—जहाँ मंगलमय वे भगवान विश्वम्भर मानवों का मंगल विधान करने के लिये राधा-भाव से भावित होकर नृत्य करगे वहाँ ही जा रही हूँ ।

मैत्री—कहाँ नृत्य करेंगे ?

प्रेम०—आचार्यरत्न के गृहांगन में ।

मैत्री—वे ईश्वर होकर रमणी-भाव से क्यों नृत्य करेंगे ?

प्रेम०—मैत्रि ! तुम बालिका हो, ईश्वर के अभिप्राय नहीं समझ सकतो, सुनो, भगवान् सर्वरसमय होते हैं वे तो भक्तों के अभिप्रायानुरूप आश्चर्य अनेक लीलायें करते हैं, भक्तगण भी अपनी वासना के अनुसार उन लीलाओं का अनुकरण करते हैं। अतएव अतिविरल उनके कुछ प्रियभक्तों के हृदय में उस अपूर्वभाव के आविर्भाव हेतु सर्वोत्तम तथा अति सरस उन राधा के समान भाव का अवलम्बन करेंगे, जिससे परे अन्य कोई रस नहीं है ॥६॥

मैत्री—देवि ! कहिये, वह नृत्य अंक रूप है अथवा अन्य किसी प्रकार ?

प्रेम०—अंकरूप से है।

मैत्री—कौन किसका वेश धारण करेगा ?

प्रेम०—वत्से ! सुनो, भगवान् गौरहरि ने रुद्ररूपी श्रीअद्वैत को अपनेसे अभिन्न जानकर और परम रहस्यमय श्रीराधा-रूपधारण में अन्य सबको अयोग्य समझकर अद्वैत को श्रीकृष्ण का वेश धारण कराया एवं स्वयं राधिका वेश धारण किया है। फलतः अद्वैत जी श्रीकृष्ण हुए यह केवल प्रतीति मात्र है, वस्तुतः उन गौरांगदेवने ही दोनों रूपों को धारण किया है॥१०॥

श्री अद्वैत जी ने केवल श्रीकृष्ण का वेश धारण कर अपने को चरितार्थ माना, परन्तु उन अद्वैत के शरीर में स्वयं भगवान् श्रीहरि आविर्भूत हुए। और भी सुनो, हरिदास जी सूत्रधार, मुकुन्द पारिपार्श्विक, वासुदेवाचार्य जी नेपथ्य-रचनाकार बने, और राधा-कृष्ण संयोगकारिणी उन वृद्धा भगवती योगमाया ने श्रीनित्यानन्द के शरीर का आश्रय किया।

मैत्री—इस रंगभूमि में कौन कौन व्यक्ति दर्शक हुए ?

प्रेम०—इस विषय के अधिकारीजन सभ्यगण का निर्णय करने के लिये भगवान ने पहले ही से श्रीवास से कहा था, हे श्रीवास ! तुम आज सावधान रहना, इस कार्य में योग्यजन ही आगमन करें अयोग्य नहीं। इस प्रकार भगवान की आधी बात को सुनकर श्रीवास ने कहा—देव ! किस कार्य में योग्यायोग्य की व्यवस्था करनी होगी ? एवं योग्यजन किस कार्य में कहाँ प्रवेश करेंगे इत्यादि।

भगवान् ने कहा—आज आचार्यरत्न के गृहांगन में रसमयी राधिका स्वयं प्रादुर्भूत होंगी ॥१२॥

मैत्री—उसके बाद क्या हुआ ?

प्रेम०—अब संदेह चित्त श्रीवास जी ने भगवान् के वचनों में विश्वस्त होकर भगवान् के परम आत्मीय गंगादास नामक एक ब्राह्मण को द्वार-रक्षा के लिये नियुक्त किया।

मैत्री—उसके बाद, उसके बाद ?

प्रेम०—पुनः भगवान् ने श्रीवास से कहा—हे श्रीवास ! तुम नारद होना एवं शुक्लाम्बर तुम्हारा शिष्य होगा और श्रीराम आदि तुम्हारे तीन सहोदर, आचार्यरत्न तथा विद्यानिधि गायक बनेंगे। इस प्रकार भगवान के आदेश प्राप्त कर वे सब वहाँ प्रवेश करने लगे। और कोई नहीं गया, परन्तु श्रीवास की भ्रातृवधू के साथ मुरारि एवं आचार्यरत्न की गृहिणी जोकि इस निगूढ़ नाट्य दर्शन की अधिकारिणी थीं वे सब नाट्य-समारम्भ के पहले ही गृहाभ्यन्तर में प्रवेश कर गईं ॥१३॥

(नेपथ्य में मृदंग-ध्वनि हुई)

प्रेम०—वत्से ! तुमने सुना, देखो, नाटक के पूर्वरंग का प्रत्याहार नामक अंग आरम्भ हो रहा है। (पुनः नेपथ्य में) जनसमूह के आधार देवकीनन्दन रूप से प्रतीत यदुवंशावतंस श्रीकृष्ण जय लाभ कर रहे हैं, जिन्होंने निज बाहुदण्ड-रूप-

पाण्डवों के धर्मद्वेषी दैत्यों को पराजित कर जगत् के समस्त दुःखों की शान्ति की, और जो मुख के सुमधुर हास्य द्वारा ब्रजरमणियों तथा पुररमणियों के हृदय में अनंगताप परिवर्द्धन करने वाले हैं।

और भी—

पूर्णचन्द्र मुखी अहो सरोजनयना अहो,
चक्र वाक स्तनी अहो कुमुदिनी हासा है।
शंख सम मनोहर त्रिरेखा मे ग्रीवांकित,
अपूर्व माधुरी गर्व खर्व रमा भासा है॥
विचित्र मांगल्य वस्तुओं से जाकी शोभा होती,
वृंदावन क्रीड़ा-कौतुक नाटक-वासा है।
श्री राधिकाराध्यमयो सबही को शुभ करें,
जय जय कृष्णमयी कृष्णकांता जा सा है॥१४॥

अर्थात्—जिनका वदन परिपूर्ण चन्द्रमा के समान है, जिनके दोनों नेत्र पद्मकी भाँति हैं, जिनके स्तन दोनों चक्रवाकके समान हैं, कुमुद पुष्प को भाँति जिनका निर्मल हास्य है तथा जिनके शंख की भाँति ग्रीवा-देश त्रिरेखा से अंकित है, जो निज-सौन्दर्य द्वारा विश्वमोहिनी लक्ष्मी के अभिमान को तिरस्कृत करती हैं और विविध मांगल द्रव्यों से जो विचित्र शोभावती हैं वे राधिका आज वृन्दावन विलास रूप इस नाटक की नान्दी के समान होकर तुम सब का मंगल विधान करें॥१४॥

प्रेम०—मैंने जो निर्णय किया था वह सत्य हो रहा है। क्योंकि यह श्री हरिदास सूत्रधार का वेश धारण कर भागवत के श्लोक का उच्चारण कर मंगल नान्दी पाठ कर रहे हैं। ज्ञात होता है कि यह एकांकभाण वाले व्यायोग-रूपक का निर्णय करेंगे। क्योंकि "जिसमें नेपथ्य में नान्दी गाई जाती है" ऐसा

उसका लक्षण माना जाता है। हे वत्से! तुम्हारी देखने की इच्छा भी है॥१५॥

मैत्री—ऐसा मेरा भाग्य कहाँ है?

प्रेम०—तुमको क्या चिन्ता? मेरे साथ रहना, मेरे प्रभाव से तुम्हें कोई नहीं देख पायेगा। तुम्हारे अनुरोध से मैं भी तुम्हारे पास गुप्त रूप से रहूँगी।

मैत्री—मैं आपकी कृतज्ञ हुई।

प्रेम०—तो फिर आओ (दोनों का प्रस्थान)॥१६॥

(तब सूत्रधार के वेश में श्रीहरिदास प्रवेश करते हैं तथा थोड़ी दूर पर अदृश्य रूप में मैत्री और प्रेमभक्ति बैठी हैं)

सूत्र—(अञ्जलि में पुष्प लेकर)

शशधर-माला सम चार ओर प्रोद्भासित,
परिमल संचालित आनन्द को लेत है।
नख रूप चंद्रकान्ति बढ़त है नाना भाति,
जाकी अपरूप शोभा नाना सुख खेत है॥
नाटच रहस्य रस को सुमधुर हास्य मानो,
मनोहर शुभांजली महावली केत है।
जय जय जय जय जय जय जय जय,
भगवत चरणों में पुष्पाञ्जली देत है॥१७॥

आहा! चन्द्रमाओं को श्रेणी को शोभा धारण करने वाली, अपने निर्मल प्रकाश से चारों ओर दिशाओं को प्रकाशित करने वाली, अपनी चारों ओर फैलती हुई सुगन्धि से संसार को प्रसन्न करने वाली, और अपनी अपूर्व शोभा से नख-रूपी चन्द्रमाओं की शोभा बढ़ाने वाली, नाट्यरस के हास्य का सा विस्तार करने वाली यह शुद्ध पुष्पाञ्जलि भगवान् के चरण कमलों में चढ़ाई जा रही है॥१७॥

प्रेम०—(विचार करके) आपने बिलकुल ठीक किया।

यद्यपि नान्दी पाठ नेपथ्य में किया फिर भी रंग-पूजा के लिये पुष्पाञ्जलि भगवान् के चरणों में ही डाली। देखो पुत्रि! देखो—

हरिदास का शरीर साक्षात् नाट्य-लक्ष्मी की मूर्ति के समान शोभित होरहा है—उनके कण्ठ में हार, दोनों कुण्डल, अवतंस, विशाल वक्षस्थल पर माला, भुजाओं में बाजूबन्द और कंगन, सिर पर पगड़ी और पैरों में नूपुर हैं ॥१८॥

मैत्री—देवि! शास्त्रों में तो ऐसा रूप नहीं कहा गया है।

प्रेम०—सुनो—

शास्त्रीय-मार्ग और है तथा अनुराग का मार्ग और है। शास्त्रीय-मार्ग में नियमों के बन्धन हैं किन्तु रागमार्ग में नियमों का कोई बन्धन नहीं है।

मैत्री—अनिश्चित रास्ते से चलने वाला तो मंजिल पर देर से पहुंचता है।

प्रेम०—यह निश्चित नहीं है। क्योंकि—

नदी आदि में बाढ़ आने पर कोई निश्चित रास्ता न होने पर भी नाविक जल्दी ही मंजिल पर पहुंच जाते हैं तथा स्वभाव से ही टेढ़ी बहने वाली नदी में रास्ता निश्चित रहने पर भी जल्दी नहीं पहुँचते।

इसलिये इस बात को रहने दो, अब यह क्या प्रारम्भ करते हैं सुनो ॥१९॥

सूत्र—ज्यादा विस्तार से क्या काम—

अहो! आज मैं भगवान् ब्रह्मा की नित्य-वन्दना समाप्त करके वापस आ रहा था। सौभाग्यवश वहाँ आए हुए नारद ने श्रम को दूर करते मुझ से कहा—अरे! निपुण नट! आप

लोगों के द्वारा सुन्दर रूप से अभिनीत, वृन्दावनबिहारी (श्री-कृष्णचन्द्र) की अनुपम क्रीडा रूपी चांदनी देखूँ यह मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी। इसलिये वह इच्छा जिस प्रकार पूर्ण हो वैसा आज कुशलता से तुम करो। मैं भी वहां आज आऊँगा। अतएव मैं वैसी ही कोशिश करूँगा। (सामने देखकर) अरे! इधर, इधर आइये ॥२०॥

पारिपार्श्विक—(प्रवेश कर) विद्वन्! क्या आज्ञा है?

सूत्र—आर्य! आज पूज्यतम भगवान् नारद ने मुझ से एक अनुरोध किया है।

पारि०—क्या?

सूत्र०—(आज मैं भगवान् ब्रह्मा……यह सब पुनः कहता है।)

पारि०—श्रीमन्! भगवान् ब्रह्मा के पुत्र, सनक सनन्दन आदि के छोटे भाई, निजानन्द में मस्त, साक्षात् ब्रह्म स्वरूप, सतत ब्रह्मानन्द रस के रसिक, संसार के शुभचिन्तक श्री नारद ने श्रीकृष्ण की लौकिक क्रीड़ा में सतृष्ण होकर आपसे यह प्रार्थना की ॥२१॥

सूत्र—उसमें एक रहस्य है।

श्रीहरि ऐसे ही गुणों से युक्त हैं कि निजानन्द में मस्त मुनि लोग भ्रमभेद बुद्धि से मुक्त होने पर भी, महा पराक्रमी श्रीहरि को निष्कारण ही भक्ति करते हैं।

यह सब भागवत की कथा है। सूत ने शौनकादि मुनियों को यह रहस्य समझाया है।

पारि०—ठीक है भक्ति करें किन्तु लौकिक-लीला-चरितों में क्यों अनुरक्त होते हैं?

सूत्र—ऐसा मत कहो—

श्रीहरि की अलौकिक लीला से लौकिक लीला अधिक

चमत्कारी एवं रंजक है। लीलावतार की कथा अत्यन्त मधुर है, विश्व की सृष्टि-आदि की कथा तो अत्यन्त पुरानी है अतः उतनी मनोहर नहीं है ॥२२॥

इसीलिये कहा गया है—

"भगवान् श्रीकृष्ण ऐसी ही लीला करते हैं जिन्हें सुनकर मनुष्य श्रीकृष्ण-परायण हो जाँय" यह बात साधारण परक हो है। विशेष रूप से यह नारद जी वृन्दाबन-लीला के रसिक हैं, श्रीगोपाल-महामन्त्र के ऋषि भी हैं, अतः यह सब ठीक है। इसलिये शीघ्र ही सब नटोंको पात्रों की भूमिकाएँ बाँट दो॥२३॥

पारि०—श्रीमन्! कुछ देर प्रतीक्षा करो तब तक मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मा जी आजायँ।

सूत्र—उन्हें सम्भवतः आया ही समझो। आकाश-मार्ग से चलने वाले उन जैसे लोगों को आने जाने में देर नहीं लगती।

पारि०—तब फिर श्रीकृष्ण की किस लीला का अभिनय करना है, यह बतायें—

सूत्र—वही राधा और माधव की दानलीला जिसे वृद्धा का वेष धारण करके योगमाया स्वयं सम्पादित करती हैं ॥२४॥

पारि०—वह जल्दी से कैसे उपस्थित की जा सकती है।

सूत्र—क्यों?

पारि०—सुनिये—उसके अभिनय के लिये तो आपकी सब से अधिक प्रवीण कन्याएँ चाहिए।

सूत्र—(घबड़ाकर) बोलो वे कुशल से तो हैं?

पारि०—कुशल तो हैं किन्तु—

वे सब आनन्दके कारण एक साथ ही गोपीश्वर की पूजा करने वृन्दाबन चली गई हैं।

सूत्र—क्या करूँ? इस बात पर नारदजी कैसे विश्वास करेंगे? उनके शाप से भय अवश्य होगा।

पारि०—अरे नहीं-चिन्ता न करिये। वे कन्याएँ अब आही रही होंगी ॥२५॥

सूत्र—ओह! भाई तुमको पता नहीं है—

वे कुमारियां रास्ता नहीं जानती हैं। साथ में कोई ठीक मित्र भी नहीं है। मद-जल से गीली सूँड़ वाला, बादलों के रंगवाला भयंकर हाथी भी वहाँ है। (दूसरे पक्ष में) दान लेने के हाथ उठाये मेघवर्ण श्रीकृष्ण वहाँ हैं।

पारि०—उनके साथ आपकी वे बूढी सास अत्यन्त प्रभावशाली योगमाया तो हैं।

सूत्र—(हँसकर) तब तो अवश्य निश्चिन्त हूँ।

जो न रास्ता देख सकती है, जो बात भी नहीं सुनती है, जिसको मूर्तिमती साक्षात् वृद्धावस्था ही है वह भला क्या सहायता करेगी?

पारि०—ऐसा न कहिये—

वह योगिनी है अत्यन्त प्रभावशाली। आयु से उसमें बहुत न्यूनता नहीं आ सकती। जैसे प्रतिदिन वृद्ध होने पर भी चन्द्र की मण्डली क्षीण नहीं होती उसका प्रकाश बढ़ता ही है ॥२६॥

(नेपथ्य से—हे! हे! नटनायक! उस अभिनय में अब क्या देरी है?

सूत्र—(सुनने का अभिनय करके) भाई देखो मुनिवर नारद जी अभिनय किये जाने वाले आनन्द को देखने के उत्कण्ठित होकर जल्दी जल्दी चले आरहे हैं। हम लोगों का तो कुछ सामान ही ठीक नहीं हुआ है इसलिये यहाँ से जाकर हम लोग उन

लड़कियों को ही खोजने चलें ।

पारि०—जैसा आपको ठीक लगे । (थोड़ा घूमकर दोनों का प्रस्थान) ॥२७॥

(प्रस्तावना)

(उसके बाद एक स्नातक के साथ नारद जी प्रवेश करते हैं)

नारद—अहो नटनायक ! अब क्यों और देर कर रहे हो ? (यह कहकर सूत्रधार को खोजते हैं)

प्रेम०—वत्से ! मंत्रि देखो देखो !

जो महती नामक वीणा को कंधे पर रखकर उसे बजा रहे हैं, दाहिने हाथ में कङ्कण के समान अक्षमाला को धारण कर रहे हैं, बिजली के समान जिनकी जटा प्रकाश फैला रही है, वे कैलाश के समान श्वेत-कान्तिवाले देवर्षि नारद आरहे हैं।

वत्से ! यह मुनिवर परम भागवत हैं। इनको प्रणाम करो। इनकी गाथा श्रीमद्भागवत में कही गई है।

यह देवर्षि नारद धन्य हैं। जो शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले श्रीहरि के वीणा तन्त्र से गुणों को गाते हुए, प्रेममत्त होकर इस दुःखित संसार को आनंदित करते हैं ॥२८॥

मैत्री—(प्रणाम करके) देवि ! आपने कहा है कि श्रीवास नारद होंगे तब स्वयं नारद कहाँ से आगए ?

प्रेम०—स्वभाव से ही नारद का इन श्रीवास में आवेश है अतः इनका नारद रूप होना स्पष्ट ही है। अद्वैत आदि में यह सब वेश काल्पनिक जानिये। वत्से ! इस समय इस विचार का काम नहीं है। जिस रूप में देख रही हो इसी में ही विश्वास करो।

नारद—हे स्नातक ! यहाँ कोई दिखलाई क्यों नहीं पड़ रहा है?

स्नातक—देवर्षे ! सूत्रधार (नटनायक) तो वृन्दाबन में ही नृत्य

करना है इस अभिप्राय से सब सामग्री समेत वहीं वृन्दाबन गए हुए हैं। आओ वहीं चलें।

नारद—यही तो वृन्दाबन है।

स्नातक—हे महात्मन् ! आप असीम आनन्दरस में निमग्न होकर अपने आपको भी भूल गये हैं, जिससे अपने चिर परिचित वृन्दाबन को भी आप नहीं पहिचान रहे हैं ॥२९॥

नारद—हे स्नातक ! तुमने ठीक कहा है, आनन्द के उन्माद से जिनके वाह्य एवं अन्तःकरण की वृत्तियां लुप्त हो गई हैं वे अपने को कैसे पहचानें फिर किसी दूसरे विषय को पहिचानने का प्रश्न ही नहीं उठता।

तो वहाँ का रास्ता दिखाओ।

स्नातक—देवर्षे ! इधर चलिये इधर (दोनों चलने का अभिनय करते हैं)

प्रेम०—(देखकर) अरे ! देवर्षि का तो वृन्दाबन में अनुराग है ॥३०॥

नारद—(कुछ दूर चलने का अभिनय करके) अहो—

जाकी पर-पार में विरजा जु विराजमान,
परव्योम चित्रधाम सब पुकारत है।
जाकी भूमि कुंज लता समस्त ही चिन्मयता,
सान्द्रानन्द पक्षिवृंद - मृग हुँकारत है॥
ताकी निरीक्षण करि भाग्यराशि वारि वारि,
नेत्र धरिबे को फल वहु ठुकारत है।
स्वयंभू-ब्रह्माजू जहाँ तृण जन्म वांछा करें,
जय जय जय वृंदावन घुकारत है॥३१॥

अर्थात्–विरजा नामक नदी के उस ओर विराजमान जिस स्थान को परम व्योम कहा जाता है, जो नित्य चिन्मय-भूमि और

चिन्मय-लताओं तथा कुञ्जों से सुन्दर है, और जो सब ओर घन आनंद में निमग्न पक्षियों तथा जानवरों के समूह से व्याप्त है वह यह जो वृन्दावन देख पड़ रहा है, इसके अलावा और आंखों का क्या फल सम्भव है। जहां मेरे पिता ब्रह्माजी ने भी जिस किसी प्रकार के जन्म को इच्छा की थी।

जैसी कि पुराण में कथा है—

हे नाथ! इस गोकुल में तृण रूप में जन्म प्राप्त करके इस सुन्दर वन में व्रजवासियों की चरण-धूलि से स्नान करना बड़े भाग्य से मिलता है। (इत्यादि श्रीमद्भागवत के श्लोक के साथ वीणा बजाते हुए नारदजी नाचने लगते हैं) ॥३१॥

स्नातक—इस प्रकार आप तो कदम कदम पर प्रेमानन्द से विह्वल होते हैं फिर कैसे चलेंगे?

नारद—(धैर्य धारण करके) मार्ग दिखाओ।

स्नातक—इधर, इधर (दोनों फिर चलने का अभिनय करते हैं)

(नेपथ्य में मुरली की ध्वनि होती है)

स्नातक—हे देवर्षि! यही वृन्दाबन है क्योंकि सुनो, भगवान् श्रीकृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनाई पड़ती है ॥३२॥

नारद—(सुनने का अभिनय करके) अरे! तुमने ठीक ही कहा।

माधुर्य-रस वापी में मदमत्त हंसिनी की,
चुनु चुनु चुनु चुनु चुनु चुनु ध्वनि है।
प्रीति पुष्पवाटिका में भृंगों के संगीत घोष.
वुँ वुँ वुँ वुँ वुँ वुँ वुँ वुँ वुँ वुँ वुँ वुँ वनिहै॥
सुरत-समर भेरी जु की है जु महाफेरि,
भाँ भाँ भाँ भाँ भाँ भाँ भाँ भाँ भाँ भाँ भाँ भाँ धुनिहै।
पूतनारे जय जय हृदयदंशी है वंशी—
निनाद है मद भरि भरि महा थुनि है ॥३३॥

क्योंकि माधुर्यरस की बावली की मस्त हंसिनी के स्वर के समान, प्रणय रूपी पुष्पों की बाटिका के भौंरे के संगीत की ध्वनि के सदृश, रति रूप समर की भेरी झङ्कार की तरह हृदय को बोंधने वाली पूतनारि श्रीकृष्ण की अनुपम बंशी ध्वनि विजय प्राप्त कर रही है ॥३३॥

प्रेम—वत्से! श्रीकृष्णचन्द्र का प्रवेश होने वाला है अतः जन्म जन्म के दुःख भूल जाओ और अपनी आँखों को सफल करो।

मैत्री—यह सब आपके चरणों की कृपा से ही हुआ है।

नारद—(खूब बिचार करके) हे स्नातक! यह वास्तव में व्रज-राज कुमार श्रीकृष्ण की ही बंशी-ध्वनि है। क्योंकि पहाड़ों की श्रेणियाँ भी मानों आँसू बहा रही हैं और पेड़ तथा लताओं के समूह को भी रोमाञ्च सा हो रहा है और नदियों के प्रवाह में स्तम्भ हो रहा है वाह वाह श्री कृष्ण की बंशी का हो शब्द हो रहा है ॥३४॥

(इस पद्य के साथ वीणा बजाते हुए पहले पहले की तरह नाचते हैं)

स्नात—यह नाचना यथार्थ ही है। क्योंकि—

आज वे चरण कमल दृष्टिगत होंगे जिन्हें वेद भी बहुधा खोजते रहते हैं, ब्रह्म-तत्व निष्ठ लोगों को भी जिनमें अत्यन्त रस प्राप्त होता है, जो मूर्तिमान आनन्द के सार हैं, और जिनकी श्री ब्रह्मा और शम्भु जी बन्दना करते हैं!

इसलिये कुछ देर हमें अदृश्य रूप से रहना चाहिये। पता नहीं भगवान् श्री कृष्ण अपने सखाओं के साथ आ रहे हैं अथवा परम सौभाग्यशाली अहीर गोप रमणियों के साथ अतः अकस्मात् पहुँच जाना ठीक नहीं ॥३५॥

नारद—ठीक कहा तो फिर ऐसा ही करें। (यह कह अदृश्य रूप से स्थित होते हैं)

(तब कुछ सखाओं के साथ कदम्ब-वृक्ष के तने के सहारे त्रिभङ्गी स्वरूप से सुन्दर भाव से स्थित मुरली बजाते हुए श्री कृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण—हे मित्र ! यह वृन्दाबन की सुभगता बड़ो रमणीय है। क्योंकि—

माधवीलता फुल्लित बकुल है मुकुलित,
अशोक है कुसुमित देखो बन शोभा है।
पक्षिगण विह्वल चम्पक से समाकुल,
मनोहर पुन्नाग रु स्तवकित गोभा है।
पुष्पकुटी महावाटी मलयाचल संपुटी,
तरु चंदन पर्वत चार ओर लोभा है।
प्रियमधु वयस्य हो मंगल देख हो अहो,
अपरूप शोभा वृन्दाबन महा चोभा है॥

यह देखो माधवी लता हँस रही है, इन छोटे छोटे बकुलों में कलिकाऐं निकल आई हैं, यह अशोक (फूलों की सम्पत्ति से) प्रसन्न हो रहा है, चम्पक लताऐं चिड़ियों से आकीर्ण हैं, पुन्नाग निर्मल हो सुन्दर लग रहा है, फूलों का कुटीर गुच्छों के कारण बड़ा मनोहर हो रहा है, बसन्त मलय-पवन से सुगन्धित होकर बड़ा शोभित हो रहा है ॥३६॥

सखागण—हे मित्र ! यह आपका क्रीड़ा-बन है, सुन्दर कैसे नहीं होगा ?

प्रेम—(देख कर) अरे यह क्या ?

यह अद्वैत तो हैं नहीं और न रूप बनाने की कला का चमत्कार भी नहीं है, यह तो स्वयं हरि ही साक्षात् प्रकट हुए

हैं। असली वस्तु ही अधिक चमत्कार का विस्तार करती है परन्तु उस यथार्थ के आकार से सुख भी होता है और संदेह भी पैदा करता है ॥३७॥

(पुनः देखकर और विचार करके)

कृष्ण से भिन्न अन्य कोई भी कृष्ण होने में समर्थ नहीं होता है। स्वयं कृष्ण अनेक प्रकार के आकार बनाने में समर्थ होते हैं। अङ्गी (सम्पूर्ण तत्व) अपने अंगों के स्वरूप का ग्रहण तो कर सकता है पर भला अंग (सम्पूर्ण का कोई अंश) अङ्गी के रूप को कैसे धारण कर सकता है।

इसलिये यह न तो अद्वैत ही है और न विशेष शिल्प-कौशल से बनाया हुआ रूप है, यह तो स्वयं कृष्ण ही अवतरित हुए हैं ॥३८॥

नारद—(दूर से देखकर आनन्द के साथ) अहो ! यह क्या है ?

घनानन्द महारस बारिधि मथि के किधौं,
श्यामामृत समुत्पन्न विधिजु ने कीनो है ?
कृपा मोहिनी देवी ने किधौं भक्तगण मधि,
परिवेश कियो अहो महासुख दीनो है॥
चार ओर अनुरागी भक्तवृंद रुचि लागि,
पूर्ण अमरित पान बड़ चाह लीनो है।
पुरातन न विकृत अद्भुत से अद्भुत,
अपूर्व है श्यामामृत रसभरि भीनो है ॥३९॥

मालूम पड़ता है कि सघन-आनन्दमय समुद्र के मन्थन से उत्पन्न यह श्यामवर्ण अमृत है, जिसे कृपारूपी मोहिनी ने सद्भक्तों की गोष्ठी में ले आई है, चारों ओर रसिक समूह अपनी अपनी रुचि से इसे बार बार पीते हैं फिर भी यह कम नहीं

होता है, और जो ऐसा अद्भुत है कि न तो कभी पुराना होता और न खराब ही होता है ।।३६।।

और भी—

श्रीकृष्ण नए मेघ के समान शोभावाले, करोड़ों काम-देवों के समान मनोरम, शरत्काल के पूर्णचन्द्र के समान स्निग्ध एवं मोहक मुखवाले, नए खिले कमल-दल के समूह के समान विशाल और अरुण आँखों वाले हैं, उनके बिम्बाधर में पुष्प-रूपी दन्तों की छाया पड़ने से वे सुन्दर लग रहे हैं। वे इधर ही आरहे हैं अतः आओ कुञ्ज की आड़ में छिपकर देखें ।।४०।।

स्नातक—ऐसा ही ठीक है (यह कहकर दोनों छिप जाते हैं)

श्रीकृष्ण—मित्र सुबल ! श्रीदाम ! मित्रवर सुदामा ! कुसुमासवक नामक मेरा सखा बटु क्यों नहीं देख पड़ रहा है यह पता लगाओ ।

सभी मित्र—जैसी आज्ञा अभी पता लगाते हैं । (खोजने का अभिनय करते हैं) ।।४१।।

(बिना पर्दा उठे ही घबड़ाहट में विदूषक प्रवेश करता है)

विदूषक—मधुमंगल अरे मित्र ! बचाओ ! बचाओ !

श्रीकृष्ण—क्यों ? डरे हुए से लग रहे हो ? क्या बात है ।

विदूषक—बूढी सी दीख पड़ने वाली एक योगिनी पांच छः सुन्दर किशोरी रमणियों को वन में लाकर गोपीश्वर-पूजन का आयोजन कर रही है यह मैंने देखा है। आपके भाग्य से ही मैं बचकर आया हूँ नहीं तो आज मुझे पकड़कर बलि दे देती, इसी से मैं भयभीत हूँ ।।४२।।

श्रीकृष्ण—(हँसकर) मित्र सुबल ! यह क्या मामला है ?

सुबल—मैंने यहीं खड़े खड़े समझ लिया है। आज गुरुजनों के अधिक विरोध पर भी ध्यान न देकर श्रीराधा पूज्य स्वभाव-

वाली अपनी नानी मुखरा के साथ जल्दी जल्दी अति आनन्द के सहित स्वच्छन्दता पूर्वक वन में आयेंगी । मालूम पड़ता है कि वहीं उसी बृद्धा को देखकर योगिनी के भ्रम से डरकर यह आया है। वह बूढ़ी देखने में साक्षात् देवमाया ही लगती है ।।४३।।

विदूषक—ही ! ही ! यदि ऐसा है कि वहाँ आई हैं तो फिर तो वे अवश्य ही प्रियमित्र श्रीकृष्ण के हाथ में पड़ेगीं क्योंकि गोकुल में रहने वाली सभी लीलावती हरिणी रूपी स्त्रियों के लिये मेरे मित्र के गुणों का समूह जाल के समान ही है।

नारद—हे स्नातक ! अब यहाँ और रुकना ठीक नहीं है। अतः आओ दोनों योगबल से आकाशचारो होकर यह सब देखें ।

(दोनों का प्रस्थान)

नेपथ्य में—

हे आर्ये ! किस रास्ते से गोपीश्वर को चलें ? क्योंकि वह धूर्त जंगली हाथी जगह जगह पर दानमद बहाकर खेल खेल में सूड़ को खुजलाता हुआ भौरों को आकर्षित करता रहता है।

(कृष्ण-पक्ष में) जगह जगह पर श्रृङ्गार के हाव भाव पूर्ण हाथों से सखियों को दान देकर आकृष्ट करता रहता है।

सुबल—मित्र ! मेरी बात बिलकुल ठीक निकली ।

कुसुमासव—मैंने जो कहा है क्या वह ठीक ही नहीं होगा ? अरे सुबल ! बेकार में क्यों घमण्ड कर रहे हो ? (कृष्ण से) आप भी वही प्रयत्न करें ।।४५।।

श्रीकृष्ण—कौन सा प्रयत्न करें ।

कुसु०—क्या तुमने सुना ही नहीं ? स्थान स्थान पर दान देकर इत्यादि उन स्त्रियों ने जो कहा है। तुम जंगली हाथी हो यह

कहा सो तो ठीक है किन्तु जो धुर्त कहा है उससे मुझे कष्ट हो रहा है।

श्रीकृष्ण—(हँसकर अपना अभिप्राय छिपाते हुए) मित्र ! जंगली हाथी और धूर्त इन शब्दों से तुम्हें क्यों कष्ट होरहा है ?

कुसु०—इस जंगल में और दूसरा जंगली हाथी कहाँ है ।।४६।।

(पुनः नेपथ्य में) वह दानबिहारी जंगली हाथी अपने मित्र कलभों (हाथी के बच्चे) के साथ रास्ते में विहार कर रहा है। हाय ! अब कैसे चलेंगी ?

कुसु०—मित्र ! आओ हम लोग थोड़ी देर के लिये इस कुञ्ज में छिप जायें। ये स्त्रियाँ निश्चिन्त होकर यहां आयें ।।४७।।

(सब वही मानकर कुञ्ज में प्रवेश कर गये। तत्र बूढ़ी के साथ पूजा सामग्री हाथ में लिये हुये, पुराने पत्तों से घिरे नए कोपल की तरह मनोहर श्रीराधा प्रवेश करती हैं)

श्रीराधा—हे सखियो ! गोपीश्वर की पूजा के लिये सभी सामान ले आई हो ?

सखीगण—हाँ और क्या ? केवल यह सोचकर कि मुरझा जायेंगे फूल नहीं लाई हैं, वे यहीं चुन लेंगी।

राधा—बहुत ठीक किया। आओ यहीं चुनलें।

(यह कहकर फूल चुनने लगीं) ।।४८।।

प्रेम०—(देखकर) अरे ! बड़ा विचित्र है !! यह तो वही श्रीगौरांगदेव हैं। इनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं। क्योंकि जो यह अपनो अद्भुत कला से देवताओं के शत्रुओं को मोहित करने वाले मोहिनी-रूप हुए थे और आत्मानन्द में सुनिष्ठ, ईश्वरों के ईश्वर भगवान् श्रीशङ्कर को भी मुग्ध कर दिया था। उनके लिये यह कुछ भी आश्चर्य नहीं है कि कृष्ण-रूप से अवतरित होने के साथ साथ श्रीराधा का आकार भी अपने शरीर से ग्रहण कर लिया। वे देव विश्वम्भर हैं ।।४९।।

अथवा—

जैसे चने के भीतर दोनों दल होते हैं वैसे ही यह भगवान् श्रीकृष्ण अपनी शक्ति के साथ अभिन्न रूप से प्रतीत होने पर भी दोनों में समान रूप से विभक्त होकर अलग अलग स्त्री एवं पुरुष का रूप धारण किया है ।।५०।।

(पुनः दूसरी ओर देखकर)

आहा ! यह वास्तव में ब्राह्मण-श्रेष्ठ श्रीगदाधर नहीं हैं, यह तो राधिका की सखी ललिता ही है। अथवा स्वयं हरि ही अपनी शक्ति से श्रीकृष्ण, राधिका और ललिता तीनों रूप में अवस्थित देख पड़ रहे हैं ।।५१।।

(पुनः दूसरी ओर देखकर)

अहो ! यह भी पाप और माया का नाश करने वाली शान्त, कमलनयनी, रजोगुण से रहित योगमाया मानों तमोगुण का सतोगुण में लय करके श्वेत केश के रूप में धारण करती हुई बूढ़ी के वेश में प्रविष्ट हुई हैं। यह तो नित्यानन्द नहीं हैं क्योंकि नित्य-आनन्द-रूप भगवान् ने अपनो ही योगमाया को अवतरित किया है। उनके लिये इसमें कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि—

निवास स्थान, शय्या, बैठने का स्थान, खड़ाऊँ, कपड़े, तकिया, छाता आदि रूप में अपने शरीर को परिणत करने के बाद ही अन्त में उन्होंने यह नाम धारण किया है यह पुराने भक्त कहते हैं ।।५२।।

श्रीकृष्ण—(राधा को देखकर)

उतकीर्ण किधौं चारु कारुपति कामकृत,
प्रेम चित्रकर कृत किधौं वहु चित्रिता।

लावण्य विश्वकर्मा ने कुन्दोपरि सस्थापित-
करिके निर्मल किनी अहो बड़ी विचित्रा ॥
सौन्दर्य-वारिधि मथि करि समुद्भव भई,
माधुर्य लक्ष्मी जी अहो किधौं वहु सिंचिता ।
दरसन परसन महारस बरसन,
नव नव चाँह अरु नवरस शिक्षिता ॥५३॥

अरे ! इनको क्या शिल्पी के रूप से स्वयं कामदेव ने बनाया है ? क्या चित्रकाररूप से स्वयं प्रेम ने इन्हें चित्रित किया है ? क्या लावण्य रूपी विश्वकर्मा ने ही खराद कर गढ़ा है ? क्या सौन्दर्य-रूप-समुद्र के मन्थन से निकली हुई यह माधुर्य रूपी लक्ष्मी है ? प्रतिदिन देखे जाने पर भी यह अपरिचित सी मुझको विमुग्ध करती रहती है ॥५३॥

अथवा—

किधौं कामनृपति की पराक्रमशालिता हो,
किधौं मधुपान जात मत्तता हो संचिता ।
किधौं लावण्य लक्ष्मी की गर्वता हो रचि पचि,
सौभाग्य विहारभूमि किधौं वहु रुचिता ॥
उल्लास माधुरी किधौं शोभा-रमणि का हास्य,
किधौं त्रिगुण सम्पत्ति अद्वय प्रतिपत्तिता ।
विलासावली की केलि किधौं नानाभाव मेलि,
नयनचन्द्रिका चमत्कारि बालाकारिता ॥५४॥

क्या, कामदेव सम्राट् का पराक्रम है ? लावण्य की मधुपान से उत्पन्न मुस्कराहट है, सौभाग्य की विहार भूमि है, आनन्दकी माधुरी है? शोभा की हँसी है? गुणकी समस्त सम्पत्तियोंका एक रूप संगठनहै? क्या केलि विलासों का एकत्रित पुञ्जहै? अहो !

नेत्रों के लिये चाँदनी के समान चमत्कारी यह चकोर नेत्री कौन है ?

(यह कह कर बड़ी स्पृहा से देखते हैं) ॥५४॥

राधा—ललिते ! आओ लौंग के फूल चुनें (यह कह रङ्गमञ्च पर घूमती है)

वृन्दा—यह मनोहर लवङ्गवाटिका है, कृष्ण को बड़ी प्यारी है। इसके निकट न जाना । नहीं तो मैं तुम्हें छुड़ा नहीं पाऊँगी ।

ललिता—तुम्हारी दुहाई देकर हम अपने को छुड़ा लेंगी । (यह कह कर सभी कौतुक के साथ फूल चुनती हैं) ॥५५॥

राधा—ललिते बचाओ ! बचाओ ! यह दुष्ट भौंरा तङ्ग कर रहा है ।

सखियाँ—हे सखि ! यह चञ्चल मधुसूदन (भ्रमर) अत्यन्त प्रेम से तुम्हारे मुख के गन्ध से अन्धा सा दौड़ रहा है ।

कृष्ण—(देखकर अत्यन्त स्पृहा के साथ) मित्र ! देखो देखो—

मुख के मधु में टूट टूट कर पड़ने वाले मधुकर को हाथ से रोकती हुई, भय से चकित चञ्चल नेत्रों वाली, नीचे मुख किये हुए, हाथ में भ्रमर के छू जाने से भौंहे टेढ़ी करके हाथ को झकझोर रही है । उनका कङ्कणों को झङ्कार से वह भ्रमर भी भयभीत होने का अभिनय कर रहा है ॥५६॥

कुसु०—मित्र ! यही हम लोगों का मौका है । हमारे लवङ्ग पुष्प यह लिये जा रही है, झगड़ कर सब छीन लो ।

कृष्ण—यद्यपि यह दृश्य ही बड़ा मनोहर है तथा प्रिय मित्र के अनुरोध से ऐसा हो करूँ । (यह कहकर कूदकर गर्व से) अयि दुष्ट ललिते ! ऐसा दुस्साहस करने की तुमको किसने सीख दी ! और इतना तुम्हें अहङ्कार है कि-हमारे इस वृन्दाबन में आकर इस तरह स्वच्छन्द घूमती हो ? बार बार इस जंगल में आकर

अभद्र लोगों के समान इधर उधर अस्थिरमन से शरीर के घमंड में चूर होकर फल फूल से लदी सुन्दर लताओं को तोड़-कर मेरा अनादर करती रहती हो, अच्छा हुआ आज मैंने तुम्हें देख लिया है। इस सबका फल भोगो ।।५७।।

बृद्धा—अरे कृष्ण ! इन्हें केवल फूलों से काम है, ये फल खाने के लिये बन में नहीं आई हैं।

कुसु०—आर्ये ! आयु के साथ तुम्हारी बुद्धि भी चली गई है जो तुम को यह पता नहीं चल रहा है कि अपराध के दण्ड को फल कहते हैं !

बृद्धा—रे ब्राह्मण के बच्चे ! तू अब भी दुध मुँहा ही है ! तुम्हें क्या पता है ? बताओ अपराध क्या है ? राधा से रहित होना ही अपराध है, वही दण्ड हो सकता है। हमतो राधा के साथ रहने से सराध हैं हमसे दण्ड का कोई सम्बन्ध नहीं ।।५८।।

ललिता—रे ब्राह्मण ! तुम्हारे मित्र इस बन के कौन हैं ?

कुसु०—ऐ ! ललिते ! अधिकारी हैं।

ललिता—ठीक है ऐसा ही सही ! यदि वे अधिक अरि अर्थात् बड़े शत्रु न होते तो मेरी प्रिय सखी के इस बन की क्या यही दशा होती ?

कुसु०—ललिते ! पाण्डित्य बघार रही हो ! मेरे मित्र इस बन के बड़े शत्रु ही सही परन्तु यह बन तुम्हारी सखी का कैसे हो गया ? ।।५९।।

ललिता—बन का उपभोग ही इसका प्रमाण है। यदि बन उनका न होता तो बेखटके हम लोग फूल कैसे तोड़तीं ?

बृद्धा—ललिता ने ठीक ही कहा है मेरी नातिन राधा का ही यह बन है। राधा ने ही अपनी परिजन रूप बृन्दा को यहाँ देवी रूप से नियुक्त कर दिया है।

श्रीकृष्ण—(हँसकर) आर्ये ! बृन्दा आपकी नातिन की परिजन रूप है।

बृद्धा—अरे कृष्ण ! इसमें क्या सन्देह ? बृन्दा से ही पूँछ लीजिए ।।६०।।

कुसु०—(कान में) हे मित्र ! वह बृन्दा इन्हीं की पक्षपातिनी है प्रमाण के बहाने उससे पूँछना ठीक नहीं है।

सुबल—हे ललिते ! इस विषय में मेरे मित्र की नाम-मुद्रा ही प्रमाण है, जो प्रत्येक पेड़ में लगी है।

ललिता—यदि ऐसा है तब भी हम अपराधिनी नहीं हैं। सभी लताएँ मेरी सखी के नामाक्षरों से अंकित हैं। अतः तुम्हारे मित्र का लताओं पर क्या अधिकार है ? हम लोग लवंग-लताओं के ही फूल लिये जारही हैं ।।६१।।

बृद्धा—ललिते ! तुम्हारी बलिहारी ! बहुत अच्छी बात कही है। हे कृष्ण ! ये स्त्रियाँ अपने ही अधिकार की सीमा में हैं, इनसे क्यों झगड़ रहे हो ? यदि मांगो तो मैं तुम्हें लवंग-पुष्प दे सकती हूँ क्योंकि तुम सब के प्रिय हो ।।६२।।

श्रीराधा—(कृष्ण के प्रति मन ही मन में संस्कृतभाषा में) आहा ! यह क्या आश्चर्य है ? जो अपने शरीर की शोभा से संसार को और अपने मुख की शोभा से दिशाओं को पूर्णचन्द्र के मण्डल से युक्त कर रहा है, अपनी वाणी से कर्णों को सुधा-रस से परिपूर्ण कर रहा है और अपनी दृष्टि से आकाश को कमलों से युक्त कर रहा है।

बृद्धा—कृष्ण ! फूल लो (यह कहकर सखियों के आँचल से फूल लेकर कृष्ण के पास बिखेर देती हैं) ।।६३।।

राधा—(आँचल से मुँह ढक करके मुस्कराकर) आर्या ने क्या

कर दिया ? देव-पूजन के लिये चुने गये फूलों की यह दशा करदी।

कृष्ण—(राधा को देखकर अपने मन नें) इसने मुख को घूँघट से छिपा लिया हैं, इसीलिये बड़ी सुन्दर लग रही है। क्योंकि

चंचल हरिण-सदृश-नेत्रों वाली इसको अंजन से युक्त आँखों की कोर पिंजड़े में स्थित खंजन के समान शोभित होरही है। थोड़ी थोड़ी मुस्कराहट ऐसी दिखलाई पड़ती है जैसे पर्दे से छनकर आता हुआ चन्द्रमा का रस हो ।।६४।।

ललिता—आर्ये ! आप बहुत भयभीत हो, जो तुमने इतने परिश्रम से चुने हुये फूलों को बेकार कर दिया। यह इस वृन्दाबन का कौन है ?

बृद्धा—ललिते ! तू झगड़ा करने में समर्थ है। तेरे मन में बेकार का घमंड है, इसलिये तू इन दुष्ट लोगों से झगड़ा कर। आओ नातिन ! आओ चलें। (राधा को लेकर जाने लगती है) ।।६५।।

राधा—आर्य ! कहाँ चलना है ? क्या गोपीश्वर की पूजा नहीं करनी ?

कुसु०— आर्ये ! यहाँ पर प्रियमित्र को कर देना होता है वह दान देकर जा सकती हैं।

बृद्धा—ब्राह्मण बटुक ! क्या कर देना है रे ?

कुसु०—मित्र सुबल ! तुम बताओ ।।६६।।

सुबल—राजा कामदेव ने योग्य समझकर फूल प्रदान कर इस वृन्दाबन में नई नई कुल-बधुओं के समूह से टक्कर लेने के कार्य में यशस्वी मेरे मित्र श्रीकृष्ण को अधिपति बना दिया है। इस लिये बेकार झगड़ा करने से क्या फल है, कर देकर रमणियाँ जाँय ।।६७।।

बृद्धा—होगा तुम्हारा मित्र कर लेने वाला, पर हम राजा कामदेव के वश में थोड़े ही हैं।

कुसु०—अरे तुम बूढ़ी कामदेव के वश में कैसे होगी ?

बृद्धा—(क्रुद्ध होकर) अरे ! जब देने योग्य कोई वस्तु हो तभी कर देने का प्रश्न उठता है।

कृष्ण—(गम्भीर होकर) हाँ भाई ! सुनो—

कमल-नेत्रियों के पास रत्न-आदि हों चाहे न हों इन भुजलताओं के भूलों में से तो कर देना होगा यह मैंने यह पक्की शर्त बता दी है। वैसे तुम लोग रत्न भी लाई हो, इन रत्न की पुड़ियों को खोलकर अन्दर दिखाओ ।।६८।।

सखियाँ—यह गोपीश्वर की पूजाके लिये सामान की पोटलो है।

कुसु०—अरी मूर्खाओ ! यही गोपीश्वर हैं। इन्हीं की पूजा करो।

सखियाँ—गोपीश्वर तो महाकाल हैं।

कुसु०—क्या यह महाकाल नहीं हैं, जिनके प्रकाश से पूरा बन श्यामरंग का होगया है ?

सखियाँ—अरे ! चन्द्रशेखर की पूजा करनी है।

कुसु०—देखो ! देखो ! क्या यह चन्द्रशेखर नहीं है।

(मोरपंख की ओर इंगित करता है) ।।६९।।

सखियाँ—बातूनी ! गौरीपति की पूजा करेंगी।

कुसु०—क्या तुम सब गौरी नहीं हो ?

बृद्धा—अरे बटु ! अपने मित्र को इन स्त्रियों का पति समझ रखा है ? अभी रुको क्या तुम गाँव में नहीं मिलोगे (अथवा—रुको ! रुको ! गाँव में तुम्हारा कहीं पता नहीं लगेगा ?)

सखियाँ—अरे वाचाल ! पशुपति की पूजा करनी है।

जो पालता है वह क्या पशु-
कुसु०—वाह भाई ! इतनी गौएँ जो पालता है वह क्या पशु-पति नहीं है ? ।।७०।।
सखियाँ—ऐसा कहो कि "हम लोग इतने जिसके पशु हैं वह क्या पशुपति नहीं है ?
सुबल—हम लोग पशु ही सही ! लेकिन इस तरह तुम्हारे मत से भी श्री कृष्ण पशुपति हुए इस लिये इनकी पूजा करो। पोटली में क्या लिये जा रही हो यह दिखादो और जाओ। बेकार झगड़े से क्या लाभ ?
राधा—सखियों ! दिखादो।

(सभी सखियाँ दिखाती हैं)

कुसु०—यह कस्तूरी है, यह कुंकुम है, यह अगर है, यह चन्दन है, यह कपूर है, यह मोतियों का हार है किन्तु कारीगरी से तुमने उसे सर्पहार की तरह बना दिया है ।।७१।।
बृद्धा—अरे सर्पहार ! इस बटु को डस लो।
कुसु०—आर्य्ये ! हम लोग कालियनाग को मारने वाले श्रीकृष्ण के साथी हैं। इसलिये सर्पहार से कैसे डरेंगे। जो भी हो अब कर देकर जाओ।
सखियाँ—ठीक है, हम लोग देवपूजा करके घर जायेंगी तब तुम्हारा मित्र यदि वहां चले तो जो हो सकेंगी देदेंगी ।।७२।।
कुसु०—अरी नीच ! अपने अधिकार का स्थान छोड़कर मेरा मित्र तुम्हारे घर जाकर भीख माँगेगा ? इसलिये अभी खड़ी रहो ! (पूजा का सामान लेने का प्रयत्न करता है)
ललिता—हे गोपराज-पुत्र ! यह देवताओं की वस्तु है इसे इस तरह अपवित्र करना ठीक नहीं।
राधा—ललिते ! इन वस्तुओं को तो इसने छूलिया, देवता पर कैसे चढ़ाई जांएगी। इसलिये इन्हें फेंक दो फेंक दो। घर

जाकर और दूसरा सामान लाकर देवता की पूजा करेंगी। अत: आर्य्ये आओ घर चलें। (जाना चाहती है) ।।७३।।
कृष्ण—(रास्ता रोक कर) अरी ! चतुर बनती है ! कहां जा रही है ?
राधा—(क्रुद्ध होकर, किन्तु क्रोध को छिपाती हुई) क्या मूल धन दिया है जो उसका दान मांग रहे हो ?
कृष्ण—(क्रोध और हँसी के साथ) क्या मूल-धन दिया है ? सुनो ! मूलधन क्या है ? मुख रूपी सोने का कमल, उसमें सुन्दर नेत्र रूप दो नीले नीले कमल, उसके बाद ओष्ठ रूपी दो पद्मरागों की जोड़ी, उस जोड़ी के बीच में दन्त रूपी मोतियों की माला यह सब तो देख ही पड़ता है किन्तु वह सोने के कलशों की जोड़ी है या कुछ और है जो तुम अन्याय पूर्वक लिये जा रही हो यह मुझे समझना पड़ेगा ।।७४।।
राधा—तुम समझने में कौन लगते हो ? नासमझ आदमी कभी समझ नहीं सकता।
बृद्धा—(दोनों के बीच में खड़ी होकर संस्कृत में)

अरे ! यशोदा के पुत्र ! चञ्चल न बनो। लोभ में ऐसी उद्दण्डता क्यों कर रहे हो ? सच कह रही हूँ यदि तुम कुल-वधुओं के साथ छेड़खानी करेगा तो तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ।।७५।।

ललिता-अहे कौन जन तुम माधव है मेरा नाम,
कैसे अहो असमय वैशाख उपस्थित हो,
मुग्धे जनार्दन जानो बन स्थिति कहत हो,
जन क्लेश दाता सब कोई पुकारत है।
गोवर्द्धन धारि मुझे कौन न कहत वाले,
गोगण के हिंसाकारी सब चिकारत है।

उन दोषों से जु जग गोहत्याकारी जु पोष,
अहे वनमालि ! चमकालि सीकारत है ।।७६।।

अर्थात्—

ललिता—(क्रोध के साथ पहुँचकर संस्कृत में) तुम कौन हो ?

श्रीकृष्ण—माधव ही हूँ ।

ललिता—अच्छा तो तुम साक्षात् वैसाख हो ।

श्रीकृष्ण—मूर्खं मैं जनार्द्न हूँ ।

ललिता—जनों के अर्द्न ! लोगों को दुःख देने वाले ? यह तुम्हारे जंगल में रहने से पता चल रहा है ।

श्रीकृष्ण—उँह ! मुझे गोवर्धनधारी रूप से संसार में कौन नहीं जानता ?

ललिता—वर्धन (अर्थात् हिंसा) अरे गोहत्या करने वाले ? इस पाप के कारण तुम्हें ही गोहत्या लगी है ।

प्रेम—अहा ! क्या आनन्द आरहा है ।

सामान्य नर्तक लोग जब भगवान् की लीला का अभिनय करते तभी उसमें बड़ा रस आता है । यहाँ तो साक्षात् श्रीकृष्ण ही अपने परिकरों के साथ मिलकर अभिनय कर रहे हैं तो फिर कहना ही क्या ?

और भी—

शास्त्रकारों ने कहा है कि रस वास्तवमें दर्शकों में रहता है, अभिनेताओं में नहीं । यहाँ तो अभिनेता और दर्शक दोनों ही रस है । ठीक है, अलौकिक वस्तुओं में कोई रोक टोक नहीं है ।

और भी—

श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप से उनका लौकिक रूप ही अधिक चमत्कारी है और वह रूप ही लीला है । संसार के

लोगों के लिये वह रूप बड़ा आकर्षक है, एवं अलौकिक होने का एक कारण है ।

(विस्मय के साथ देखती है) ।।७७।।

कुसु०—अरी कुटिले ! ललिते ! मेरे मित्र को तुमने दुराचारी कहा । ठहर जरा—

सुबल—(क्रोध और हँसी के साथ) अरे हां यह सच है ।

तुम्हारा मुख द्विजराज (चन्द्रमा और ब्राह्मण) का हनन कर रहा है, नेत्र की रगत मानो शराब पीने से लाल है, शरीर सोने सा मनोहर (सोना चुराने वाला) है, गुरुजन की स्त्रियों का संग करती ही रहती हो, तुम्हारे साथ पांच-वाण वाला (हिंसक एवं कामदेव) निकट ही रहता है, फिर भी तुम सब पंच महापाप करके भी पवित्र बन रही हो ? और जिसके नाम मात्र से सभी पाप नष्ट हो जाते वह मेरा मित्र दुष्ट है ?

तो मित्र घटपाल (दानी) विना धृष्टता दिखाये अपना काम नहीं कर सकता है । इसलिये अपनी वीरता दिखलाओ।।७८

कृष्ण—(बीच में आकर राधा को पीछे करके खड़ी हुई बृद्धा को हाथ से दूर झटक कर राधा को पर्दे के पीछे ले जाते हैं)

वृद्धा—राधा को बलपूर्वक छुड़ाकर, उसे अन्तर्ध्यान करके स्वयं अन्तर्ध्यान हो जाती है एवं नित्यानन्द अपने रूपमें आकर नाचने लगते हैं ।

मैत्री—यह अकस्मात् नित्यानन्द कहाँ से आगये और वह बृद्धा कहाँ गई ?

प्रेम—यही तो योगमाया का प्रभाव है । योगमाया स्वयं नित्यानन्द में प्रवेश करके वृद्धा का रूप धारण कर रही थीं । रस वही हृदयाकर्षक होता है जो समाप्त नहीं होता यह सोचकर

यथासमय अन्तर्ध्यान होगईं । इसलिये नित्यानन्द अब अपने रूप में स्थित हैं ।

क्योंकि—

स्वाभाविक भाव स्वतः बलो होता है वह कृत्रिम भाव को दबा देता है । धूप या अग्नि से उत्पन्न पानी की गर्म स्थिति (गरमाई) देर तक नहीं रहती ।

अतः इस समय यहीं तक अभिनय होगा, वैसे यह अभिनेताओं की रीति नहीं, भगवान् की लीला है । देखो ! अद्वैत, अद्वैत ही है ।।७६।।

मैत्री—पता नहीं इस समय भगवान् श्रीगौरचन्द्र का क्या रूप है ?

(नेपथ्य में—) अहे ! अहे ! संन्यासी-संन्यासी !

प्रेम—यह बेमौके की उल्टी बात कहां से सुन पड़ी ? (देखकर) अरे ! भगवान् को बाटिका में कोई संन्यासी प्रवेश कर रहा है उसे देखकर कोई डाँट रहा है इसलिये आओ साथ ही निकल चलें ।।८०।।

(सब का प्रस्थान)

।। इति चैतन्यचन्द्रोदयनाटके कुसुमसरोबरनिवासी कृष्णदास कर्त्तृक अनुवादित गर्भाङ्क नामक तृतीयांक ।।



चतुर्थ अङ्क

सन्यासलीलाविष्कार ।

(तब आचार्यरत्न की पत्नी के साथ शची प्रवेश करती है)

शची—बहन ! संन्यासी को देखकर विश्वम्भर ने इतना क्यों आदर किया ? संन्यासियों की विचार धारा तो भिन्न होती है ।

बहन—तुमको आदर कैसे पता चला ?

शची—क्योंकि उस दिन केशव-भारती नामक संन्यासी जब मधुकरी लेने आये तो विश्वम्भर ने मुझ से बड़ी श्रद्धापूर्वक आज्ञा दी और स्वयं अत्यन्त भक्ति और अनुराग दिखाया ।।१।।

बहन—वह भी भक्त ही होंगे ।

शची—संन्यासी का नाम सुनकर तो मेरा हृदय कांपने लगता है । इनके बड़े भाई से मुझे पाठ मिल चुका है इसलिये यह वृत्तान्त उससे ही पूँछूँगी ।

बहन—यह ठीक है ।

शची—मेरे हृदय को आनन्द देने वाले चन्दन के सदृश विश्वम्भर कहाँ है, क्या तुम जानती हो ?

बहन—(सामने देखकर) देखो ! देखो ! चन्द्रमा के समान तुम्हारे आनन्ददायक पूर्व दिशा से प्रकट हो रहे हैं ।

शची—(चाव से देखती है) ।।२।।

(तब भगवान् विश्वम्भर प्रवेश करते हैं)

विश्वम्भर—(हाथ जोड़कर) माता जी प्रणाम ।

शची—चिरंजीव, (मत्था सूँघकर) पुत्र ! यह आचार्यरत्न की पत्नी हैं इन्हें प्रणाम करो ।

(देव प्रणाम करते हैं और वे भय से सिमटने लगीं)

शची—पुत्र ! एक बात पूँछूँ ?

देव—आज्ञा करिये ।

शची—पुत्र ! संन्यासियों के प्रति इतना आदर क्यों है कि उस दिन तुमने केशव-भारती के प्रति उतनी भक्ति की ।

देव—माता ! के सब परम भागवत होते हैं ।।३।।

शची—सच कहो ! क्या तुम संन्यास लोगे ?

देव—(हँसकर) माता ! आपको यह भ्रम कैसे ? क्या यह भी सम्भव है ?

शची—इसीलिये तुम्हारे बड़े भाई के द्वारा दी हुई पुस्तक को मैंने खाना बनाते समय चूल्हे में जला दिया ।

देव—कौन सी पुस्तक ? और जला क्यों दी ?

शची—विश्वरूप ने मुझ से कहा था—जब विश्वम्भर जानकार हो जाय तब उसे यह पुस्तक दे देना । मैंने उस पुस्तक को प्रयत्न पूर्वक रखा था किन्तु जब वह संन्यासी हो गया तो उस पुस्तक को पढ़कर कहीं यह विश्वम्भर भी संन्यासी न हो जाय इसलिये तुम्हारे संन्यासी होने की शङ्का से उसे जला दिया।।४।।

देव—(कुछ पश्चात्ताप करके, हँसकर) माता ! यद्यपि आप साक्षात् ज्ञान रूप हैं तथापि पुत्र के वात्सल्य के कारण यह अज्ञान का कार्य कर डाला ।

शची—पुत्र ! मेरे इस अपराध को मन में न रखना ।

देव—लड़कों के प्रति माता का कैसा अपराध ! किन्तु मैं यदि कोई अपराध करूँ तो उसे क्षमा ही कर देना यह कृपा करना ।

शची—पुत्र ! तुम्हारा कौन अपराध क्षमा करदूँ, अपराध तो कोई है ही नहीं ।।४।।

देव—माता ! कुछ दिनों के लिये मुझे कहीं जाना है तुम मन में दुःखी न होना ।

शची—कहाँ जाना है ?

देव—जिससे आपका और सभी मित्रों को सुख मिले वह खोजने जा रहा हूँ ।

शची—वह सुख तो तुम्हीं हो ।

देव—यद्यपि यह बात सत्य है किन्तु जिससे मेरी भी शोभा बढ़े वह प्रयत्न करूँगा ।

शची—जिससे मुझे दुःख न हो वह करना ।

देव—माता जी !

श्रीकृष्ण परिपालक तुम्हारे जु पिता माता,
वे ही तों तुम्हारे पुत्र भली भाँति जानलो ।
वे ही पति, धन, बन्धु अभीष्ट देवता अरु,
नित्य सुख के प्रदाता हृदय में मान लो ।।
निरन्तर संग सुख प्राप्त ह्वै के ध्यान करो,
अतएव सुखमय दिङ्मण्डल ठान लो ।
इही भाँति वे ही सदा हृदय में राज-मान,
भ्राजमान सदा सरस रु यह ज्ञान लो ।।५।।

श्रीकृष्ण तुम्हारे पालक, तुम्हारे पिता और तुम्हारे पुत्र भी हैं, तुम्हारे कुटुम्बी भी हैं, धन भी हैं, सदा सुख देने वाले बन्धु भी हैं, अभीष्ट देवता भी हैं, जिनका साथ नष्ट न होने वाला है, उन श्रीकृष्ण का चित्त में निरन्तर स्मरण करके सारी दिशायें हो तुम्हारे लिये सुखमय होगयो हैं ऐसा प्रतीत होता है ।।६।।

शची—पुत्र ! तुम्हीं सब कुछ हो तुम्हारी कृपा से मुझे कोई दुःख नहीं है किन्तु ऐसा करना जिससे सदा तुम्हें देखती रहूँ ।

देव—तुम्हें कृष्ण ही को निरन्तर देखना चाहिये । वही तुम्हारे सब दुःखों का नाश करेंगे ।

शची—यही हो ! लेकिन तुम्हीं मेरे कृष्ण हो, इसलिये उठो,

दोपहर हो गई है, तुम भी स्नान-पूजन आदि करो। मैं भी भोजन बनाने जाती हूँ। बहन! तुम भी घर जाओ। तुम्हारा भी पूजा-समय हो गया है! (सबका प्रस्थान) ॥७॥

(तब अद्वैत का प्रवेश)

अद्वैत—भूतावेश से विमुग्ध और भगवान् के आवेश में विह्वल, दोनों ही लोगों की एक ही तरह की दशा होती है। क्योंकि उस दिन भगवान् के मुख से सुनकर कुछ कुछ विश्वास हो रहा है और सन्देह हो रहा है। इससे मुझे पता चला है कि भगवान् विश्वम्भर में असीम प्रभाव है। वास्तव में करोड़ों ब्रह्माण्डों को निर्माण और विनाश के नाटकों के अभिनय में कुशल, अपने चरित की मनोहर-कीर्ति रूपी अमृत से संसारी लोगों के हृदय में उत्पन्न तमोगुण का नाश करने वाले भगवान् विश्वम्भर की ऐसी ही लीला है। जो कि-प्रत्यक्ष-अनुमान आदि प्रमाणों के समूहों के द्वारा भी उसका ज्ञान तब तक नहीं हो सकता जब उन भगवान् की कृपा से उत्कृष्ट ज्ञान न उत्पन्न हो जाये। इसीलिये उस समय अलौकिक चमत्कार करने वाली भी, मुझ में स्थित नृत्य की लीला का अनुभव मुझे नहीं हो रहा है, यह सच है। अतः कुछ लोग तो उस लीला में मुग्ध हो जायँगे और कुछ लोग उनसे वाद विवाद करेंगे। कुछ तत्व को जानने वाले ही इस रहस्य को जान पायेंगे! (ऊपर देख-कर) अरे सूर्य अस्ताचल पर पहुँच रहे हैं ॥८॥
क्योंकि—

"तुम केवल नाम से ही मेरी पत्नी हो वैसे तुम सभी ग्रहों की विश्राम स्थान हो" इस पश्चिम दिशा का उसके पति वरुण द्वारा तिरस्कार किये जाने पर, मानों उन्हें विश्वास

दिलाने के लिये ही सन्ध्याकालीन-सूर्य बिम्ब के बहाने वह गर्म लोहे का पिण्ड धारण कर रही है।

अथवा—सायंकाल रूप पुरुष के सङ्ग से पश्चिम दिशा की बुद्धि लुप्त हो रही है, लाल बादल रूपी वस्त्र नितम्ब से स्खलित हो गया है, मेखला में लगे पद्मरागमणि-रूपी सूर्य काल-क्रम से गिर रहा है।

अतः इस समय सन्ध्या वन्दन करके परम दर्शनीय भगवान् विश्वम्भर के दर्शन करना चाहिये। (ऐसा कह कर उस प्रकार इच्छा करने लगे) ॥९॥

(नेपथ्य में) अरे अपने घर होकर अभी आया यह कह कर अद्वैत गये थे अभी भी नहीं आये।

अद्वैत—(सुनने का अभिनय करके) अरे मुझे देर होते देखकर स्वयं देव मुझ पर आक्षेप कर रहे हैं। अतः मैं शीघ्र जाऊँ (ऐसा कह कर घूमने लगे) ॥१०॥

श्रीराम—(बिना पर्दा उठाये प्रवेश करके)

हे अद्वैत जी! देव भगवान् की आज्ञा है कि मैं श्रीवास के घर जा रहा हूँ आपको भी वहीं जाना है।

अद्वैत—जैसी देव की आज्ञा (उसके साथ रंग मंच पर घूमते हुए, सामने देखकर) यही श्रीवास का घर है, अन्दर जाऊँ। (प्रवेश करने का नाटक कर, पूरब की ओर देख कर) आहा! बड़ा सुन्दर है—

सारे संसार के मनुष्यों के नेत्रों को आनन्दित करता हुआ, प्रेम-रूपी अमृत बरसाने वाला, शीतल किरणों और चरणों वाला चन्द्रमा और विश्वम्भर रूपी चन्द्रमा कुमुदों (पुष्प और संसार भर में आनन्द) का विकास करते हुए शोभित हो रहा है ॥११॥

(तब श्रीवास आदि के साथ भगवान् विश्वम्भर प्रवेश करते हैं)

विश्वम्भर—(उठकर) ठीक से हो ?

अद्वैत—आपके मुखचन्द्र के दर्शन से सब ठीक है ।

देव—(सादर वन्दना एवं आलिङ्गन करके) भगवन् यहाँ बैठिये।

अद्वैत—जैसी आज्ञा । (सब लोग सुख से बैठते हैं)

भगवान्—(अद्वैत से) हम सब लोग खा-पी चुके हैं केवल आप ही थके भूखे हैं अतः देरी न करो । श्रीवास ! तुम अतिथि-सत्कार में योग्य पात्र हो इसलिये इन सब का समुचित आतिथ्य-सत्कार करो ।

अद्वैत—यह चिन्ता न करो । हम लोग भी दैनिक कार्यों से निपट चुके हैं ।

भगवान—(आनन्द से) तो फिर आप सब चन्द्रमा की सुनहरी किरणों के जल से धुले श्रीवास के आँगन में भगवान् का कल्याणकारी कीर्तन करें ।

सब—(आनन्द से)—भगवन् ! आप भी उठें ।

भगवान्—यह लो मैं चलता हूँ । (सब लोग कीर्तन-स्थान की ओर जाते हैं) ॥१२॥

(तब गङ्गादास प्रवेश करते हैं)

गङ्गादास—सुना है श्रीअद्वैत शान्तिपुर से आगये हैं, पता नहीं भगवान् विश्वम्भर के घर गये हैं या श्रीवास के घर ? तो इसका पता लगावें । (कुछ कदम चलता है)

(नेपथ्य में कीर्तन का कोलाहल होता है)

गङ्गा०—(सुनकर) अहा ! श्रीवास के घर में समय से इकठे सब भक्तजनों को आनन्द देने वाला कीर्तन का बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ता है इसलिये यहाँ अद्वैत अवश्य होंगे । तो यहीं रुक

कर पता करें । (देखकर) अरे ! सभी लोग कीर्तन करते हुए भगवान् विश्वम्भर को नचाते हैं, और नाच रहे हैं ॥१३॥

मैं तो समझता हूँ—

भगवान् ने भयङ्कर दैत्यों के समूह से उत्पन्न पृथ्वी के भार को तो दूर कर दिया है पर इस समय संकीर्त्तन नृत्य के कठोरचरणाघातों से देव नाच नाच कर पृथ्वी के दुःख को दूर कर रहे हैं ।

(फिर देखकर)

किधौं मूर्तिरूप यह परानन्द स्वरूप रु,
किधौं देहधारी प्रेमरस यह जान लो ।
किधौं श्रद्धा मूर्तिमती किधौं दया मूर्त्तिधारी,
भूतल में राजमान यह भाव मान लो ॥
किधौं माधुर्य की मूर्त्ति किधौं नवविधा भक्ति,
मिलिके शरीरधारी भ्राजमान ठान लो ।
अहो तुल्यावेश-सुखोत्सव मग्न वक्रेश्वर,
महाप्रभु सह नृत्य करें यह ज्ञान लो ॥१४॥

यह क्या साक्षात् आनन्द है ? क्या यह शरीरधारी प्रेम है ? क्या यह मूर्तिमान् श्रद्धा है ? अथवा पृथ्वी पर स्वरूप से आई दया है ? अथवा देहधारी मधुरता है ? क्या एक शरीर में स्थित यह नौ-प्रकार की भक्ति है ? अरे नहीं यह तो वक्रेश्वर हैं जो भगवान् के समान ही आवेश के सुख में मग्न होकर नाच रहे हैं ॥१४॥

(पुनः नेपथ्य में मिली हुई आनन्द से बड़ी जोर की जय-ध्वनि सुनाई पड़ती है ।

गङ्गा०—(देखकर) अरे ! बड़ा कौतूहल है । जब पण्डित वक्रेश्वर नाचते हैं तो गौरचन्द्र जोर जोर से ताली

बजाकर गाते हैं, और गौरचन्द्र के नाचने पर वक्रेश्वर गाते हैं। दोनों को एक से सुख का अनुभव हो रहा है ॥१५॥

(पुनः नेपथ्य में जय जयकार और शोरगुल होता है)

गङ्गा—(देर तक देखकर) भगवान् विश्वम्भर हो नाचने लगे ! क्योंकि—

गम्भीर हुंकार से अपने समस्त भक्तगणों को मोर के समान नचा देते हैं, बहते हुए आँसुओं के द्वारा सारे संसार में वर्षा ऋतु सी उत्पन्न कर देते हैं, अपने तेज समूह से सारी दिशाओं को बिजली से चकाचौंध सी कर रहे हैं, इस प्रकार विश्व को आनन्द देते हुए विश्वम्भर रूप में मानो मेघ नृत्य कर रहे हैं ॥१६॥

और भी—

अपनी दृष्टि से जो सभी दिशाओं में मानों कमलों की मालायें और आँसुओं से मानों अमृत फैला रहे हैं, भौंहों के द्वारा जो मानों भौरों का विधान कर रहे हैं इस प्रकार से भूम भूम कर नृत्य करने वाले गौरचन्द्र की जय जय हो रही है।

और भी—

जिनके पादाघात से मानो नागलोक के वासी भी आनन्द प्रवाह में डूबे हुए हैं, भुजाएँ उठाकर जो स्वर्ग के निवासी जनों को ताण्डव सिखा रहे हैं, अपने भूमते हुए शरीर रूप दण्ड से जो मानों दिङ्मण्डल को ही घुमा रहे हैं उन देव विश्वम्भर का चक्र रूप से नाचने की जय हो ॥१७॥

(पुनः देखकर) अहा ! अब तो भगवान् अद्वैत भी नाचने लगे।

राम आदि तीनों भ्राता के साथ श्रीवास सर्वोत्तम स्वर से गा रहे हैं, भगवान् और वक्रेश्वर भी उत्सुक हो गये हैं।

मंजीरा, बाजूबन्द,हार,कङ्कन, मेखला आदि से युक्त होकर अद्वैत मानो साक्षात् भजनानन्द स्वरूप होकर पुनः पुनः नाच रहे हैं। बड़ी सुन्दर पगड़ी बाँधने मनोहर शिरवाले, दोनों कानों में ताण्डव में भूलते हुए मुक्ताओं से युक्त, हृदय पर चंचल सोने की जंजीर से शोभित, पैरों में चलते नूपुरों वाले, रोमाञ्चित, जिनका मुख आँसुओं से धुल गया है वे नित्यानन्द महाशय भी बड़े आवेश से नाच रहे हैं ॥१८॥

(आकाश की ओर देखकर) अरे ! रात का तो अब एक ही पहर बाकी है। तभी तो निद्रावश आँखें घूमने लगीं हैं। भगवती निद्रा से मैं प्रभावित हो रहा हूँ, तो थोड़ा यहीं सोलूँ। (सोते हैं, स्वप्न में) हे विश्वम्भर देव कहाँ हो ? कहाँ हो ? (जगकर) अरे ! यह क्या दुःस्वप्न मैंने देखा ?

(कुछ देर भगवान् के चरणों का स्मरण करके पुनः नेपथ्य की ओर देखकर) कोई नहीं दिखलाई पड़ रहा है। मालूम पड़ता है कीर्तन के अन्त में भगवान् आदि सभी लोग सोने के लिये यथास्थान चले गये। मैं भी अपने घर चलूँ (कुछ कदम चलकर) अरे ! यह तो सुबह हो गई ॥१९॥

(पूरब की ओर देखकर)

उदयाचल की खाईं को कुछ पार करके, पूर्व-दिशा के किनारे लटकने वाला यह बाल-सूर्य चरणरूपी-किरणों को फैलाने में कुशल नहीं हैं फिर भी देखो समय के वशीभूत उठ रहा है।

(कुछ कदम चलकर, सामने देखकर) यह कौन है जो जल्दी जल्दी मानों कुछ पूँछने के लिये आरहा है ? ॥२०॥

(घबड़ाया हुआ एक मनुष्य प्रवेश करके)

अरे गंगादास ! क्या तुम्हारी वाटिका में देव विश्वम्भर हैं?

गङ्गादास—(आनन्द के साथ) अहो ! मेरा सौभाग्य है। जिसे देखने जारहा हूँ वह स्वयं मेरी वाटिका में आगया ?

पुरुष—मैं पूँछता हूँ कि क्या तुम्हारी वाटिका में विश्वम्भर आये हैं ?

गङ्गा—(दुःखित से होकर) क्यों पूँछ रहे हो ?

पुरुष—और दिन तो सुबह अपने घर जाकर दैनिक कार्य करते थे। आज नहीं गये इसी से उन्हें खोजने के लिये शचीदेवी ने मुझे भेजा है। (दूसरी ओर खोजने चला जाता है) ।।२१।।

(फिर एक दूसरा भी घबड़ाया हुआ मनुष्य आकर वैसे ही पूँछकर चला जाता है। फिर दूसरा फिर तीसरा इसी प्रकार आते जाते हैं)

गङ्गा०—मालूम होता है उस दुःस्वप्न ने अपना दुःखकारी फल दिखा ही दिया। तो क्या करूँ ? अद्वैत आदि जहाँ हैं वहीं चलूँ (कुछ कदम चलता है)

(तब इस दुःख के विषय में तर्क वितर्क करते हुए अद्वैत आदि प्रवेश करते हैं)

अद्वैत—श्रीवास ! यह क्या रहस्य है ?

हम लोगों के विचार से प्रातः भगवान् अपने घर चले गए थे, माता जी की समझ में श्रीवास आदि के घर में रहे। इस तरह हम लोग भ्रमवश निश्चिन्त रहे। क्या पता था कि आज यह वज्रपात होने वाला है ।।२३।।

श्रीवास—जो लोग उन्हें खोजने भेजे गये हैं उनमें कोई लौट नहीं रहा है ?

अद्वैत—किसी को खोजने से देख न पड़े तभी तो वापस आए। किसी को कुछ पता ही नहीं चला, क्या ऐसा भी हो सकता है ?

इस गाँव में उनका प्रकट होना रोक सकता है ? और

स्वय त्रे भगवान् ही अपने को कैसे छिपा सकते हैं। सूरज को कोई छिपा नहीं सकता और सूरज भी स्वयं अपने को दिन में कैसे छिपा सकता है ?

श्रीवास—(सामने देखकर) यह गङ्गादास आरहे हैं, इनसे पूँछना चाहिये ।।२४।।

गङ्गा०—(निकट आकर) अरे महाशय ! यह अकस्मात् कैसे गड़बड़ हो गई ?

सब—आहा ! यह भी उन्हें खोजता हुआ हम से पूँछ रहा है।

अद्वैत—(आंसू बहाते हुए)

हे हे विश्वम्भर देव हे हे गुणनिध प्रभो,
हे हे प्रेम सागर हे एकबार मान लो।
हे हे प्रभो ! दीनबन्धो हे हे भक्त चितामणे,
कौन अपराधी हमें त्याग रूप कर लो।।
चार ओर अन्धकार करि के जु वहु भाँति,
परित्याग यह प्रभो अनरथ जान लो।
प्राणियों के मन-शून्य करिके वहूधा अहो,
दया के सागर प्रभु उचित न ज्ञान लो ।।२५।।

हे विश्वम्भरदेव ! हे गुणनिधि ! हे प्रेम के सागर ! हे दीनों का उद्धार करने वाले भगवान् ! हे भक्तों को चिन्तामणि! आँखों को अंधा कर, दिशाओं को अन्धकारमय कर, सभी प्राणियों को शून्य मन कर किस अपराध से हम लोगों का त्याग कर रहे हो ? ।।२५।।

मुरारि—हे अद्वैत ! तुम्हारा स्वभाव तो बहुत गम्भीर है अभी कुछ निश्चिन्त न होने पर भी क्यों विलाप कर रहे हो। तुम लोगों के ऐसे कार्य से बेचारी शचीदेवी को तो और बहुत कष्ट होगा।

श्रीवास—मुरारि ने ठीक ही कहा है क्योंकि—

उनके बस वही एक पुत्र है, एक वही आँख है, वही एक सुख की अनुभूति है, उसी को उन्होंने गुरू व देवता मान लिया है, उसके बिना एक भी क्षण जीवित नहीं रह सकती हैं।

इसलिये इस समय उनकी प्राणरक्षा करना हो हमारे लिये ठीक है। अतः हे गङ्गादास! तुम्हारी बात पर वह विश्वास करती हैं तुम्हें वही कहना है जिससे प्राण न छोड़ दें ॥२६॥

गङ्गा०—आपकी जो आज्ञा (प्रस्थान)

गदाधर—(करुण के साथ) हे नाथ!

एक पहर बीता, दो पहर बीते, कई पहर बीत गये, हाय पूरा दिन ही बीत चला। प्राणों के साथ साथ आशा भी टूटने लगी पर आपका कोई समाचार नहीं सुन पड़ा। (मूर्च्छित होता है) ॥२७॥

बक्रेश्वर—हे करुणासिन्धु! हम लोगों को छोड़कर चले जाने वाले थे क्या इसीलिये कल रात को अत्यधिक प्रेम पूरित अनेक मनोहर अनुकम्पाएँ की थीं? कहाँ तुम्हारी वह करुणा और कहाँ इतनी बड़ी उपेक्षा! हे हृदयनाथ! तुम्हारी दोनों ही वस्तुएँ कैसी अलौकिक हैं ॥२८॥ (मूर्च्छित होते हैं)

मुरारि—(दुःखित होकर)

बाहर जो प्रयत्न करके धैर्य धारण करता हूँ उसे अन्दर से उमड़ते हुए आँसू बहा देते हैं। जैसे बार बार बांधने पर भी रेत के पुल को पानी की धारा बहा देती है। (फफक फफक कर रोता हुआ भूमि पर गिर पड़ता है)

श्रीवास—(उसे देखकर) अत्यधिक गम्भीर पर होने भी तीव्र अनुराग के कारण यह अत्यधिक विह्वल हो उठे हैं ॥२८॥

यही होता है—

जल तभी तक स्थिर रहता है जब तक बाँध टूटता नहीं है। बाँध टूट जाने पर तो उसे रोकना कठिन है वह सभी को डुबा सकता है। हे विश्वम्भर हे नाथ! कहाँ हो कहाँ हो? पहले जब मैं मरने जा रहा था तो मुझे क्यों बचाया था? क्या जिलाने के बाद फिर मार डालेंगे? हे प्रभो! तुम्हारी दुर्गम लीला समझ में नहीं आ सकती! क्यों ईश्वर सब लड़कों की तरह खेल ही करते रहते हैं? (रोता है) ॥३०॥

मुकुन्द—आंखों से तुम्हारा मुख क्यों नहीं दिखाई देता है? और क्यों ही कानों से तुम्हारे बचन नहीं सुनाई पड़ते? हे प्राणनाथ! भगवान्! तुम्हारे द्वारा उपेक्षित हम लोगों को यह दुःखमय जीवन लेकर क्या करना?

जगदानन्द—(रोते हुए)

आपके चरण-कमलों के साथ से दूर होकर एक क्षण भी जियेंगे ऐसा मन ही नहीं था, किन्तु हमें लज्जा आ रही है कि हे प्रिय! बिना तुम्हें देखे हुए तब से कई दिनों से जी रहे हैं। (मूर्च्छित होता है) ॥३१॥

दामोदर—हा प्राणनाथ! कहाँ हो?

हे प्राण! तुम अब तक क्यों नहीं चले जा रहे हो, क्यों नहीं अपनी मूर्खता का त्याग कर रहे हो? प्राणनाथ अब अकेले ही विचरण कर रह हैं। अरे! उनके चरण कमलों के पास जाकर प्रेमी लोगों के रास्ते पर चलो। हाय! कुल में दाग न लगाओ। (मूर्च्छित होता है) ॥३३॥

हरिदास—हाय! बड़ा कष्ट है।

अरे ये प्राण यदि प्राणनाथ के साथ ही तुरन्त नहीं चले गये तो फिर जल्दी कभी नहीं जा सकेंगे। करोड़ों धिक्कारों की

कटुता सहन कर रहे हैं फिर भी ये खिन्न नहीं हो रहे हैं, किन्तु मैं इन प्राणों को ढोने से खिन्न हो रहा हूँ। ठीक है। कुछ देर विचार करूँ। यदि वह ईश्वर मुझे देख नहीं पड़ते, और यदि वे करुणा करके मुझे जैसे को देखते नहीं तो बज्र से कठिन तुम हजारों प्राणों को भी मैं उनके चरण कमलों प्राप्ति की इच्छा से क्षण भर में छोड़ दूँगा। (धैर्य धारण कर सोचने लगता है)।।३३।।

विद्यानिधि हे प्रेम! आपको नमस्कार है। तुम्हें क्या कहूँ हाय! तुम कहीं भी निष्कपट रूप से उत्पन्न नहीं होते हो! उन निष्कपट कृपा करने वाले के साथ भी तुम कपट का व्यवहार करते हो। यदि ऐसा नहीं है तो मैं अभी जीवित कैसे हूँ? (भूमि पर गिरकर विह्वल होकर रोता है) ।।३४।।

मुरारि—(धैर्य धारण करके) हे हे! महानुभाव! आप लोग विचारें कि भगवान् अकेले ही गये हैं या कोई साथ में और भी गया है?

अद्वैत—यह कैसे विचारें—

उन गौर-चन्द्र को जाते हुए किसी पथिक ने भी नहीं देखा है, वे तो विजली की भाँति अकस्मात् आँखों से ओझल हो गये हैं ।।३५।।

मुरारि—विचार करने का एक उपाय है।

सभी लोग—कैसे?

मुरारि—अपने लोगों में विचारो कि कौन यहाँ नहीं है?

सभी—इसने बिलकुल ठीक कहा। (आपस में विचार करते हैं)

मुरारि—मैंने जान लिया।

सभी—क्या?

मुरारि—श्रीमान् नित्यानन्द और आचार्यरत्न।

सभी—यह कैसे?

मुरारि—यदि वे दोनों यहाँ होते तो इतने बड़े कष्ट में अवश्य आते।

सभी—(कुछ निश्चिन्त होकर) हमारा जो हो सो हो किन्तु यदि वह अकेले नहीं हैं तो हम लोग कुछ निश्चिन्त हो गये हैं ।।३६।।

अद्वैत—अरे मुकुन्द! तुम यह बात कहकर माता जी को सान्त्वना दो। कहना कि हे माता जी उसकी चिन्ता न करो नित्यानन्द और आचार्यरत्न के साथ किसी काम से गये हैं, आते ही होंगे।

मुकुन्द—जो आज्ञा! (प्रस्थान) ।।३७।।

अद्वैत—हे विश्वम्भर के प्रेमियों! हम लोगों को थोड़ा धीरज मिला है क्योंकि वे दोनों बुद्धिमान उनके साथ हैं उनके साथ रहने से स्वतन्त्र होकर भी भगवान् मनमानी नहीं करेंगे। पता नहीं उनका प्रयोजन था जो ऐसा किया।

यदि तीर्थाटन करना था तो छिपाने की क्या बात थी? उनके साथ सभी लोग चल सकते थे। यदि उन दोनों के प्रति विशेष प्रेम के कारण उनका हित करना था तो वह यहाँ भी हो सकता था। (सब लोग विचार करते हुए चुप बैठते हैं) ।।३८

नेपथ्य में—(हाय बड़ा कष्ट है)

ओह तीन दिन हो गये हैं उन्होंने कोई बात ही नहीं सुनी कि वे सब जीवित हैं, किम्बा मर गये हैं अथवा मूर्च्छित हो गये हैं। मैं भगवान् की वह अवस्था देखकर वापस आगया हूँ। हे विधि! मैं उनके सामने कैसे पहुँचूँ? इसीलिये यहीं ठहर कर शरीर छोड़ने का प्रयत्न करूँ।

सभी—(सुनकर) अरे! आचार्यरत्न की सी आवाज सुनाई पड़

रही है। आँसुओं से कुछ भर्राई हुई है अतः साफ नहीं सुनाई दी (अब ध्यान देकर सुनो)

सभी—(सुनने का अभिनय करते हैं—)॥३९॥

पुनः नेपथ्य में—हाय मैं कितना नीच हूँ जो उनके साथ नहीं चला गया।

अथवा—

राम ! राम ! प्रभु के साथ हठ तो किया नहीं जा सकता है, प्रभु अपनी इच्छा को अपने लोगों के चित्त में प्रवर्तित कर देते हैं। सूर्य अपने तेज को अपनी सूर्यकान्त मणि में प्रकट कर देता है। किन्तु सूर्यकान्तमणि दाह करने वाले भी उस तेज को दूर नहीं कर सकती है।

सभी—(सुनकर) सच में ही यह आचार्यरत्न हैं। मालूम पड़ता है भगवान् को छोड़कर लौट आए हैं, क्योंकि कह रहे हैं कि प्रभु से हठ करना असम्भव है। अहो क्या दुर्भाग्य, दावाग्नि की ज्वाला बड़ी कठिनता से मिली निश्चिन्तता के बीज को भून ही डाला ॥४०॥

मुरारि—ऐसा मालूम होता है कि नित्यानन्द देव साथ में हैं। इन्हें सम्भवतः दूसरे काम से यहाँ भेज दिया गया है।

अद्वैत—इनका यहाँ दूसरा क्या काम होगा ? धन की कोई आवश्यकता नहीं जिसके लिये यहाँ आयेंगे, माता के प्रति भी कोई अधिक ममता नहीं जिसे सान्त्वना देने भेजेंगे, न तो हमीं लोगों का ऐसा सौभाग्य है कि हमें बुलाने पठायेंगे, इसलिये यह सन्देह न करो। अब हमारे दुर्भाग्य के विष-वृक्ष में कौन दूसरा फल लगेगा यह देखना है। (चिन्ता करने लगते हैं) ॥४१॥

पुनः नेपथ्य में—हाय ! बड़ा कष्ट है ! मैं नीच ही हूँ। क्योंकि—

हाय ! मैं उनके पीछे पीछे क्यों नहीं घूमता रहा। उनके उस रूप को देखकर मेरी आंखें ताप से क्यों नहीं जल गईं। प्रभु के "तुम जाओ" ऐसा कहने पर प्राण क्यों नहीं चले गये। हाय विश्वम्भर ! तुम्हारी उस मोहिनी मायाने मुझे ठग लिया।

सभी—(सुनकर) अरे ! हम सब लोग बहुत उत्कण्ठित हैं अभी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब और देर मत करो। (सब उसे देखने लगते हैं) ॥४२॥

(तब आचार्यरत्न प्रवेश करते हैं)

आचार्यरत्न—हाय कहाँ वह सुन्दर साँवले चिकने केश और कहाँ मुण्डन। कहाँ वह सुन्दर कटि-प्रदेश और शिव ! शिव ! कहां वह कौपीन ? (क्षण भर ठहर कर, सोच करके)

ठीक है देखने वालों को ऐसा ही लगता है पर वस्तुतः सभी पदार्थों के आश्रय रूप ज्ञान में सब को स्थिति है। (पक्षान्तर में ज्ञानी-पुरुषों के लिये सब कुछ ठीक है)

सब—(निकट जाकर उत्कण्ठा पूर्वक) बोलो बोलो वे भगवान् कहाँ हैं ?

आचार्य०—अरे ! यह नीच क्या बताये ?

अद्वैत—बताओ तो क्या हुआ ?

आचार्य०—(कान में—) ऐसा।

अद्वैत—हाय ! क्या यह बात हाथ से छिपाने की है ? अतः साफ कहो सभी लोग सुनलें ॥४३॥

आचार्य०—(रोते हुये जोर से)

वे सब कीर्तन, नृत्य और कौतुक की कलायें समाप्त हो गयीं, प्रेम विलास और हास की मधुर बातें अब हृदय में नहीं हैं, उस प्रीति और हाय हाय करुणा की भी अब केवल कहानी रह गई है, तुम्हारे प्रभुने संन्यास लेकर सब का नाश कर दिया।

(सब लोग सुनकर मूर्च्छित हो जाते हैं)

गङ्गादास—(शीघ्रतासे प्रवेश करके) आचार्य ! कहिये ? भगवान् की माता पूँछ रही हैं मङ्गलमय देव कुशल से तो हैं ?

आचार्य०—(आँसुओं से कण्ठ रुँध जाता है, वे खड़े रहते हैं)

अद्वैत—मेरी ओर कह दो—राम का बनवास, कृष्ण का मथुरा जाना एवं इन भगवान् का संन्यास, यह तीनों ही, तीनों माताओं को सहना ही है ॥४४॥

गङ्गा०—उन्होंने पहले हो इसका अनुमान कर लिया था। कहा भी था—

आप लोग क्यों छिपा रहे हैं ? वह तो अपने बड़े भाई के मार्ग पर चला गया है। अलौकिक चरित वाले लोगों की करुणा और कठिनता समान होती है।

अद्वैत—यदि वे इतनी धैर्यशालिनी नहीं होतीं तो वैसा पुत्र कैसे सम्भव था ? (एक क्षण ठहर कर, विचार कर)

ऐसा ही होता है—

संन्यासी, समभाव से युक्त, निष्ठा-एवं शान्ति-परायण इन नामों को आज प्रभु ने सार्थक कर दिया।

और भी—

इन देव भगवान के ही विषय में "तत्वमसि" आदि महावाक्य मुख्य रूप से सिद्ध होते हैं, उनके अर्थ में कोई घट बढ़ नहीं करनी पड़ती है। (पक्ष में—महावाक्य में अर्थ अभिधा से ही निकलता है लक्षणा से नहीं (देखो श्लोक ४९) आचार्य ! आरम्भ से बताओ ॥४५॥

आचार्य—इसीलिये मैं जीवित हूँ। हाँ तो रात समाप्त होने पर जब नृत्य बन्द हुआ तो मेरा हाथ पकड़ कर कुछ कदम चलकर आगे नित्यानन्द देव को देखकर "तुम भी आओ" यह कह उन्हें

भी साथ में ले लिया और गंगा पार करके चल पड़े। मैंने पूछा "प्रभु ! आप अकेले क्यों और कहाँ जारहे हैं ?" उसको अनसुना करके चुपचाप चलते हुए हम दोनों के साथ साथ काटुया नाम के गांव में पहुंच कर यतीन्द्र केशवभारती के पास गये। तब हम दोनों ने मन में विचारा ॥४६॥

यह संन्यास लेने वाले यह जानकर भी प्रभु के तेज से पराभूत होकर कुछ कह नहीं सके। दूसरे दिन भगवान् ने कहा कि आचार्यरत्न ! इस काम की आरम्भ जो किया जाता है बस वह सब कृत्य तुम्हीं करो, तब मैंने कहा कि हे प्रभु ! कौन सा काम। तब प्रभु ने बताया कि मैं ऐसा करने जारहा हूँ। मेरी समझ में कुछ नहीं आया, मैं बस चुपचाप रोने लगा। इसके बाद विना सोचे समझे सब काम मैने कर दिया। जो कुछ हुआ वह वाणी से नहीं कहा जा सकता है ॥४७॥

सब—(सुनकर दुःख के साथ) हे भगवान् यह क्या कर डाला। अथवा प्रभु को क्या दोष देना ? हमारे दुर्भाग्य रूपी वृक्ष का ही यह फल है। आचार्य ! जिनके संन्यास ग्रहण की बात याद करते हो हम लोगों का हृदय फटता है उसे तुम साक्षात् देखकर कैसे जीवित रहे हो। (दुःखित होते हैं)

अद्वैत—हे आचार्य ! संन्यासाश्रम के अनुकूल उन्होंने कौन सा नाम स्वीकार किया है ?

आचार्य—कृष्णचैतन्य ॥४८॥

अद्वैत—वाह यह तो बिलकुल ठीक है।

जो कृष्ण हैं, वही चैतन्य हैं, इसलिये कृष्ण-चैतन्य के साथ से यहाँ 'तत्वमसि' रूप महावाक्य सफल हो गया। (अभिधा से भी)

केशवभारती जी भी केशव की भारती होने के कारण साक्षात् वेद रूप हैं। क्योंकि कृष्ण ने कहा है—मैंने ही सृष्टि के आदि में वेद ब्रह्मा से कहा था, जिसमें मेरी उपासना का वर्णन है"। इस प्रकार केशवभारती जी के द्वारा कहा हुआ "कृष्णचैतन्य" यह नाम मानों साक्षात् वेदों ने कहा है। हाँ आचार्य! तो बताओ क्या भगवान् वहीं हैं या कहीं चले गये।

आचार्य—प्रभु तो संन्यास ग्रहण करके उसी समय चल पड़े थे ॥४६॥

अद्वैत—तुम से कुछ बताया नहीं ?

आचार्य—प्रेमान्ध होकर जगमगाते हुए, आँसुओं के जल से वृक्षःस्थल को धोते हुए, वे तो अपने को नहीं जान पा रहे थे। हम से क्या बताते ?

अद्वैत—आप साथ क्यों नहीं गये ?

आचार्य—नित्यानन्द ने कहा था कि मैं पीछे पीछे जा रहा हूँ, इनको इधर उधर रास्ते में घुमाकर, अनेक प्रकार के प्रयत्न करके अद्वैत के घर ले आऊँगा। तुम जाकर यह सब वृत्तान्त कहकर अद्वैत आदि का मन बहलाओ। इसीलिये मैं इधर चला आया।

अद्वैत—धन्य! नित्यानन्द देव! तुम धन्य हो! तुम्हारी इस निष्कपट मित्रता से मैं कृतज्ञ हो गया हूँ। अतः आओ इस समाचार को देकर देवी शची को धैर्य बँधाकर अपना काम करें। (सब का प्रस्थान) ॥५०॥

॥ इति चैतन्यचन्द्रोदयनाटके कुसुमसरोवरनिवासी कृष्णदास कर्त्तृक अनुवादित संन्यासकरण नामक चतुर्थाऽङ्कः॥

पञ्चम-अङ्क

तब श्रीकृष्णचैतन्य और उनके पीछे श्री नित्यानन्द रंग मंच में प्रवेश करते हैं—

श्री चैतन्य—पूर्ववर्ती महत् लोगों ने जिसको धारण किया है उस परमतत्व की भक्ति धारण करके भगवान् श्रीकृष्ण की चरण-सेवा के द्वारा ही मैं इस दुर्गम अन्धकार रूप संसार को पार कर लूँगा। (लड़खड़ा ने का अभिनय करते हैं)

नित्यानन्द—(मन में) अरे! आश्चर्य है—

प्रेमामृत है तो वैसा ही किन्तु निर्वेद से उत्पन्न खेद रूपी अग्नि से गर्म होकर उबलता हुआ मानो ठोस पिण्ड बन गया है। समय पाकर हृदय में लगे घाव की तरह वह इनको व्यथित करेगा ॥१॥

तो मैं अकेले क्या करूँ। खैर! थोड़ा विचार करूँ। (थोड़ा देखकर)—अहो! आश्चर्य!

जिसमें लगातार तरङ्गें उठ रही हैं, तीव्र उल्लास की हुङ्कार ही जिसका गर्ज्जन है, स्वेद, स्तम्भ आदि नाना भाव ही जिसकी रत्नमालाएँ हैं, जिसके अन्दर बड़ा वेग है ऐसा महान् आनन्द रूपी समुद्र प्रभु के हृदय में उत्पन्न हो गया है, इसका पता नहीं कैसा परिणाम होगा ॥२॥

अरे! तेज हवा से उड़ाये जाने वाले केशर के पराग की तरह महावेग से ये चल रहे हैं। मैं शीघ्रता से इनका अनुगमन नहीं कर पा रहा हूँ। इनकी सभी इन्द्रियों की वृत्ति समाप्त हो गई है। आप बिना किसी लक्ष्य के ही इधर उधर घूम रहे हैं। क्योंकि—

यह रास्ता है कि नहीं यह इनको आँखों से देख नहीं पड़ रहा है। ऊँचा, नीचा, जल,पहाड़ कुछ इन्हें नहीं सूझता। मद से मस्त जंगली हाथी के समान यह न आगे चलते हैं न पीछे ही, और न इन्हें अपना होश है ।।३।।

होता ही है-आत्मानन्द में रमने वालों की इन्द्रिया वृत्ति हीन हो जाती हैं, भक्ति-रस में मग्न लोग भी एक भगवान् के ही रूप में मस्त रहते हैं। यदि यह इस प्रकार निजानन्द में मग्न हो गये तो फिर जीव और ईश्वर में अन्तर ही क्या रह गया ? हाँ समझ गया आनन्द ईश्वर के अधीन है और जीव आनन्द के वश में है। अब मैं क्या करूँ-(क्षण भर ठहर कर) आज तीन दिन हो गये इन्होंने न तो कुछ खाया है न पिया है, और कामों के विषय में क्या कहना ? केवल एक कौपीन-वस्त्र ही धारण कर रखा है आप केवल अपने सुखावेश के अनुसरण में लगे हैं। चलते समय प्रभु को रात या दिन कुछ नहीं सूझता है। हम क्या करें। हे गौराङ्ग ! हे कृपानिधि ! कृपा करो, मुझ दुखिया पर प्रसन्न हो जाओ ।।४।।

(क्षण भर ठहर कर) इससे चित्त कुछ आश्वस्त भी हो रहा है जैसे कि-महाप्रभु का आनन्द के पर वश होना हमारे लिये इस समय जीवन साक्षात् औषधि ही हो गया है, क्योंकि इन्हें रास्ते का ज्ञान नहीं है. घुमाकर इनको श्री अद्वैत के घर ले जा सकूँगा।

नेपथ्य में—"हरि बोल" का कोलाहल सुन पड़ता है।

नित्यानन्द—(सामने देखकर) अरे ! यह तो बड़ा आश्चर्य है कि भगवान् को देखकर यह गाय चराने वाले लड़के बड़े श्रद्धा, कौतुक, आनन्द से चकित होकर हरि बोल हरिबोल यह जोर जोर से कह रहे हैं ।।५।।

भगवान्—'हरि' की ध्वनि सुनकर पहले के अभ्यास के कारण जैसे कोई आनन्द की नींद से जगा हो ऐसे इस प्रकार आँखें खोलकर ध्वनि की ओर देखते हैं ?

नित्यानन्द—(देखकर) अहा ! इन गोपाल बालकों ने बड़ा उपकार किया। क्योंकि इनकी 'हरि बोल' की ध्वनि सुनकर प्रभु कुछ कुछ आनन्द की नींद से उठकर उसी ध्वनि की ओर वेग से हो जा रहे हैं जैसे साँप का डसा हुआ मनुष्य मन्त्र से आकृष्ट होकर विष के नशे से जगकर चलता है।

भगवान्—(समीप जाकर) बोलो बोलो (यह कह बार बार 'हरि' 'हरि' जपते हैं) ।।६।।

(गोपालों का प्रवेश)

बालक—(चारों ओर दण्डवत् करके ताली बजाकर श्रीहरि का कीर्तन करते हैं)

भगवान्—(स्पृहा के साथ सुनते हुए क्षण भर रुक जाते हैं)

नित्यानन्द—(आनन्द के साथ) आनन्द से उत्पन्न उन्माद कई प्रकार का होता है किसी से तो तीव्र चपलता और किसी से तीव्र जड़ता होती है। किसी से चंचलता और जड़ता दोनों ही आती हैं और कुछ बिलकुल ग्रहों से ग्रसे को सी दशा उत्पन्न करते हैं ।।७।।

इस समय तो भगवान् के आनन्दोन्माद को अन्तिम अवस्था होगई है। क्योंकि—

यह आंखें खोल तो देते हैं परन्तु किसी पदार्थ को देखते नहीं हैं, अधबहरे की तरह कुछ सुनते हैं पर उसका अर्थ नहीं ग्रहण करते हैं।

भगवान्—(करकमल से उन बालकों का सिर छूकर) अहो !

भगवान् का नाम तुमने खूब लिया । तुम सब ने मुझे कृतार्थ कर दिया । क्या तुम्हें पता है वृन्दावन कौन रास्ते से जाते हैं ।।८।।

नित्यानन्द—(यह मेरे लिये मौका है उनमें से एक को बुलाकर) बेटे ! वृन्दावन का रास्ता यह है यह इनसे कह दो—

बालक—जो आज्ञा ! (यह कहकर प्रभु के पास जाकर) प्रभु ! यह वृन्दावन का रास्ता है (नित्यानन्द की इच्छानुकूल शान्तिपुर का रास्ता दिखलाता है) ।।९।।

भगवान्—(आनन्द के साथ उसी रास्ते पर चलते हैं)

बालक—(प्रणाम करके प्रस्थान)

नित्यानंद—आहा ! परेशानी से बचा ! अब मेरी इच्छा पूरी होगी क्योंकि इस रास्ते से इन्हें अद्वैत के घर ले जा सकूँगा । (उनके साथ उसी रास्ते पर कुछ चलकर मन में) यह मुझे क्यों नहीं पहचान पा रहे हैं । और दूसरे लोगों को थोड़ा थोड़ा पहचानने से लगे हैं । आओ अपनी भाग्य की परीक्षा करें । (निकट जाकर) ।।१०।।

भगवान्—"इस भगवान् की भक्ति का आश्रय लेकर" आदि फिर कहने लगते हैं । ब्राह्मण भिक्षु ने बहुत अच्छी बात कही है क्योंकि कृष्ण की सेवा से ही मैं संसार से मुक्त हूँगा, केवल परब्रह्म की निष्ठा से नहीं । इस निष्ठा का कार्य केवल विश्वास उत्पन्न करना है, यह निष्ठा लक्ष्य नहीं हो सकता । अतः वृन्दावन जाकर श्रीकृष्ण की मानसी सेवा ही करनी चाहिये । (आकाश की ओर लक्ष्य करके) हा ! वृन्दावन अब कितनी दूर है ?

नित्यानन्द—(निकट जाकर) देव ! एक दिन में वृन्दावन मिल जायेगा ।।११।।

भगवान्—(स्वप्न और जाग्रत की बीच की सी अवस्था प्राप्तकर चकित होकर) अरे क्या श्रीपाद नित्यानन्द हो ?

नित्या०—देव ! हाँ वही (गला रूँध जाता है)

भगवान्—श्रीपाद ! कहो, आप कहाँ से आगये ?

नित्या०—आपका वृन्दावन जाना सुनकर उसे देखने की इच्छा से चलता हुआ आपके साथ हो लिया ।

भगवान्—अच्छा है, बहुत अच्छा ! आओ साथ चलें (आनन्द से चलते हैं)

नित्या०—भगवन् इधर ! (कुछ दूर ले जाकर) यहाँ से निकट ही यमुना जी हैं, अतः स्नान कर लेना चाहिये ।।१२।।

भगवान्—अहा ! आज यमुना का दर्शन करेंगे ?

नित्या०—और क्या ।

भगवान्—(आनन्द के साथ नाचकर) कहाँ है ? कहाँ है ?

नित्या०—इधर ! इधर ! (कुछ दूर ले जाकर, गङ्गा के निकट पहुँचकर) भगवन् यह यमुना जी हैं ।

भगवान्—(आनन्द के साथ प्रणाम कर स्तुति करते हैं)

चिदानन्द-स्वरूप श्री नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की जो सदा ही पर-प्रेम की पात्री रही है, जिसका शरीर द्रवित ब्रह्म रूप ही है, वह पापों का नाश करने वाली, संसार का कल्याण करने वाली सूर्यपुत्री यमुना जी हमारे शरीर को पवित्र करें ।

नित्या०—प्रवेश करिये इसमें—

भगवान्—जैसी तुम्हारी इच्छा । (स्नान करते हैं) ।।१३।।

नित्या०—(मन में) अहो ! बड़ा आनन्द है । यहाँ महामत्त जंगली हाथी मन्त्र से वशीभूत हो गये हैं । अब जो कार्य बाकी है वह भी कर डालूँ । (चारों ओर देखकर किसी को बुलाते हैं) कोई प्रवेश कर प्रणाम करता है ।

नित्या०—(एकान्त में चुपके से) गङ्गा के पार निकट ही भगवान् अद्वैत का नगर है। तुम यहाँ से जल्दी जाकर कह दो नित्यानन्द एक संन्यासी के साथ आये हैं और तुम लोगों को बुला रहे हैं ? जाओ जल्दी करो।

पुरुष—यह लो मैं अभी कहता हूँ (शीघ्रता से प्रस्थान)

नित्या०—(मन में) तीन दिन हुए पानी छुआ तक नहीं। इसलिये लाओ स्नान कर लें। (स्नान करते हैं) ॥१४॥

नेपथ्य में—श्री विश्वम्भर देव के गुणों ने, पुन: दर्शन की आशा रूपी बन्धन से दो गुनी शक्तिवाले होकर हमारे प्राणों को बांध रखा था जिससे विरह से व्याकुल होने पर भी वे छूट नहीं सके। अब यही प्राण उन प्रभु के मुख-कमल का दर्शन कराकर बड़ा उपकार करेंगे। इष्ट के दर्शन प्राप्त होने पर उलटे भी पदार्थ सीधे हो जाते हैं।

नित्या०—(दूर से सुनकर) अरे ! यह तो आचार्य ही कह रहे हैं। अभी तक तो भाग्य ने ठीक ही किया। अब आगे मेरा भार हल्का हो गया है। (प्रभु को देखकर) हाय ! हाय ! ॥१५॥

अहो ! जल की बूंदों के टपकने से जिनका शरीर गीला हो रहा है, अभ्यास न रहने पर लज्जा के कारण जिन्होंने कौपीन के जल को बिना निचोड़े ही अंग में धारण कर लिया है, जिन्होंने लाल कमल की पंखुड़ियों से सिर को ढक रखा है वे सोने के समान वर्ण वाले महाप्रभु स्नान कर निकले हुये हाथी के समान दिखाई देते हैं।

तो देखूँ अद्वैत आदि को आने में कितनी देर है। (सामने देखते हैं) ॥१६॥

तब उत्कण्ठा का अभिनय करते हुए अनेक लोगों के साथ श्री अद्वैत प्रवेश करते हैं)

अद्वैत—(सामने देखकर)—अहो यह देव हैं यह देव !

चोटी न होने से और लाल कपड़ों के होने से यद्यपि यहाँ दूर से वे नहीं मालूम पड़ते हैं तथापि सोने के समान तेज और अत्यधिक लावण्य के कारण वे हम लोगों को वही मालूम पड़ रहे हैं।

अरे बड़ा सुन्दर है—

लाल कपड़े से ढका हुआ सोने के समान पीला देव का शरीर, वैराग्य-तत्व रूपी आम्र-वृक्ष के रस-परिपूर्ण पके हुए फल की शोभा को प्राप्त कर रहा है। (ऐसा कह कर मुद्रित नयन भगवान् के सम्मुख सत्वर उपनीत होकर कंठ भर से रोदन करने लगे) ॥१७॥

भगवान्—(नेत्र उन्मीलित करके) आहा ! ये सब क्या अद्वैताचार्यादि महानुभाव आरहे हैं ?

नित्या०—भगवन् ! वे ही सब हैं।

भगवान्—(गादालिङ्गन करके) हे अद्वैत ! मैं यहाँ हूँ तुमने किस प्रकार जान लिया ? और कैसे मेरे पीछे पीछे वृन्दाबन के लिये आरहे हैं ? अथवा मैं स्वप्न देख रहा हूँ ?

अद्वैत—(अश्रु भरे नेत्रों से मन ही मन चिन्ता करने लगे) अहो! आश्चर्य, इनकी यहाँ ही वृन्दाबन की प्रतीति हो रही है। (प्रकाश्य से) हे देव ! यह स्वप्न नहीं है, यथार्थ में वह पामर अद्वैत मैं हूँ। (ऐसा कह कर भूतल में गिरने लगे)

भगवान—(बाहु से आलिङ्गन पूर्वक उठाकर अश्रु भरे नयनों से) हे अद्वैत ! भगवत्पदों में नित्य संयोग होने के कारण तुम्हीं वृन्दाबन हो। तो बताओ मैं कहाँ आगया हूँ ॥१८॥

अद्वैत—यही भगवतीदेवी गंगा हैं, उस पार यह हमारा गाँव है।

भगवान्—(बाह्यज्ञान का अनुभव करते हुए) श्रीपाद! तुमने तो यमुना बताई थी।

नित्या०—इनमें यमुना जी हैं या नहीं यह तो आप ही जान सकते हैं।

भगवान्—श्रीपाद के नाटक ने ही नचा दिया है।

अद्वैत—हे नाथ! आपके गुण हमारी आशा के पाश से मिल-कर हमारे प्राणों को बांधे हुए हैं।

नित्यानन्द—हे अद्वैत! इनके दण्ड धारण से लेकर अब तक भोजन न करने से मुझे ही दण्ड की प्राप्ति हुई, भगवान् की तो निजानन्द के आस्वादन से ही परम तृप्ति हो जाती थी। इसलिये अधिक बातों का अवसर नहीं है ॥१९॥

अद्वैत—देव को पुनः स्नान कराकर नौकर के हाथों से नया कौपीन और चादर मँगाकर करुणस्वर से पहनाते हैं)

देव! जिन अंगों में पहले देवताओं के से वस्त्र पहनाये हैं, उन्हीं में अब भिखमंगों के से वस्त्र पहना रहा हूँ। आपकी शोभा और मुख की प्रसन्नता यद्यपि समान है किन्तु हम लोगों की दृष्टि में यह असंगत सा लग रहा है।

सो यह हमारा घर अत्यन्त निकट है, आप उसे श्री-चरणों से पवित्र करें।

भगवान्—इसीलिये तो नित्यानन्द ने मुझे धोखा दिया है।

अद्वैत—भगवन्! आपको कोई धोखा नहीं दे सकता, किन्तु कुछ लोगों का कहना है कि—

स्वच्छन्द होकर भी ईश्वर अपनी माया के द्वारा ही प्रकृति के सुख-दुख से प्रभावित होते हैं जैसे निकटस्थ वस्तु के रंग से निर्मल स्फटिक मणि भी रंगीन प्रतीत होता है। इस विषय में हमारा तो यही कहना है कि यह सब अवश्य ही ईश्वर की बाल-क्रीड़ा के समान है ॥२०॥

दोनों ही मतों में आपको कोई धोखा नहीं दे सकता है। श्री की रक्षा करने वाले श्रीकृष्ण को ही श्री कहते हैं, और श्री का आदान करने वाला अर्थात् लाने वाला ही श्रीपाद है। इसलिये श्रीपाद ने आपको यहाँ लाकर अपने नाम को यथार्थ किया है इनका कोई दोष नहीं है। इसलिये आप आगे चलें, आज आपकी पहली भिक्षा मेरे ही घर पर हो।

भगवान्—जैसी इच्छा रास्ता बताओ।

अद्वैत—इधर आइये। (नाव पर चढ़ाते हैं)

नित्यानन्द—हे अद्वैत! किसी को नवद्वीप भेजा है?

अद्वैत—और क्या? सब लोग आते ही होंगे ॥२१॥

भगवान्—अद्वैत जी! आज मैं तुम्हारे घर पहले पहले जा रहा हूँ।

अद्वैत—मेरा सौभाग्य श्रीवास के समान कहाँ जिसके घर में नित्य प्रति विराजते थे।

नित्यानन्द—हे अद्वैत जी! अब यहाँ बड़ी भीड़ होगी, क्योंकि भग-वान् की वार्ता स्वयं ही फैलने वाली है और फिर इनके मथुरा चले जाने की बात फैल चुकी है। अब यह आपके घर की शोभा बढ़ा रहे हैं यह सुनकर सभी आबाल वृद्ध युवक अभी ही इन करुणा-सागर को देखने आवेंगे इसलिये ऐसा होने के पहले ही हमें चुपके से आपके घर में प्रवेश लेना चाहिये।

अद्वैत—ठीक है। (कुछ कदम चलकर) हे देव! यह हमारा घर है, प्रवेश करें।

(सब प्रवेश करते हैं) ॥२२॥

(नेपथ्य में—)

वे बिश्वम्भर भगवान् गौरांगदेव माताजी को धोखा देकर, संन्यासी का वेश धारण कर मथुरा जा रहे थे। नित्यानन्द जी

उन्हें बहाने से शान्तिपुर ले आए हैं। उन्हें देखने चलो, देखने चलो।

नित्यानन्द--(सुनकर सोचकर) हे अद्वैत जी ! सुना !! कुछ ही देर में यहीं के हजारों लोग इकट्टे हो गये हैं। अब थोड़ी देर में लाखों लोग इकट्ठे होंगे कहा नहीं जा सकता इसलिये यहाँ द्वारपाल चाहिये ॥२३॥

अद्वैत—(प्रत्येक द्वार पर द्वारपाल नियुक्त करके देव को आगे कर प्रवेश करने का अभिनय करते हुए प्रस्थान)

(तब भगवान् को देखने के इच्छुक लोग प्रवेश करते हैं)

कुछ लोग—भगवान् नवद्वीप में जिस रूप में हम लोगों के नेत्र गोचर हुए थे यद्यपि उससे भिन्न रूप सब के मन को कष्ट देता है तथापि हम लोगों की उत्कण्ठा बढ़ ही रही है, ठीक है अलौकिक वस्तु मूल-रूप में भी और विकृति-रूप में भी एक ही समान मधुर रस देती हैं।

इसलिये अब पता लगायें कि प्रभु इस समय कहाँ हैं ? (घूमते हैं) ॥२४॥

दूसरी ओर दूसरे लोग—पूर्ण-आश्रम में माधुर्य का इन देव में जो विस्तार था वह तो हम लोगों ने कभी देखा नहीं, यदि इस समय भी उनके दर्शन नहीं होते तो हमारे जन्म, शरीर, प्राण, नेत्र सभी को धिक्कार है।

औरलोग—आओ ! आओ ! भगवान् अभी अद्वैत के घर में प्रविष्ट हुए हैं यह सुना है। इसलिये वहीं प्रवेश करें। (उत्सुकता पूर्वक निकट जाकर) अरे ! यह द्वारपाल सभी को रोक रहे हैं। ठीक है इन्हीं से ही प्रार्थना करनी चाहिये और कुछ भेंट देनी चाहिये (निकट जाकर) ॥२५॥

(तब द्वार पर बैठे बेंतधारी द्वारपालों का प्रवेश)

द्वारपाल—अरे लोगों ! क्षण भर ठहरो! संन्यास ग्रहण करने बाद से अब तक भगवान् ने भोजन नहीं किया है, आज भिक्षा ग्रहण करेंगे अतः कोलाहल न करो। बैठे रहो, भिक्षा-ग्रहण लेने के बाद वे दर्शन देंगे ॥२६॥

नेपथ्य में—भगवन् ! इधर आइये इधर।

द्वारपाल—देखूँ तो। (ऊँचे पर चढ़कर गर्दन ऊँची करके देख कर) अरे भगवान् भिक्षा-ग्रहण कर चुके हैं। क्योंकि—

सोने सा चमकने वाले वक्षःस्थल पर चन्दन का लेप है, नये सुन्दर वस्त्र एवं सफेद माला शोभित हो रही है। ऐसा लगता है मानो बरफ, सन्ध्या की लाली और गङ्गा-प्रवाह से युक्त सुमेरु पर्वत का शिखर हो। किन्तु यह जो दर्शनोत्सुक लोग हैं वे कैसे दर्शन करेंगे। (पुनः देखकर) अरे अद्वैतदेव ने ठीक व्यवस्था की जो ऊँची उपकारिका (चन्द्रशाला) में भगवान् को बैठा दिया है। सब लोग आराम से दर्शन कर लेंगे। इस उपकारिका ने अपना नाम चरितार्थ कर दिया।

पुरुषलोग—(सब लोग मिलकर उत्सुकता पूर्वक 'हरि बोल' गाते हैं) ॥२७॥

(तब उपर्युक्त उपकारिका में बैठे भगवान् और अद्वैत आदि का प्रवेश)

अद्वैत—आपने यह क्या अद्भुत लीला रची है। जो यह आश्रम अद्वैत-वीथी पथिक लोगों का परम इष्ट है उस चतुर्थ संन्यास आश्रम को आपने ग्रहण कर लिया है।

भगवान्—(हँसकर) हे अद्वैत ! याद करो क्या हम अद्वैत सेवा वाले नहीं हैं? तुम में और अद्वैतमें केवल रूप और लिङ्ग(चिन्ह) भेद है। तुम पुरुष हो, वह नपुंसक लिङ्ग है, यह भेद मात्र है।

अद्वैत—आप वाणी के स्वामी हैं। आप से विवाद करना क्या उचित है? ॥२८॥

भगवान्—अच्छा यथार्थ तत्व सुनो। बिना सर्वस्व त्याग के प्राणनाथ श्रीकृष्ण का भजन नहीं हो सकता, इसीलिये मैंने त्याग किया है इसमें अद्वैत की क्या बात है? मन रूपी महान दुर्दान्त पशु के लिये यह शक्तिशाली दण्ड है इसलिये ही मैंने साधारण रूप से दण्ड धारण किया है।

अद्वैत—यह सब केवल बहका रहे हैं। वस्तुतः संन्यासी, शान्त इत्यादि शब्दों के अर्थ को सिद्ध करने के लिये ही आपने संन्यास लिया है।

द्वारपाल—(सामने सब को देखकर) अरे! यह आश्चर्य! इतने अधिक लोगों की दुर्गम ऊँची नीची भीड़ होने पर भी अरब खरब से भी अधिक सब लोग आराम के साथ प्रभु को करुणा से युक्त उनकी दृष्टि को यथेष्ट रूप से प्राप्त कर रहे हैं। मानो बिना किसी कष्ट के यथेच्छ खाली स्थान में स्वस्थ बैठे हों, इसमें कोई विषमता नहीं है, क्योंकि—

जो आज करुणा-कटाक्षों वाले भगवान् का दर्शन कर लिया है सो मानो हम लोगों ने आज संसार-सागर पार कर लिया है, यम का द्वार बन्द कर दिया है, मनुष्य-जन्म मिलने का फल प्राप्त कर लिया है, सारी तपस्यायें कर डाली हैं, इस प्रकार अपने अपने सौभाग्य की सभी प्रशंसा कर रहे हैं ॥३०॥

(नेपथ्य में चारों ओर कोलाहल)

पुरुषलोग—यह देखो भगवान् की जन्मभूमि के रहने वाले सब लोग आरहे हैं, बड़ी भीड़ होने वाली है अतः अब हम लोग चलें। (सब का प्रस्थान)

(तब सब नदिया निवासियों का प्रवेश)

आज हमारी आँखों की अन्धता चली गई, आज सभी दिशाएँ प्रसन्न हैं, जीवन-इच्छा रूपी लतायें जो सूख गईं उनमें आज अंकुर निकल आये हैं, मालूम होता है हमारे नष्ट हुए अन्तःकरण में किसी ने चैतन्य अर्पित कर दिया है जिससे कि आज हमारे चैतन्य रूपी चन्द्र का उदय होने वाला है। (उत्सुकता के साथ निकट पहुँचते हैं) ॥३१॥

अद्वैत—(देखकर) अरे भगवान् की माता शचीदेवी को आगे करके श्रीवास पण्डित आदि सभी मित्र यह देखो आए हैं, और भी बालक, युवा, बृद्ध सभी आए हैं, अधिक क्या कहूँ लगता है यहाँ वही नदिया देश और वही समय उत्पन्न हो गया है।

भगवान्—(शीघ्रता से उतरते हैं)

द्वारपाल—(आदर के साथ प्रवेश कराते हैं)

भगवान्—(माता जी को प्रणाम करते हैं)

माता—(भय, भक्ति, वात्सल्य और संतोष से युक्त होकर आँसू बहाती हुई पुलकित होकर गद्गद कण्ठ से संस्कृत में)—हे पुत्र! यह क्या तुम्हारा वैराग्य है, अथवा स्वानुभूति है, या भक्ति है, या फिर शरीरधारी कोई उत्कृष्ट आनन्द है? कुछ भी हो मैं तुम्हें अपना दुधमुहाँ बालक ही देख रही हूँ, अब मिल गये हो, अब फिर कभी नहीं छोड़ सकती। (उत्सुकता से आलिङ्गन करती हैं) ॥३२॥

श्रीचैतन्य—हे जगज्जननी माता! इससे बड़ा और कोई फल नहीं है, वात्सल्य नामक लता में सभी फल लग सकते हैं, आप तो सारे संसार के प्रति अहेतुक वात्सल्य रखती हैं, लगता है आपके रूप में ही भगवान्ने शरीरधारी क्षमा को भी बनाया है। (पुनः प्रणाम करते हैं)

माता—(पुनः आलिगन करती हैं)
देव—(प्रणाम करते हैं)
अद्वैत—(माता को उठाकर भीतर ले जाते हुए प्रस्थान) ॥३३॥
भगवान्—सभी को उचित विधि से आलिङ्गन, स्पर्श, दर्शन प्रश्न आदि से प्रसन्न करते हैं)
अद्वैत—(पुनः शाघ्रता से प्रवेश करके) अरे ! यहाँ कौन कौन हैं ? सभी बाल, बृद्ध से लेकर चाण्डाल तक जो भी यहाँ आये हैं उन सब को यथाचित सभी सेवा की जाय ॥३४॥

(सुनकर एक मनुष्य "मैं सब कर रहा हूँ" यह कह कर चला जाता है)

अद्वैत—(भगवान् के निकट जाकर)

हे देव ! वही मैं हूँ, वही ये लोग हैं, वही आप हैं, वही इनका प्रेम है, वही आपकी करुणा है, सब कुछ तो वही सुखदायक है, केवल एक रूप ही बदल गया है जिससे दुःख हो रहा है ॥२५॥

भगवान्—अद्वैत ! अद्वैत ! ऐसा न कहो—मैंने शरीर को कृष्ण रूपी अमृत के स्रोत में डाल दिया है। उसकी ऊँची तरंग के वेग से जो जो भी दशा प्राप्त होती है, वह चाहे शुभ हो या अशुभ, उससे मेरा प्रेम बढ़ता हो जाता है। अतः आओ बहुत दिन बाद मिले हुए इन लोगों के साथ एकान्त में बैठें। (सब का प्रस्थान)

॥ इति चैतन्यचन्द्रोदयनाटके कुसुमसरोवरनिवासी कृष्णदास कर्तृक अनुवादित संन्यासकरणनामक पञ्चमाङ्क ॥



षष्ठ अङ्क

(तब रत्नाकर का प्रवेश)

रत्नाकर—आज पता नहीं क्यों मेरी प्यारी गंगा कुछ दुःखी सी दीख पड़ी। तो इसके दुःख का कारण पूँछना चाहिये। (सामने देखकर अरे यह वैसी ही अब भी देख पड़ रही है, तो निकट जाकर पूँछूँ। (निकट जाता है)

(गंगा का प्रवेश)

गङ्गा—हा धिक् ! हा धिक् ! जिसके चरण-कमल से उत्पन्न होने के कारण मेरा इतना बड़ा सौभाग्य है, उन्हीं भगवान् के अंगों का स्पर्श मुझे बहुत दिन तक मिलता रहा इससे बड़ा मेरा और क्या सौभाग्य होगा ? किन्तु उन विश्वभर का पाकर भी पुनः उनसे वियोग हो रहा है इससे बड़ा और दुर्भाग्य भी क्या होगा ? मैं मन्दभागिनी अब क्या करूँ। (चिन्ता करती है)
रत्नाकर—(निकट जाकर) गंगे ! क्यों दुःखित हो रही हो ?
गंगा—आर्यपुत्र ! क्या पूँछ रहे हो ? मैं बड़ी मन्दभागिनी हूँ।
रत्नाकर—कैसे ?
गङ्गा—(संस्कृत में)

जिनके पैरों का धोवन होने से मैं विश्व में अति प्रसिद्ध हूँ, वे ही परम कौतुकी परमेश्वर नित्य स्नान करके मुझे प्रसन्न करते थे, वे ही आज मुझे छोड़ रहे हैं इसी से दुःखी होरही हूँ।

रत्नाकर—जानता हूँ, वे मथुरा गमन से लौटकर इस समय अद्वैत के घर में विराज रहे हैं यह सुना है। तो क्यों दुःखित हो रही हो ?
गङ्गा—हां ऐसा ही है किन्तु दूसरे दिन नदिया से श्रीवास आदि के आने के बाद शचीदेवी के बनाये मधुर अन्न का हास विलास

के साथ भोजन करके उन लोगों के ही साथ बैठे हुए भगवान् कुछ कहने लगे।

रत्नाकर—क्या कहा ?

गंगा—हे अद्वैत आदि सुनो ! क्योंकि माताजी एवं प्रिय मित्र तुम लोगों की आज्ञा से मैं नहीं गया था इसीलिये विघ्न हो गया और मैं मथुरा नहीं पहुँच सका, अतः अब सब लोग आज्ञा दें, मैं अब जाऊँगा।

रत्नाकर—तब फिर ?

गंगा—अब आचार्य अद्वैत ने कहा—

यदि आपको प्रसन्न करने के लिये हम लोग आपको जाने के कह दें तो हम लोगों के प्राण यह सोचकर कि आने वाली विपत्ति और धिक्कार सहे नहीं जा सकेंगे, आपके जाने के पहले ही चले जायेंगे।

रत्नाकर—वाह ! अद्वैत वाह !! उसके बाद ?

गंगा—तब भगवान् प्रेम से फिर बोले-हे अद्वैत आदि ? मैंने जब यह वेश धारण कर लिया है तो फिर अपने देश में अपने मित्रों के साथ रहना उचित नहीं, आप लोग पण्डित हैं, माता भी ज्ञानी हैं, अब इस मेरे शरीर का समाधान आप लोग स्वयं करें, मैं बहुत क्या कहूँ।

रत्नाकर—भगवान् ने ठीक कहा। तब फिर ?

गंगा—तब भगवान् के सभी मित्रों के साथ अद्वैताचार्य शची-देवी के पास जाकर एकान्त में विचार करने लगे।

रत्नाकर—फिर ?

गंगा—इस विषय जब किसी की सम्मति नहीं हुई तो माता ने कहा कि यदि धर्मानुसार दोष लगे तो अपने सुख के लिये, दुष्टों के द्वारा उसकी निन्दा क्यों कराई जाय ? अपना जो कुछ होगा

होगा। अतः जो वे जगन्नाथ पुरी जा रहे हैं वही ठीक है, कभी हाल चाल भी मिल जायेंगे यह तो आशा है।

रत्नाकर—धन्य ! माता, धन्य ! आप देवों की माता देवहूति को भी पीछे छोड़ दिया ! उसके बाद ?

गंगा—तब सभी लोग विवश होकर फिर बोले-हे माता ! यह आपने क्या कह दिया। आपकी बात तो वेदवाक्य के सदृश है अब हम उसका खण्डन नहीं करेंगे।

रत्नाकर—तब उसके बाद ?

गंगा—तब माता जी ने कहा कि हम लोगों का जो भी हो सो हो किन्तु दुष्ट लोग जब इसको दोष देंगे तो असह्य होगा। यदि जगन्नाथ पुरी जाते हैं तो तुम लोग भी बीच बीच में जा सकोगे और मुझे भी समाचार मालूम होते रहेंगे।

रत्नाकर—तब फिर ?

गंगा—तब सब ने आकर माता की बात भगवान् से कही।

रत्नाकर—तब ?

गंगा—तब भगवान् ने हँसकर कहा—जो माता की आज्ञा। तो विदा दो चलें।

रत्नाकर—तब उसके बाद ?

गंगा—तब सब ने कहा कि देव ! कुछ दिन ठहर जाओ आपके चरण कमलों के दर्शन कर लें।

रत्नाकर—तब तब ?

गंगा—तब माता और उन लोगों को प्रसन्न करने के लिये वहां रुक कर, पहले के समान ही, अपनी और अच्युत की मातादि द्वारा बनाया गया भोजन सब के साथ करके चौथे दिन चलने लगे। सब ने विचार कर नित्यानन्द, जगदानन्द, दामोदर और मुकुन्द को साथ कर दिया। तब नदिया वासियों के चले जाने

पर और भगवान् के भी जाने को उद्यत होने पर अद्वैताचार्य खूब रोये, भगवान् भी उनसे बिना कुछ कहे चल पड़े ।

रत्ना०—हाय ! इस समय तो गौड़ाधिपति यवन राजा के साथ गजपति का विरोध होने के कारण आना जाना ही बन्द है, यह केवल चार आदमियों को ही साथ लेकर कैसे जारहे हैं ?

गंगा—(संस्कृत में) आर्यपुत्र ! यह कोई आश्चर्य नहीं है देखो !

जो सारे संसार में अन्तर्यामी है, जो बिना कारण ही मित्र है, जिसका संसार में कोई बैरी नहीं है, उसमे कौन बैर करेगा ? यह देखो ! दोनों राज्यों की चतुर एवं भयङ्कर दोनों सेनाओं के बीच में होकर पांच छः लोगों के साथ महाप्रभु शान्ति पूर्वक निकल गये ।

और भी-गाँव गाँव में अत्यन्त प्रवञ्चक यह जो घाटपाल हैं, और जो जंगलों पर्वतों में घूमने वाले बटमार हैं, वे पथिकों के लिये सब अत्यन्त भयङ्कर होते हुए भी, इन भगवान् को देखते ही रोते हुए गिर गिर कर पृथ्वी पर लोट रहे हैं ।

रत्ना०—ठीक है ! क्योंकि स्वाभाविक रूप से जिनके चित्त देव भावना से पवित्र हैं, भगवान् केवल उन्हीं को ही आनन्दित करते हैं अपितु उनके अलावा नीच लोगों को भी दृष्टिपात के द्वारा पवित्र करते हैं, और मन में भक्तिरस का संचार करते हैं । उसके बाद ?

गंगा—तब, लगातार घमण्डी सामन्त एवं मदमत्त ऊँचे बड़े बड़े हाथी, एवं पैदल चलने वालों के कारण दुर्गम राज-मार्ग को पार करके वनमार्ग पर ही चलने लगे ।

रत्ना०—तब फिर ?

गङ्गा—तब (संस्कृत में)

पूर्वकाल में जब रघुपति श्रीरामचन्द्र जी गहन बन में प्रविष्ट हुए थे तब भयङ्कर शरीर वाले जो व्याघ्र, सिंह, हाथी, भैंसे और गैंड़े, उनके धनुष के भय के कारण भग गये थे, बड़ा आश्चर्य है कि वे सब ही उन (चैतन्य) के माधुर्य रस के एक अंश को प्राप्त कर बिलकुल स्तब्ध खड़े हैं ।

इस प्रकार कुछ दिन बन ही बन चलते हुए, अनेक वृक्ष लता आदि के ऊपर कृपा करते हुए, पुनः राजमार्ग पर आगये ।

रत्ना०—क्यों ?

गङ्गा—(संस्कृत में)

रेमुणा नगर में शोभित, हाथ में मुरली लिये भगवान् की एक पुरानी मूर्ति है, बड़ी श्रद्धा से उसकी वन्दना करने के लिये ही वे राजमार्ग पर आये ।

रत्ना०—प्राचीन मूर्ति का क्या अर्थ ?

गंगा—भगवान् की चतुर्भुजी मूर्ति होने पर भी कृष्ण भक्तों को द्विभुज मूर्ति की ही पूजा करनी चाहिये, यही यह श्रीचैतन्यदेव जी कहते हैं । किन्तु लोग कहते हैं कि चतुर्भुज मूर्ति ही प्राचीन है क्योंकि यह सब कहीं देख पड़ती है किन्तु श्रीकृष्ण की द्विभुजी मूर्ति प्राचीन नहीं है ।

रत्ना०—वे भ्रान्त हैं । कटक आदि स्थान में साखी-गोपाल आदि भी प्राचीन हैं । हाँ फिर ?

गंगा—(संस्कृत में)

इन्होंने भूमि पर दण्ड के समान गिरकर मूर्ति की वन्दना की, मूर्ति ने भी इनकी खूब पूजा की क्योंकि उस मूर्ति से भी मुकुट फिसल कर इनके मस्तक पर आ गिरा ।

रत्ना०—उसके पश्चात्—

गंगा—(संस्कृत में) तब भगवान् ने सप्रेम स्तुति की ।

जिसकी कोहनी कुछ नीची हैं, कन्धे झुके हैं, अग्रभाग कुछ ऊँचा है, तिर्यक् स्थित कलाइयां से जिसका वक्ष:स्थल कुछ ढका हुआ है, जिसकी कान्ति से रत्नकङ्कण शोभित होरहा है, मुख में मुरली वाले श्रीकृष्ण की ऐसी वामभुजा की अपूर्व शोभा है। और भी,

यह दाहिनी भुजा भी क्या मनोहर शोभा धारण कर रही है। आकुञ्चित कफोणियों से माधुर्य की धारा नीचे बहकर मानों पृथ्वीतल को सींच रही है।

रत्ना०—फिर ?

गंगा—पुन: वन मार्ग प्राप्त कर साखी गोपाल के दर्शन करने कटक राजधानी गये।

रत्ना०—अरे वह तो देखते ही बनते हैं—वह तो मूर्ति के आकार में साक्षात् भगवान् ही हैं, क्योंकि—एक ब्राह्मण ने साक्षी देने के लिये उनसे प्रार्थना की थी, भगवान् अपने चरण कमल में स्थित नूपुरों को मधुर स्वर में बजाते हुए उसके पीछे पीछे चल रहे थे। महेन्द्र देश तक आकर, उस ब्राह्मण ने गर्दन घुमाकर पीछे देखना चाहा। तो प्रभु वहीं मूर्ति के रूप में होकर स्थित हो गये।

बहुत बाद में फिर गजपति महाराज श्री पुरुषोत्तम देव ने उसे लाकर अपनी राजधानी में स्थापित कर दिया।

गंगा—ऐसा ही है—

रत्ना—उसके बाद ?

गंगा—तब गौराङ्गदेव उन साखी गोपाल के दर्शन करते हुए कुछ देर खड़े रहे, उन्हें लगा कि मानों वे स्वयं ही हृदय से निकल कर बाहर सामने खड़े हो फिर अन्दर प्रविष्ट हो रहे हैं। (संस्कृत में) कुछ स्तुति भी की—

पूतनारि का चरण रूपी कमल हमारी रक्षा करे। उस चरण कमल की लाल चिकनी अंगुलियाँ कमल की पंखुड़ी हैं, मदमत्त गोपियों के स्तनों की कुंकुम ही जिसका पराग है, ज्ञान ही उसका मधु है, नख की मणि की कान्ति उस कमल की केशर है, जङ्घाएं ही उस कमल की नाल हैं ॥२३॥

रत्नाकर—उसके बाद ?

गंगा—तब सब ने यह देखा।

रत्नाकर—क्या देखा ?

गंगा—(संस्कृत में)—वंशी बजाते हुए भी श्रीकृष्ण ने वंशी को थोड़ा सा होठों से हटाकर, बड़ी श्रद्धा के साथ इनके साथ बात करते हुए से देख पड़े ॥२४॥

रत्नाकर—तब फिर ?

गंगा—फिर उस दिन वहीं बिता कर दूसरे दिन पुण्डरीक जगन्नाथ जी के दर्शन करने हैं यह सोचकर बड़ी उत्सुकता से हृदय चञ्चल हो गया और वे शीघ्र ही चल पड़े।

रत्नाकर—उसके पश्चात्—

तब कमलपुर नामक गाँव में पहुँच कर नदी में स्नान कर जगन्नाथ जी का मन्दिर देखने श्रीप्रभु आगे आगे चले। नित्यानन्द देव ने अपने हाथ में स्थित देव के दण्ड को "अत्र इसका क्या काम" यह सोचकर उसे तोड़कर नदी में फेंक दिया ॥२५॥

रत्नाकर—इसके बाद ?

गंगा—इसके बाद मुकुन्द ने जगन्नाथ जी का मन्दिर देख करके भगवान् से कहा—देव! देखो देखो! क्या पृथ्वी ने सूरज को खींचने के लिये यह भुजा उठाई है? या सत्य लोक जाने को पाताल से शेष नाग जी निकले हैं, या फिर नागों की फणों की

मणियों की तेजो राशि आकाश को जा रही है, नहीं यह तो प्रभु जगन्नाथ जी का दिव्य मन्दिर शोभित हो रहा है ॥२६॥

रत्नाकर—मैं सब समझ गया ! इससे आप दुःखित क्यों हो रही हैं, मेरे सौभाग्य से आप भी सौभाग्यवती हैं देखो—

जिसके लिये मैं बाँधा गया, और उसका पिता हूँ यह सोच कर प्रभु ने मेरी ओर कभी ध्यान भी नहीं दिया, अहो मेरा कैसा सौभाग्य है कि उस प्रियतमा लक्ष्मी को त्याग कर श्री भगवान् आज मेरे तट के वासी हो गये । इस से आओ निकट जाकर देखें ।

गंगा—जैसी आपकी इच्छा ! (दोनों का प्रस्थान) ॥२७॥

(प्रवेशक)

(तब परम आवेश में स्थित भगवान् और उनके चारों ओर नित्यानन्द आदि का प्रवेश)

भगवान्-जो गगनचुम्बी होकर भी संसार के हृदय में प्रविष्ट हो गया है, स्थूल होकर भी सभी के नेत्रों में विराजमान है, जो पत्थर से बना होने पर भी रस बरसाने में समर्थ है, वह यह भगवान का मन्दिर सामने देख पड़ रहा है । (उत्सुकता से टहलते हैं)

सब—अहो यह रास्ता एक हो मुहूर्त में समाप्त होने वाला है फिर भी इनके लिये वह बहुत बड़ा हो रहा है । इस विषय में क्या उपाय किया जाये ? भगवान् लीला-पर्वत के चन्द्र हैं उनका दर्शन तो केवल सेवकों को ही सुलभ है दूसरों को सम्भव नहीं, विशेष तौर पर हम परदेसियों को तो बिलकुल दुर्लभ है। बिना किसी राजपुरुष की सहायता के सुलभ नहीं हो सकते ॥२८॥

मुकुन्द—उपाय है ।

दूसरे लोग—कौन सा ?

मुकुन्द—यहाँ विशारद के दामाद सार्वभौम के बहनोई और इन भगवान् चैतन्यदेव के परम-मित्र श्री गोपीनाथ आचार्य हैं, वे भगवान् के नदिया के समाचार से परिचित हैं ।

दूसरे लोग—तो उससे क्या ?

मुकुन्द—वे सार्वभौम के द्वारा सब काम करा सकते हैं ।

सब लोग—(प्रसन्न होकर) अच्छा बताया । तो पहले उनका घर खोजा जाय । (घूमते हैं) ॥२९॥

(तब गोपीनाथाचार्य प्रवेश करते हैं)

गोपीनाथाचार्य —(मन में)

मेरी दाहिनो आँख फड़क रही है, मेरा मन आज अति शान्त और प्रसन्न है, अतः आज ईश्वर के दर्शन से क्या कल्याण होने वाला है पता नहीं । (जगन्नाथ जी के दर्शन के लिये घूमता है) ॥३०॥

मुकुन्द--अरे ! यही तो गोपीनाथाचार्य हैं ।

नित्या०—मुकुन्द ! जल्दी करो कहीं वे मन्दिर के द्वार में प्रविष्ट न हो जांय ।

मुकुन्द—(वही करता है)

गोपी०—(सामने देखकर) अरे ! यह कौन है ? कोई गौड़ीया ही होगा (देखकर) अरे यह तो नदिया वासी है (पुनः देखकर) अहा ! यह तो भगवान् विश्वम्भर के प्रिय सेवक मुकुन्द है । शकुन सफल होगये (निकट जाकर) अरे ! मुकुन्द हो ॥३१॥

मुकुन्द—आचार्य ! प्रणाम ।

गोपी०—भगवान् कुशल से हैं ?

मुकुन्द—श्री प्रभु-चरण यहीं आगये हैं ।

गोपी०—(सानन्द) क्या कहा ? कहाँ हैं ? (आलिङ्गन करता है)

मुकुन्द—(उनको साथ लेकर आता है)

गोपी०—(सामने देखकर) यह मुनिराज कौन है ?

मुकुन्द—(सब बताते हैं)

गोपी०—(आश्चर्य से) जो पहले केवल प्रेमरस में मग्न थे वे अब वैराग्य-रस में भी मग्न हो गये हैं। फिर भी आँखों को वही सुख मिल रहा है क्योंकि चित्त में यह मधुर रूप एवं अम्लरूप मिश्रित होकर एक रूप में आस्वादित होरहा है।

मुकुन्द—(निकट जाकर) हे देव ! श्री जगन्नाथ देव जी ने ही आपका स्वागत करने के लिये प्रतिनिधि रूप में श्री गोपीनाथाचार्य को भेजा है ।।३२।।

भगवान्—(जगते हुए से) कहाँ है ? कहाँ है ?

गोपी०—यह हूँ (चरणों पर गिर पड़ता है)

भगवान्—(आलिङ्गन करते हैं)

गोपी०—श्री नित्यानन्द को प्रणाम करके दामोदर और जगदानन्द को प्रणाम करते हैं।

मुकुन्द—आचार्य ! भगवान जगन्नाथ के विना बाधा एवं इच्छानुरूप दर्शन कैसे हों ?

गोपी०—यदि सार्वभौम का इतना सौभाग्य हो (अर्थात् यदि यह भगवान् सार्वभौम पर कृपा करें) तो हो सकते हैं।

सब—तब स्वयं देव से कहा जाय।

गोपी०—स्वामी ! सार्वभौम से बातचीत किये बिना भगवान् जगन्नाथ के दर्शन असम्भव है यह हमारी समझ में आरहा है, आपकी क्या इच्छा है ?

भगवान्—आपकी इच्छा ही हमारी इच्छा है।

गोपी०—तब तो सार्वभौम का पुण्य सफल हो गया। हे देव ! तो आप इधर से होकर चलें।

भगवान्—मार्ग दिखाओ।

गोपी०—इधर ! इधर ! (सभी घूमते हैं) ।।३३।।

(तब अध्यापन करते हुए भट्टाचार्य का शिष्यों के साथ प्रवेश)

अरे यहाँ कौन है ? पता लगाओ श्री जगन्नाथ की मध्यान्ह धूप हो गई या नहीं।

गोपी०—यह भट्टाचार्य का पढाना समाप्त हो गया। अब अन्दर चले जायेंगे इसलिये शीघ्र जाऊँ। (सोचकर) भगवान् यहीं एक क्षण विश्राम करें। मैं अभी आया। (जल्दी से पहुँचकर) हे ! भट्टाचार्य ! कोई महानुभाव आये हैं जाकर ले आओ।

सार्वभौम—कितनी दूर में हैं ? ।।३४।।

गोपी०—निकट ही।

सार्व०—उठकर चलते हैं, शिष्य अनुगमन करते हैं।

नित्या०—अरे ! यह सार्वभौम भट्टाचार्य स्वयं आरहे हैं तब तो सब ठीक हो ही जायेगा।

भट्टा—(निकट जाकर) नमो नारायण (प्रणाम करता है)।

भगवान्—कृष्ण में रति हो, कृष्ण में मति हो।

सार्व०—(मन में) यह तो अद्भुत आशीर्वाद है। यह अवश्य ही वैष्णव होंगे।

शिष्य—(हँसते हैं)

सार्व०—स्वामी जी इधर (भगवान् को ठीक से बैठाकर स्वयं बैठते हैं, ।।३५।। (सभी बैठते हैं)

सार्व०—यह पूर्वाश्रम में गौड़ीय थे ?

गोपी०—यह नवद्वीप के निवासी नीलाम्बर-चक्रवर्ती के नाती जगन्नाथ मिश्र पुरन्दर के पुत्र हैं।

सार्व—(स्नेह तथा आदर के साथ) अहो! नीलाम्बर-चक्रवर्ती मेरे पिता के गुरुभाई थे, मिश्र पुरन्दर का मेरे पिता जी खूब सन्मान करते थे।

गोपी०—सुलभता से श्री जगन्नाथ जी का दर्शन ही इनका लक्ष्य है।

सार्व०—वह सब प्रकार से होगा। अरे यहाँ कौन है? चन्दनेश्वर को बुलाओ।

(प्रवेश करके चन्दनेश्वर भगवान् को प्रणाम करके अपने पिता को प्रणाम करता है)

सार्व०—चन्दनेश्वर! श्री चरणों के पीछे पीछे जाओ। जिस प्रकार ये प्रतिदिन आराम से श्री जगन्नाथ जी का दर्शन कर सकें वैसी व्यवस्था सभी को करनी है जिससे कोई रोक टोक न करे, यह हमारे पूज्य हैं।

चन्द०—जो आज्ञा।

सार्व—स्वामी जी! उठें।

भगवान्—नित्यानन्द आदि के साथ चन्दनेश्वर को लेकर निकल जाते हैं) ॥३६॥

सार्व—आचार्य! ठहरिये।

गोपीनाथ—(निकलते वापस आकर मुकुन्द को हाथ से पकड़ लाते हैं।)

सार्व—इन्हें देखकर स्नेह, शोक एवं तरलता उत्पन्न होगई है। नीलाम्बर-चक्रवर्ती के सम्बन्ध से यह मेरे अत्यन्त स्नेहास्पद हैं। इतनी कम आयु में इन्होंने संन्यास कैसे ले लिया। इनको महामन्त्र किसने दिया है?

गोपी—श्री केशवभारती ने।

सार्व—अरे! यह भारती-सम्प्रदाय में क्यों प्रविष्ट हुए? ॥३७॥

गोपी—इनको बाहरी भेदों से कोई मतलब नहीं केवल त्याग में ही इनकी रुचि है।

सार्व—बाहरी क्या?

गोपी—यही सम्प्रदाय की उन्नति आदि।

सार्व—आचार्य! यह ठीक नहीं कहा। आश्रम की उज्ज्वलता कभी बाह्य नहीं हो सकती।

गोपी—केवल गौरव सूचक होती है यही बाह्य है।

सार्व—गौरव होने से क्या दोष है? मैं तो यही कहूँगा कि किसी मुख्य-सम्प्रदाय के संन्यासी से पुनः योगपट्ट ग्रहण कराकर एवं वेदान्त सुनाकर शुद्ध कर लेंगे।

गोपी—(ईर्ष्या के साथ) इनकी महिमा आप नहीं जानते, मैंने जो कुछ देखा है उससे अनुमान करता हूँ कि यह साक्षात् ईश्वर ही हैं।

मुकुन्द—(मन में) वाह आश्चर्य! वाह! सार्वभौम की वाणी से जले हुए मेरे प्राणों को तुमने ठंडा कर दिया।

शिष्यगण—किस प्रमाण से पता चला कि यह ईश्वर हैं ॥३८॥

गोपी—ईश्वर की कृपा से प्राप्त विशेष ज्ञान से ही जानने योग्य ईश्वरतत्व का ज्ञान लौकिक प्रमाण से नहीं हो सकता है। क्योंकि वह तत्व अलौकिक है।

शिष्य०—यह तो शास्त्रानुकूल नहीं है। अनुमान से ईश्वर की सिद्धि क्यों नहीं हो सकती है।

गोपी—अनुमान से "ईश्वर है" यह सिद्ध होता है यह तो ठीक है, किन्तु उसका ईश्वरत्व रूप सिद्ध नहीं हो सकता है, वह तो ईश्वर की कृपा से उपलब्ध-ज्ञान के द्वारा ही जाना जा सकता है।

शिष्य०—यह कहाँ देखा है?

गोपी—पुराणों के वाक्य में ही—

शिष्य०—पढ़िए—

गोपी—सुनो—हे देव ! तुम्हारे दोनों चरण-कमलों की थोड़ी कृपा से जो अनुग्रहीत होता है वही भगवान् की महिमा का ज्ञान कर सकता है, अन्य कोई एक भी खोजकर नहीं जान सकता है। यहाँ खोजकर का अर्थ है शास्त्रीय विधि से।

शिष्य०—तो क्या शास्त्र पढ़ने में उनकी कृपा नहीं होती?॥३९॥

गोपी—अगर होती तो ऐसी बात क्यों कहते।

शिष्य०—तब फिर आपने व्यर्थ ही इतने दिन पढ़ा।

गोपी—वह तो एक शिल्प मात्र है।

सार्वभौम—(हँसकर) तुम पर उनकी करुणा हो गई है। अतः उनका तत्व भी तुमने जान लिया है अब हम लोगों को भी कुछ बताओ।

गोपी—वह बताया नहीं जा सकता है, केवल उसका अनुभव किया जा सकता है। यदि उनकी कृपा होगी तो आप स्वयं अनुभव कर लेंगे।

शिष्य०—(अपने मनमें) अरे ! आचार्य इनके साथ क्यों असङ्गत बात कर रहे हैं ? ऐसा प्रतीत होता है कि बहनोई समझकर परिहास कर रहे हैं ॥४०॥

गोपी—भट्टाचार्य ! आपने इन ईश्वर के विषय में जो थोड़ी असंगत बातें कहीं इसी से मैंने कुछ बातें कह दीं। अन्यथा आप लोग बड़े गम्भीर हैं, ईश्वर तत्व के विषय में इस प्रकार ऊटपटांग कहना आपको शोभा नहीं देता है। अथवा इसमें आपका दोष नहीं है—

जिनकी माया-शक्ति से मोहित होकर बादी एवं विवादी-गण नाना प्रकार के तर्क करते हैं, मैं बस उन असीम गुणवाले सर्वव्यापक परमेश्वर को प्रणाम करता हूँ।

सार्व०—समझ गया तुम वैष्णव हो।

गोपी०—(विनय के साथ) भगवान्‌की कृपा होने पर आप भी हो सकते हैं।

सार्व०—अब और ज्यादा विस्तार न करिये। आप जायें। भगवान् के दर्शन के बाद मेरी मौसी के घर गणों के सहित अपने ईश्वर को ठहराओ। हमारी ओर से उन्हें प्रसाद पाने का निमन्त्रण देना।

गोपी०—जो आज्ञा !

सार्व०—तो मैं दोपहर के कार्यों के लिये जा रहा हूँ। (शिष्यों के साथ प्रस्थान)

गोपी०—मुकुन्द ! आओ (घूमकर) मुकुन्द ! भट्टाचार्य के वाग्-बज्र अब भी हृदय में चुभ रहे हैं। जब परम कारुणिक विश्व-म्भर उसे निकाल देंगे तभी शान्ति मिलेगी।

मुकुन्द—उन भगवान् के लिये क्या असम्भव है।

गोपी०—तो आओ भगवान् जगन्नाथदेव के दर्शनार्थ गये हुये देव के पास चलें। (प्रस्थान)

(नेपथ्य में—)

आहा ! क्या आश्चर्य है। सुन्दर भ्रमर युगल से सुशो-भित कमल भाँति सुन्दर जिनके नेत्र हैं, हिंगुल-रस से सींचे हुए शुक्लपक्ष की चतुर्थी के चन्द्रमा की भाँति जिनका अधर है और जिनका श्री अङ्ग अत्यन्त मनोहर है, वे यह दारु-ब्रह्म उदय हो रहे हैं। इनके श्रीअङ्ग की शोभा से इन्द्रनील मणि के दर्पण की शोभा पराजित हो गयी है।

गोपी०—आहा ! जैसा कि यह नित्यानन्द आदि प्रभु के सेवक वर्णन कर रहे हैं इससे पता चलता है कि इन्होंने श्री जगन्नाथ जी का दर्शन कर लिया है।

(पुन: नेपथ्य में—)

परस्पर एक दूसरे को देखने अनुराग से रंगे हुए हैं, दोनों के नेत्र निर्निमेष हैं, सारा अंग निस्पन्द है, ऐसे यह दोनों, श्री जगन्नाथ जी एवं महाप्रभु जी अत्यन्त शोभित हो रहे हैं। दारु रूपी परब्रह्म नर शरीरधारी परब्रह्म में लीन हो रहे हैं या नरब्रह्म ही दारुब्रह्म में लीन हो रहे हैं, पता नहीं चल रहा है।

गोपी०—बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा ! एक ही भगवान् आस्वाद्य और आस्वादक रूप से मानों दो रूपों में स्थित हैं।

(पुन: नेपथ्य में)

दोनों ही अत्यन्त कारुणिक हैं, दोनों ने ही संसार के उद्धार के लिये जन्म लिया है और लोगों को दर्शन दे रहे हैं। इन दोनों में एक ही भेद है कि एक के हृदय में नन्दतनय श्री-कृष्ण विराजमान हैं और दूसरे अन्दर दारु ब्रह्म ।।४४।।

गोपी०—वाह ! हे नित्यानन्द वाह ! तुम महाप्रभु के तत्व को जानते हो। तो मालूम होता है यह लोग दर्शन करके लौट रहे हैं अत: हम दोनों को भी शीघ्र ही दर्शन करके इनके साथ पहुँच जाना चाहिये। (दोनों का प्रस्थान) ।।४५।।

(तब जगन्नाथजी के दर्शन के आनन्दसे नेत्र बन्द किये हुये महाप्रभु और नित्यानन्द आदि)

चन्द०—हाँ आप लोगों का सुख पूर्वक भगवान् का दर्शन समाप्त हो गया ?

नित्यानन्द आदि—हाँ इच्छानुकूल पूरा हो गया है।

चन्द०—(मन में) अरे ! गोपीनाथाचार्य जी को कैसे देर हो रही है ? अब क्या करूं पिता जी ने कुछ कहा तो था नहीं। हो सकता है गोपीनाथाचार्य जी से कहा होगा पर पता नहीं वे अभी तक क्यों नहीं आये ? (सब ओर देखता है) ।।४६।।

(तब जल्दी जल्दी मुकुन्द के साथ आचार्य प्रवेश करते हैं)

आचार्य—आओ ! मुकुन्द ! आओ यह देखो वे लोग जारहे हैं। दोनों बातें ही हो गयीं। श्री जगन्नाथ जी के दर्शन हो गये और महाप्रभु जी के भी दर्शन हो गये। (शीघ्रता से निकट जाकर) चन्दनेश्वर ! तुम यहाँ से घर जाओ, अब मैं ही सब कर लूँगा।

चन्द०—जैसा आप कहें।(भगवान् को प्रणाम कर प्रस्थान)।।४७

दामोदर—हे भगवन् ! आचार्य प्रणाम कर रहे हैं।

भगवान्—(जगते हुए से) आओ आओ ! (आलिङ्गन करते हैं)

गोपी०—देव ! भट्टाचार्य ने सभी साथियों के साथ आपको निमन्त्रित किया है, अत: इधर आएँ। (पूर्वोक्त स्थान पर पहुँचाकर भगवान के पैर धोने से लेकर दातून तक सभी सेवा करके भिक्षा के पश्चात् बैठे हुए भगवान् से आप दु:खित होकर बोले) देव ! भट्टाचार्य ने एक और भी निमन्त्रण दिया है।।४८।।

भगवान्—वह क्या ?

गोपी०—किसी साम्प्रदायिक संन्यासी के पास से योग पट्ट दिला कर वेदान्त सुनवायेंगे।

भगवान्—बड़ी दया है, तो ठीक है ऐसा ही करूँगा।

मुकुन्द—तभी से लेकर आचार्य का हृदय भट्टाचार्य की वाणी की चिनगारी से जल रहा है, उन्होंने तो महाप्रसाद भी ग्रहण नहीं किया है ।।४९।।

भगवान्—मैं बालक हूँ, यदि वे मेरे प्रति स्नेह करते हैं तो तुम दु:खी क्यों होते हो ?

गोपी०—भगवन् ! आप यदि मेरे हृदय से यह काँटा निकाल देंगे तभी मैं जीवित रहूँगा (रोने लगता है)

भगवान्—श्रीकृष्ण तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे। दामोदर ! इनको प्रसाद सेवन कराओ।

दामोदर—जो आज्ञा (उन्हें लेकर बाहर जाता है) ॥५०॥

भगवान्—जगदानन्द ! ऐसा प्रयत्न करो जिससे प्रातःकाल श्री-जगन्नाथ जी के शय्यात्याग का दर्शन हो सके ।

(आचार्य के साथ दामोदर का प्रवेश)

दामोदर—आज्ञानुसार इन्हें प्रसाद ग्रहण करवा दिया है । यह यहीं पर सोना चाहते हैं ।

भगवान्—बहुत अच्छा ! (सभी लोग कथा-वार्ता कर समय बिताते हैं) ॥५१॥

(नेपथ्य में पाणिशङ्ख की ध्वनि होती है)

सब—अरे ! रात्रि का केवल एक प्रहर शेष है । क्योंकि सोकर उठी हुई पुर-देवी के आभूषणों की ध्वनि के समान, या कहो जगन्नाथ जी के मन्दिर रूपी हाथी के गर्जन के समान और परम कारुणिक जगन्नाथ जी को सब को बुलाने वाली ध्वनि के समान यह मधुर पाणिशङ्ख को ध्वनि आ रही है ।

भगवान्—अरे ! सच ही रात्रि समाप्त हो गई है । आचार्य ! आओ साथ ही भगवान् का शय्योत्थान दर्शन करें ।

गोपी०—जो आज्ञा ! (समयोचित कार्य के लिये प्रस्थान) ॥५२॥

(जल्दी से प्रवेश करके) कोई—अरे यहाँ कौन है ? पता है गोपीनाथाचार्य कहाँ है ?

(आकाश की ओर देखकर) क्या कहा—आचार्य श्रीकृष्ण-चैतन्य देव के पास । ठीक है वहीं जाता हूँ । (कुछ चलकर, सामने देखकर) अरे ! यहीं आचार्य होंगे, (निकट पहुँचता है) ।

(तब आचार्य प्रवेश करते हैं)

आचार्य—अरे ! भगवान् के शय्योत्थान का समय लगभग हो गया है अतः महाप्रभु जी को जल्दी करावें ।

पुरुष—(निकट जाकर) आचार्य ! भट्टाचार्य कहते हैं कि श्री-

कृष्णचैतन्य जिससे शय्योत्थान ठीक से देख सकें उसकी व्यवस्था साथ में रहकर तुम्हीं करो ।

गोपी०—आज्ञानुसार ही करूँगा । (महाप्रभु को जल्दी कराने निकट जाता है) ॥५३॥

(तब अनुचरों के सहित देव प्रवेश करते हैं)

देव—मुकुन्द ! देखो ! आचार्य को क्या देरी है ?

गोपी०—मैं तो बस आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।

भगवान्—तो आगे चलो ।

आचार्य—(आगे चलकर) भगवन् इधर आइये । (प्रवेश करके) एवं मन्दिर में पहुँचकर) देव ! देखिये । रात्रि के समाप्त हो जाने पर बड़े बड़े दरवाजों के खुलने के कारण मानो मन्दिर से अपूर्व सुगन्ध बाहर निकल रही है । लगता है यह भगवान् का मन्दिर नींद टूटने पर आलस्य के कारण जोर से मुँह खोलकर जम्हाई ले रहा है जिससे अपूर्व सुगन्ध निकल रही है ।

और देखिये—कितना आश्चर्य है ? दीपक के अभाव में गहरी गम्भीरका के अन्धकार में भगवान् के दोनों नेत्र ऐसे शोभित हो रहे हैं मानों जमुना में भौरों से युक्त हवा में झूमते हुए दो कमल हों ॥५४॥

भगवान्—(गरुड़स्तम्भ के पीछे खड़े होकर स्पृहा से देखते हैं) ।

मुकुन्द—आचार्य ! देखो देखो ! क्षणमात्र गम्भीरिका के गर्भ में चारों ओर दीपक जल पड़े, देखो श्री महाप्रभु की आँखों से बहते हुए आँसुओं के प्रकाश से तिरस्कृत होकर ऐसे लग रहे हैं मानो वे केवल दीपक के चित्र हों ।

गोपी०—हाँ देखो—पहले मुख-प्रक्षालन, फिर तैल-मर्दन, स्नान, उसके बाद अंगों में आभूषण पहनना, उसके बाद बाल-भोग की लीला, उसके बाद यह मनोहर हरिवल्लभ भोग लग रहा

है। देखो प्रातःकाल पूजा में धूप नामक पूजा विशेष-रूप से होती है ।।५५।।

भगवान्—(आनन्द से पुलकित और विह्वल होकर, आँखों में आँसू भरकर देखने लगे।

आचार्य—हे जगदानन्द आदि मित्रो! यह देखो प्रातःकालीन धुप नामक विशेष पूजा का थोड़ा प्रसादान्न लेकर और एक दूसरा माला लेकर एक साथ आरहे हैं। यह क्या महाप्रभु को देंगे। इनसे किसने कहा? लगता है जगन्नाथदेव जी ने ही पठवाया है।

(दो पार्षदों का प्रवेश)

दोनों पार्षद—(श्रीकृष्णचैतन्य के निकट आते हैं और भगवान् माला प्रसाद देखकर स्वयं निकट जाकर प्रणाम करते हैं)

(एक माला देता है)

भगवान्—आंचल फैलाते हैं।

(दूसरा—प्रसाद देता है)

भगवान्—(प्रसादान्न लेकर, श्रीजगन्नाथ जी को प्रणाम करके सिंह के समान तेजी से निकल जाते हैं) ।।५६।।

सब—अरे! यह क्या हुआ? महाप्रभुजी अकस्मात् कैसे निकल गये? तो आओ देखें यह कहाँ जाते हैं?

(बाहर निकलकर कुछ चलकर सामने देखकर)

अरे! भगवान् ने निवासस्थान का मार्ग छोड़ दिया।

गोपी०—(देखकर) हे दामोदर आदि! देव सार्वभौम के घर की ओर गये हैं, लगता है भट्टाचार्य के पुण्य-वृक्ष में फल लगे हैं। दामोदर और जगदानन्द देव के साथ जाओ। मैं मुकुन्द के साथ निकट ही हूँ।

दोनों—जैसी आपकी इच्छा (प्रस्थान) ।।५७।।

गोपी०—मुकुन्द! आओ! सार्वभौम के दूसरे कमरे में रुकें। (वैसा करके, सामने देखकर) यह देखो सार्वभौम के दो नौकर आश्चर्य के साथ इधर ही आ रहे हैं, सो छिप कर खड़े हो जायँ! (द्वार के पीछे खड़े हो जाते हैं) ।।५८।।

(दो नौकरों का प्रवेश)

एक—अरे! यह संन्यासी मोहन-मन्त्र जानता है जिससे भट्टाचार्य को इसने हाथ में कर रखा है।

दूसरा—क्यों संन्यासी ने क्या किया? ।।५९।।

पहला—अरे क्या जानता नहीं, भट्टाचार्य के उठने से पूर्व ही संन्यासी आज शयनगृह के द्वार पर गये थे। तब एक ब्राह्मण बटु ने कहा हे भट्टाचार्य उठिये! वही संन्यासी के चरणों पर गिर पड़े। उस संन्यासी के हाथ में जगन्नाथ जी का प्रसाद था, वह श्री भट्टाचार्य के सामने लाकर कहा—इसको ग्रहण करो। हमारे भट्टाचार्य, जो कभी प्रसाद ग्रहण नहीं करते हैं, वे आज पागलों की तरह उसी स्थान पर खाने लगे, बिना मुख धोये और विना स्नान किये ही। उनके रोमें खड़े हो गये थे, आँखों से आंसू झर रहे थे जिससे उनके वस्त्र भीग गये थे, गला रुँध गया था, मानों किसी विचित्र रोग से विह्वल होकर जमीन पर लोटने लगे। क्या होने वाला है पता नहीं ।।६०।।

गोपी०—(सुनकर) मुकुन्द! सुना है?

मुकुन्द—तुम्हारे अनुताप के कारण ही महाप्रभु ने ऐसा किया है।

नौकर—आओ! चलें गोपीनाथाचार्य को खोजें (प्रस्थान)

गोपी०—बड़ा अच्छा हुआ, जो इन दोनों ने मुझे नहीं देखा। अतः यहीं रुककर दामोदर-जगदानन्द की प्रतीक्षा करें ।।६१।।

(तब विस्मित दामोदर का प्रवेश)

दामोदर--भगवान् ने मत्त बनगजेन्द्र को बिना साँकल ही बांध दिया, बिना जल के ही स्वजनों के हृदय की अग्नि को शान्त कर दिया। क्योंकि भगवान् ने स्वेच्छा से इन पण्डितपति भट्टाचार्य के वज्र से भी कठोर चित्त को अमृत के समान सरस बना दिया।

गोपी०—(निकट जाकर) दामोदर ! क्या है ?

दामो०—हे भाई, एकान्त में कहूँगा। किन्तु मैं तुम्हारे लिये ही इधर आया हूँ। दूसरे द्वार से निकलकर वास स्थान पर पहुँचे हुए देव के पास चलें। (तीनों घूमते हैं)

दामो०—(बिना साँकल के ही···आदि वृत्तान्त बताता है)

गोपी०—मैंने सब सुन लिया है। दो नौकर आपस में कह रहे थे।

दामो०—तुम्हारी ही कृपा से उसे यह सौभाग्य मिला है। चलो जल्दी ही प्रभु के पास चलें क्योंकि दैनिक कार्यों से निपटकर भट्टाचार्य भी आ ही गये होंगे। अब उनके अभिप्राय का पता चलेगा। उस समय तो कोई बात नहीं हुई। (घूमते हैं)॥६२॥

(तब आसन पर बैठे महाप्रभु और नित्यानन्द, जगदानन्द का प्रवेश)

भगवान्—जगदानन्द ! वे गोपीनाथाचार्य कहाँ हैं ?

जगदा०—यह देखिये दामोदर और मुकुन्द के साथ जल्दी जल्दी आचार्य आ रहे हैं।

गोपी०—(निकट पहुँचकर) परम कारुणिक आपकी जय हो।

जगदा०—अरे ! यह बिलकुल नई बात क्या कह रहे हो ?

गोपी० —यह तो तुम जानो (भगवान् को प्रणाम करते हैं)॥६३॥

(नेपथ्य में)—स्वामी ! श्रीजगन्नाथ-मन्दिर में जाने का यह रास्ता नहीं है।

भगवान्—आचार्य ! देखो क्या है ?

गोपी०—(नेपथ्य की ओर देख कर) जान लिया, यह है श्रीभट्टाचार्य जी जगन्नाथ जी के दर्शन बिना किये ही आपके पास आ रहे हैं।

दामो०—पहले ही पता था।

सब—(उसका मुँह देखने लगते हैं) ॥६४॥

(तब आश्चर्य से प्रसन्नमुख सार्वभौम का प्रवेश)

भट्टा०—अहा ! गोपीनाथाचार्य ने ठीक ही कहा था। हमारा भी चित्त जब ऐसा हो गया है तो यह ईश्वर ही हैं। (उत्सुकता से परिक्रमा करके) यह हमारी मौसी का घर है, प्रवेश करूँ। (प्रवेश करते हैं)

आचार्य—(उठकर आगे बढ़ते हैं)

सार्व०—(सामने देखकर) आचार्य ! महाप्रभु क्या कर रहे हैं ?

आचार्य—इधर आएँ, आप इधर।

सार्व०—(निकट जाकर दण्डवत करके, हाथ जोड़कर) अनेक लीलाओं के रस के कारण, भगवान् लोक-लीला करते रहते हैं इससे उनके दर्शन करके भी उनके तत्व का बोध नहीं होता है। अरे ! मनुष्य पारस को केवल देखकर नहीं पहचान सकता है जब तक कि वह छूने से लोहे को सोना न बनादे। और भी—

हे नाथ ! आप लक्ष्मीपति होकर भी भक्त-लोगों के हृदयमें ही रहते हो। हे पद्मनाभ ! मुनि के वेशमें आप संसार में विचर रहे हो। अहो ! हमारे प्रति तो विधाता वाम है, अतः पशुतुल्य हम लोग आपके महा प्रभाव को स्पष्ट रूप से कैसे समझ सकते हैं ॥६५॥

भगवान्—(कान बन्द कर) भट्टाचार्य ! मैं आपके वात्सल्य का ही पात्र हूँ यह सब क्या कह रहे हो ? (मन में) अब इसके मन की परीक्षा करनी चाहिये। (प्रकाश में) शास्त्र का अभिप्राय क्या है आप यह बतावें ।

भट्टा०—(हाथ जोड़कर)

हे भगवन् ! अपनी अपनी रुचि के अनुसार शास्त्र में नाना प्रकार के मत बनाये गये हैं। अगर ऐसा न होता तो उनके एक दूसरे के खण्डन में ही बुद्धिमत्ता क्यों समझी जाती। उन सब में भगवान् की भक्ति प्राप्त करना ही चरम लक्ष्य है, किन्तु वह निष्काम-भक्ति केवल भगवान् की कृपा से ही प्राप्त हो सकती है ।।६६।।

और भी—

वेद, पुराण और महाभारत, तन्त्र और सभी मन्त्र ब्रह्म वस्तु का ही प्रतिपादन करते हैं किन्तु उसके तत्व के विषय में सभी चक्कर में पड़ जाते हैं। वस्तुतः बृहत् और बृद्धि इन दो कारणों से ईश्वर के मुख्य-रूप से साकार सिद्ध होने पर भी जो निराकार रूप मानते हैं वे उसे कभी सिद्ध नहीं कर पाते हैं।

क्योंकि—

'जहाँ जहाँ वेद निराकार का कथन करते हैं वहाँ वहाँ वे साकार का भी कथन करते हैं। विचार करने पर उन दोनों में प्रायः साकार का निरूपण ही बली होता है' ।।६७।।

क्योंकि—

'आनन्द से ही यह जीव उत्पन्न हुए हैं आनन्द से जीवित हैं' इत्यादि जो वेद वाक्य हैं उनमें भी अपादान, करण, कर्म आदि कारक का प्रयोग है अतः साकार का ही बोध होता है। इसी प्रकार—"जहाँ से यह जीव उत्पन्न होते हैं उन्होंने देखा

एवं वह होने की इच्छा की" आदि वेद वाक्य इसी तरह हैं। उसने देखा, उसने इच्छा की, इत्यादि में देखना, इच्छा करना इन अर्थों से विशेष करके साकार ही सिद्ध होता है निर्विशेष निराकार नहीं। साकारत्व सिद्ध होने पर रूप भी सिद्ध हो जाता है। हाँ उनका रूप प्राकृत नहीं है क्योंकि वेद में उन्हें ज्योतिर्मय चरणवाला कहा गया है और ज्योति अप्राकृत होती है। तो रूप भी अप्राकृत होगा। केवल निराकार मानने पर शून्यवाद की सम्भावना होने लगती है। अतः ब्रह्म शब्द मुख्य है और मुख्य होने से ब्रह्म मुख्य है यह सिद्ध हो गया ।।६८।।

क्योंकि—

एक मात्र अद्वैत-ज्ञान को तत्वज्ञ लोगों ने ब्रह्म, परमात्मा या भगवान् इन शब्दों से कहा है।

अपने पक्ष का ही अर्थ निकालने का हठ करने वाले लोग मुख्यार्थ सिद्ध होने पर भी तथा लक्षणा से सिद्ध न हो सकने पर भी जो निराकारता मानते हैं उनका केवल हठ है।

वस्तुतः तो—

मूर्त और अमूर्त भेद से आनन्द दो प्रकार का है ऐसा कहा गया है। मूर्त्तानन्द ही अमूर्त्तानन्द का आश्रय है एवं भगवान् ही मूर्त्तानन्द माने गये हैं। ज्ञान रूप एवं निर्गुण, परमात्मा स्वरूप में स्थित और कूटस्थ ब्रह्म है, यह विद्वानों का मत है। तत्व का विचार करने से मूर्त और अमूर्त में कोई भेद नहीं रहता है। वेदों ने उनमें भेद-कल्पित कर लिया है। वस्तुतः जैसे मणि एवं उसके तेज में कोई वास्तविक भेद नहीं है वैसे ही इनमें भी कोई भेद नहीं है। यह हयशीर्ष-पञ्चरात्र में कहा है ।।६९।।

इस प्रकार कपिल-पञ्चरात्र में भी कपिल ने अगस्त्य से कहा है-

'संसार में मूर्त और अमूर्त यह दो ब्रह्म जानने चाहिये। प्रभु श्रीनारायण मूर्त और अमूर्त दोनों रूप में हैं इस प्रकार ध्यान करना चाहिये'। यह पञ्चरात्र मत ही समीचीन है।

केवल निराकार को मानने वाले अमूर्तानन्द ही ब्रह्म है ऐसा सिद्ध करके अपनी वासना की कठोरता ही प्रकट करते हैं, वे निराकार को सिद्ध नहीं कर सकते हैं ॥७०॥

पञ्चरात्र के मत को स्वीकार करने पर तो 'आनन्द मात्र ब्रह्म का स्वरूप है', 'एक ही अद्वितीय ब्रह्म है' इत्यादि भी सिद्ध हो जाता है। इसमें रूप-शब्द से मूर्त (साकार) होना एवं मणि और उसके तेज के समान कहने पर अद्वितीय होना सिद्ध होता है। अतः भगवान् ही ब्रह्म हैं यह सब शास्त्रों का मत है। वासना के विशेष होने के कारण मूर्तानन्द भगवान् को लीला की मूर्ति ही मानते हैं और केवल अमूर्तानन्द को ही ब्रह्म मानते हैं। किन्तु पञ्चरात्र के अनुयायी भगवान् के उपासक होने के कारण भ्रमरहित हैं अतः उनके आचरण से ही वेद के अर्थ का अनुमान करते हैं।

क्योंकि—

शास्त्ररूपी वृक्ष की सहस्रों शाखायें हैं, किन्तु सम्पूर्ण शास्त्र कहीं भी प्रत्यक्ष-सिद्ध नहीं है, अतः पुराणों के वाक्य एवं अभ्रान्त-लोगों के आचरण से उसके सूक्ष्म-भागों का अनुमान करते हैं ॥७१॥

पुराण वचन यथा—'परमानन्द रूप सनातन पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण जिनके मित्र हैं' इत्यादि जो पुराण के वाक्य हैं उनका अर्थ है कि रूपवान् होने के कारण ब्रह्म पूर्ण हैं, निराकार ब्रह्म तो अपूर्ण हैं।

अभ्रान्त लोग कृष्ण-भक्त हैं। उनके मत में वासुदेव परम देव हैं, वही परमात्मा हैं, उन्हीं से जीवों को उत्पन्न करने वाले संकर्षण उत्पन्न हुए जो स्वयं जीव नहीं हैं। क्योंकि भगवान् ने कहा है कि-शब्दब्रह्म और परब्रह्म ये दोनों ही हमारे नित्य शरीर हैं, अतः वे ही परमात्मा भी हैं। इससे मूर्तानन्द हो श्रीकृष्ण हैं यही शास्त्रों का सार है।

भगवान्—बहुत अच्छा! तो अब भगवान् के दर्शन करने जाओ।

भट्टा०—जो आपकी आज्ञा है। (दामोदर-जगदानन्द के साथ बाहर जाते हैं) ॥७२॥

मुकुन्द—यह इन दोनों को क्यों ले गये हैं?

गोपी०—इसमें रहस्य है किन्तु देव! ये वही भट्टाचार्य हैं।

भगवान्—महा भागवत आपके संग से बिलकुल बदल गये हैं।

गोपी०—(हँसकर) ऐसा ही है ॥७३॥

(तब बिना पर्दा उठाये दामोदर-जगदानन्द का प्रवेश)

दोनों—देव! भट्टाचार्य ने दो श्लोक और भगवान् जगन्नाथ का प्रसाद भेजा है।

भगवान्—बड़ी कृपा हुई।

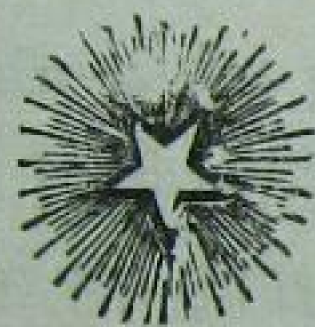
मुकुन्द—लाओ दोनों श्लोक देखें। (पत्रिका लेकर मन में पढ़ता है)

"वही पुरातन पुरुष श्रीभगवान् ने वैराग्य, विद्या, भगवद्भक्तियोगको शिक्षा देने के लिये श्रीकृष्णचैतन्य नामक शरीर को धारण किया है उन परम कारुणिक परमात्मा की मैं शरणागत होता हूँ"।

"काल के प्रभाव से नष्ट अपने भक्तियोग का पुनः उद्धार करनेके लिये जो भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य नामसे इस जगमें उत्पन्न हुए हैं उनके चरण-कमलों में मेरा चित्त रूपी भौंरा लीन हो

जाएँ। (पढ़कर दीवाल पर लिखकर देव के हाथ में दे देता है)
भगवान्—(पढ़कर फाड़ देते हैं)
गोपी०—देव ! दोपहर हो गयी है, अतः समयोचित कार्य करने के लिये तैयार हो जावें।
सब—हाँ हाँ ठीक है (सब का प्रस्थान) ॥७४॥

॥ इति चैतन्यचन्द्रोदयनाटके कुसुमसरोवरनिवासी कृष्णदास-कर्तृक अनुवादित श्रीसार्व्वभौमानुग्रह नामक षष्ठोऽङ्क ॥



सप्तम अङ्क

(सार्वभौम का प्रवेश)

सार्वभौम—अरे ! आज गजपति ने असमय में ही बुला भेजा है, सो जाना ही ठीक है। (निकट जाते हैं)

(तब परिवार सहित राजा का प्रवेश)

राजा—यहाँ कौन है ? भट्टाचार्य को बुलाओ।
सार्व०—मैं बिना बुलाए ही उपस्थित हूँ, महाराज !
राजा—(प्रणाम करके) यह आसन है बैठिये।
भट्टा०—आशीर्वाद। (आसन पर बैठते हैं)
राजा—भट्टाचार्य ! सुना है गौड़देश से कोई अति प्रभावशाली परमकारुणिक यतीन्द्र पधारे हैं।

भट्टा०—हाँ महाराज !
राजा—मैं कैसे उनकी चरण-वन्दना करूँ ?
भट्टा०—यह तो बड़ा कठिन है क्योंकि वे बहुत कम बाहर निकलते हैं अतः केवल अकिञ्चन लोग ही उनका दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। और दो एक दिन हुए वे दक्षिन को चले गये हैं।
राजा—भगवान् जगन्नाथ का सामीप्य त्याग कर चल दिये ?
भट्टा०—अपने अन्दर स्थित भगवान् विष्णु के प्रभाव से साधारण महापुरुष भी तीर्थ को पवित्र करते हैं, फिर यह तो साक्षात् भगवान् हैं ॥२॥
राजा—(आश्चर्य के साथ) भट्टाचार्य ! यदि आप ऐसा कहते हैं सो ठीक ही है तब तो प्रयत्न करके उन्हें यहाँ क्यों नहीं रखा ?
भट्टा०—महाराज ! ब्रह्मा आदि देवता एवं लोकपाल जिन भगवान्-भ्रूभङ्ग से हिल उठते हैं, वे अपनी करुणा के अतिरिक्त और किसी के वश में नहीं हो सकते हैं। फिर भी मैंने उनकी कितनी स्तुति नहीं की, कितनी इधर उधर की समझाने का प्रयत्न नहीं किया, प्राण आदि त्याग देने का कितना भय नहीं दिखाया, पैर पकड़ कर कितना नहीं रोया, पर वे फिर भी चले ही गए। स्वभाव से महान् लोगों की कृपा ओर आदेश दोनों ही समान होते हैं।
राजा—क्या यहाँ फिर आएँगे ?
भट्टा०—आएँगे अवश्य, क्योंकि उनके साथी यहीं हैं ॥३॥
राजा—क्या अकेले चले गये ?
भट्टा०—उन जैसे लोग अकेले क्यों होने लगे। लेकिन मैंने उनके साथ कुछ अच्छे ब्राह्मण भेज दिये हैं।
राजा—वे लोग कितनी दूर तक साथ जाएँगे ?

भट्टा०—गोदावरी तक जायेंगे। लेकिन महाप्रभु सेतुबन्ध तक जायेंगे ऐसा अनुमान है।

राजा—ब्राह्मणों को वहीं तक क्यों नहीं भेजा ?

भट्टा०—बिना उनकी अनुमति से भेज नहीं सकता था। रामानन्द के अनुरोध पर गोदावरी तक उन्हें साथ ले लिया है।

राजा—रामानन्द का अनुरोध कैसा ?

भट्टा०—जब उनका जाना निश्चित हो गया तो मैंने कहा,—"प्रभो! गोदावरी के किनारे रामानन्द जी हैं उन पर अवश्य कृपा करना।" ॥४॥

राजा—उसका ऐसा सौभाग्य कैसे ?

भट्टा०—महाराज! वह स्वभाव से परम वैष्णव हैं, पहले हम उनकी हँसी उड़ाते थे। अब भगवान् की कृपा हो जाने से हम उनकी महिमा को जान गये हैं।

राजा—आप पर उनकी जैसी कृपा हुई वह मैंने सुनी है।

भट्टा०—भगवान् का प्रभाव तो स्वयं फैलता है।

(प्रवेश करके)

द्वारपाल—भट्टाचार्य जी! आपके भेजे हुए ब्राह्मण गोदावरी से वापस आगये हैं, वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

भट्टा०—(उत्सुक होते हैं)

राजा—यहीं बुला लो।

द्वार०—जो आज्ञा (जाकर बुला लाता है)

भट्टा०—आइये! आइये!

ब्राह्मण—(निकट आकर, राजा को आशीर्वाद देकर, सार्वभौम को प्रणाम करते हैं) ॥५॥

राजा—बैठकर आरम्भ से सब हाल कहो।

(सब बैठ जाते हैं)

भट्टा०—तुम में से कोई एक ही हाल बताएगा।

एक—यहाँ से जाकर आलालनाथ के दर्शन और स्तुति करके मदमत्त हाथी के समान बिना रुके हुए वे भगवान् बड़े वेग से चलने लगे। तीव्रवेगगामी भी हम लोग उनके साथ कठिनता से चल पाते थे, वे तो तीव्र उत्तरी हवा से उड़ाये हुये सुमेरु के टुकड़े के समान चले जा रहे थे, उनके मुख से लगातार निकलते हुए संकीर्तन के स्पष्ट एवं उच्चस्वर से मेघ की गम्भीर ध्वनि भी पराजित हो रही थी, मार्ग में उनको लोग अपलक निहार रहे थे। इस प्रकार अत्यल्प समय में ही वे कूर्म-क्षेत्र जा पहुँचे ॥६॥

भट्टा०—इस बीच उन्होंने भिक्षा नहीं ग्रहण की ?

एक—नहीं कुछ नहीं ग्रहण किया।

भट्टा०—आप लोगों ने क्या किया ?

एक—जो मिला वही खाते हुए इनको ओझल नहीं होने देते थे, पीछे ही पीछे चलते रहे। तब वहीं कूर्म-क्षेत्र में कूर्म-देव को प्रणाम और स्तुति करके वहीं कूर्म नामक एक ब्राह्मण के घर पहुँचे। बाद में उसके निमन्त्रण देने पर भिक्षा-ग्रहण करके जो किया वह तो बड़ा अद्भुत है ॥७॥

भट्टा०—वह क्या ?

ब्राह्मण—वहीं वासुदेव नामक एक ब्राह्मण था उसके सड़ने वाला कोढ़ था। उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग कोढ़ के कीड़ों से भरे खून और पीप से भरे हुए थे। जो कीड़े गिर जाते उन्हें वह उठाकर वहीं रख देता था किन्तु भगवान में चित्त-मग्न होने के कारण दुःखित नहीं होता था। किसी के द्वारा न बताये जाने पर भी महाप्रभु वहाँ पहुँच गये। तुरन्त ही मानों कोई परम-मित्र बहुत दिनों के बाद मिला हो इस प्रकार दो भुजायें बढ़ाकर खूब जोर से उसी रूप में उसका आलिङ्गन किया। उसके पश्चात् वह ब्राह्मण यह श्लोक पढ़ने लगा ॥८॥

"कहाँ मैं पापी दरिद्र और कहाँ लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण। आप ब्राह्मणों के मित्र हैं इसीलिये मुझे बाहुओं मे भर लिया है"।

इसके साथ ही वह प्रकाशमान सुन्दर अंगों से युक्त हो गया। तब उसने फिर कहा—"हे भगवन्! आपने मेरा शरीर ऐसा क्यों कर दिया है? रोगी होकर मैं बिना दुख किये शान्तिपूर्वक रह रहा था। अब स्वस्थ होने से सभी मनोवृत्ति उठ खड़ी होंगी"। भगवान् ने कहा कि हे ब्राह्मण! भगवान् के स्मरण के अतिरिक्त तुम्हारे मन में और कोई बाहरी कार्य नहीं होंगे। तुम चिन्ता न करो ॥९॥

राजा—भट्टाचार्य! यह वस्तुतः ईश्वर हैं अन्यथा ऐसी करुणा जीव में नहीं हो सकती है। कोढ़ को दूर करना तो योगियों से हो सकता है।

भट्टा०—तब फिर?

ब्राह्मण—तब नृसिह क्षेत्र में पहुँचकर महा प्रभावशाली भगवान् ने नृसिंहदेव के दर्शन और स्तुति करके प्रणाम तथा प्रदक्षिणा की और चल पड़े।

अपने शरीर रूपी स्वर्ण के पर्वत की किरणों की लहरों से दक्षिण-दिशा को प्रकाशित कर दिया एवं सब ओर करुणा-पूर्ण दृष्टिपात करके जनमानस को द्रवित करने लगे ॥१०॥

और भी-"कृष्ण कृष्ण जय कृष्ण हे! कृष्ण कृष्ण जय कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण जय कृष्ण हे! कृष्ण कृष्ण जय कृष्ण हे॥
हमारी रक्षा करो" इस प्रकार मेघ के समान गम्भीर वाणी के द्वारा स्नेह तथा माधुर्य से युक्त अमृत रस से सभी के कर्णों को तृप्त करते हुए, चित्त को हरते हुए चलते रहे।

सार्व०—ठीक है, यह तो उनका स्वभाव ही है।

ब्राह्मण—तब गोदावरी के तट पर पहुँचकर विश्राम किया। सम्पूर्ण संसार के मनों को आनन्दित करने वाले, निष्कारण कृपा करने वाले, प्रेम एवं सौभाग्य के स्वरूप श्रीभगवान् की सुगन्धि-कनककेतकी के वन को स्वयं फैलने वाली गुणशाली सुगन्धि को भाँति चारों दिशाओं में फैल गई। जिसमें यह कौन है, कौन है? इस प्रकार, जानने की इच्छा से आए ब्राह्मणों को दर्शन दिया। उनमें से किसी एक के द्वारा निमन्त्रण प्राप्त किया। उसके बाद जब यह सब ओर सभी लोगों के कानों को प्रिय लगने वाला वृत्तान्त फैल गया तब मानों मन्त्र से आकृष्ट की भाँति, मानों किसी ग्रह से ग्रस्त होने से चकित एवं अस्त-व्यस्त होकर रामानन्दराय आ उपस्थित हुए ॥११॥

राजा—रामानन्द! तुम धन्य हो, धन्य हो, जिसने कि महाप्रभु के चरणों का दर्शन कर लिया।

ब्राह्मण—तुरन्त आकर चरणकमलों पर आँसू बहाते हुए गिर पड़े। भगवान् ने कृपा पूर्वक कहा कि अरे! तुम्हीं रामानन्द हो? हाँ महाराज! यह रामानन्द ने उत्तर दिया। तब भगवान् ने कहा कि सार्वभौम के अनुरोध से मुझे आपका दर्शन अभीष्ट था इसलिये मैं यहाँ थोड़ा रुक गया। अतः जो तुम स्वयं चले आये यह बहुत अच्छा हुआ, तो कुछ वार्तालाप करिये, उसके बाद यद्यपि रामानन्द को ये कौन हैं, इनका क्या नाम है, इनकी क्या महिमा है, इनके विचार क्या हैं, क्या इनकी असलियत है, यह महाप्रभु के बारे में कुछ भी पता नहीं था फिर भी मानों चिर-काल से ही उनके साथ ही रहे हों—इस प्रकार भावुक होकर कहने लगे—

"यदि मन को नहीं जीता तो तपस्या आदि से क्या लाभ? और वह कैसी मन की विजय है यदि श्रीकृष्ण का ध्यान नहीं

होता है ? फिर यदि हृदय द्रवित न हो जाए तो वह ध्यान ही कैसा ? और बिना वासना-नाश के चित्त द्रवित ही कैसे होगा ? ॥१२॥

भगवान्—यह तो बाहरी वस्तु है। विद्या क्या है ?

रामा०—हरि की भक्ति, वेदान्त आदि की योग्यता नहीं।

भगवान्—कीर्ति क्या है ?

रामा०—'यह भगवान् का दास है' यह प्रसिद्धि ही कीर्ति है परन्तु दान आदि से उत्पन्न कीर्ति कीर्ति नहीं है।

भगवान्—सम्पत्ति क्या है ?

रामा०—भगवान् का प्रेम ही, धन-ग्राम-आदि नहीं।

भगवान्—दुःख क्या है ?

रामा०—भगवान् के भक्त से वियोग होना ही दुःख है, हृदय के घाव से उत्पन्न दुःख दुःख नहीं।

भगवान्—ठीक ! मुक्त कौन हैं ?

रामा०—जिन्हें मुक्त कहा जाता है वस्तुतः वे मुक्त नहीं हैं। मुक्त वही हैं जो अनुराग से भगवान् के श्रीचरणों के पास बैठे हैं, राग (विषय) के पास नहीं, जिन्हें अतिशय-प्रेम से युक्त श्री-हरि के भक्ति योग से प्रेम है, अन्य योग से नहीं; जिनका विश्वास भगवान् के प्रेम रस में डुबकी लगाने पर ही है, देह पर नहीं ॥१३॥

भगवान्—अच्छा क्या गाना चाहिये ?

रामा०—ब्रज क्रीड़ा की लीला।

भगवान्—इस संसार में कल्याणकारी क्या है ?

रामा०—सत्सङ्ग।

भगवान्—क्या स्मरण करना चाहिये ?

रामा०—पाप के शत्रु भगवान् का नाम।

भगवान्—क्या ध्यान करना चाहिये ?

रामा०—श्रीकृष्णचरण।

भगवान्—कहाँ रहना चाहिये ?

रामा०—ब्रज में।

भगवान्—कानों को तृप्ति किससे प्राप्त होती है ?

रामा०—केवल वृन्दाबन की क्रीड़ा से।

भगवान्—किसकी उपासना करनी चाहिये ?

रामा०—राधाकृष्ण नामक युगल प्रकाश की।

भगवान्—ठीक है कहते जाओ, कहते जाओ।

रामा०—अब आगे क्या कहूँ ? प्रश्नों के अनुसार तो कहता ही रहा हूँ। अब जो कुछ कहूँ पता नहीं इनको अच्छा लगे न लगे। (कुछ सोचकर, प्रकाश्य में)

रस को न जाननेवाले ही निर्वाण रूपी बिम्बफलको चूसें, परन्तु रसज्ञ हम लोग तो कामावेग से शिथिल गोपियों की आँखों के चुल्लूसे टपकते हुए श्यामामृत का ही पान करेंगे॥१४॥

भगवान्—और कुछ कहो यह तो वही बात हुई।

रामा०—इसके आगे कहना ही क्या है जो कहूँ (मन में सोच-कर, प्रकाश्य से)

जिसके प्रभाव से चकोरियाँ रास्ते को चाटती रहती हैं, रत्नों से बना हुआ पाद-पीठ जिसके कारण स्फटिक मणि का बना हुआ प्रतीत होता है, धुले हुए चरणों को देखने पर जिनके प्रभाव से ऐसा लगता है मानों जल की बूँदे टपक रही हों। श्रीकृष्ण के चरणकमल की नाव रूपी मणियों का प्रकाश हमारी रक्षा करे।

भगवान—यह तो केवल वाक्य ही हुआ अर्थ नहीं, फिर कहो।

रामा०—(थोड़ा सोचकर)

जो श्रीवत्स, कौस्तुभ एवं स्वयं लक्ष्मी को भी पराजित कर रहा है, वह धोखे से अन्धकार के द्वारा बन्दी किये हुए बालसूर्य के समान, या यमुना के जल में पूर्ण विकसित लाल कमल के समान मनोहर श्रीराधा के चरणकमल का महावर रस हरि के वक्षस्थल पर विराजमान होता हुआ हमारी रक्षा करे।

भगवान—यह भी वैसा ही है।

रामा०—(चरण पकड़ कर)

हे सखि ! वे रमण हैं और मैं रमणी हूँ यह भेद हम लोगों में नहीं रह गया था, क्योंकि दुरन्त कामदेव ने जबरदस्ती हमारे मनों को प्रेमरस के साथ पीस डाला था ।।१५।।

अथवा—

मैं कान्ता हूँ और तुम कान्त हो इस प्रकार बुद्धि उस समय नहीं थी, मनोवृत्तियाँ लुप्त होगई थीं, मैं, तुम, यह भेद भावना भी नष्ट हो गई थी। किन्तु हाय ! अब तुम पति हो और मैं पत्नी हूँ इस प्रकार विसद्रश बुद्धि होने पर भी मैं जीवित हूँ। इससे अधिक आश्चर्य क्या होगा ?

सार्व०—तब भगवान् ने क्या कहा ?

ब्राह्मण—तब जो कुछ देखा वह सुनो—

जैसे संपेरे के संगीत को फन उठाकर साँप सुनता रहता है उसी तरह स्थिर भाव से सावधानी पूर्वक रामानन्द के कथन को सुनते सुनते पता नहीं आनन्दावेश के कारण या कुछ अनुपयुक्तता समझ कर महाप्रभु ने हाथ से उनका मुँह बन्द कर दिया।

राजा—भट्टाचार्य ! इसका क्या रहस्य है ।।१६।।

भट्टा०—महाराज ! प्रेम में कोई कापट्य (मैल) नहीं रहता है,

मैल का प्रेम सह ही नहीं सकता है-यह श्लोक के पूर्वार्ध में कहा गया है। महाप्रभु ने इसे ही मनुष्य का परम पुरुषार्थ माना है। अतः बाद में बचन में कुछ कपटता का प्रतीत हुआ, मुख बन्द करना उसका रहस्य होना सिद्ध करता है कि इस निगूढ़ प्रेम का प्रकाश करना उचित नहीं है ।।१७।।

ब्राह्मण—तब अपने बालों के दो भाग करके उनसे महाप्रभु के चरणों को लपेट कर लोटने लगा और बोला—आप महारसिकों के सिरमौर, सरस नाट्यलीला के गुरू एवं वही हमारे हृदयेश्वर हो, हम आपकी क्या स्तुति करें ? अनेक प्रकार के रूप धारण करना तो आपका स्वाभाविक गुण है अतः संन्यासी का वेश भी कुछ आश्चर्य नहीं है।

बहुत देर तक चरण कमलों को पकड़े मस्तक रखकर रोते रहे। बीच बीच में कहते भी रहे।

भाग्यवश अकस्मात् ही एक निधि आई है, क्या चन्द्र टूट गया है जो अमृतधारा नीचे गिरने लगी है, हे देव ! आपके चरणकमल को क्या देखा मानों आनन्द-रूपी वृक्ष का फल एकदम पक गया।

प्रभो ! जैसा मैंने आज स्वप्न में देखा वैसा ही प्रत्यक्ष भी, (यह कहकर पुनः चरण पकड़ कर रोने लगा) ।।१८।।

महाप्रभु जी ने उठाकर उसका आलिंगन किया। तब निमन्त्रण देने वाले व्यक्ति ने आकर कहा कि देव दोपहर बीत चुकी है। सुनकर भगवान् दोपहर के कार्य के लिये उठ खड़े हुए। हम लोग भी उनके चरणकमलों की बन्दना करके चलने को तैय्यार हो गये।

सार्व०—तो अब आप लोग विश्राम करें।

ब्राह्मण—जैसी आपकी आज्ञा।

राजा—पुरस्कार देता है।
(ब्राह्मण लेकर प्रस्थान करते हैं) ॥१६॥
(तदनन्तर द्वारपाल का प्रवेश)
द्वार०—महाराज ! कर्णाट के राजा-द्वारा प्रेषित भेंट लेकर उनके मन्त्री श्री मल्लभट्ट जी पण्डितराज द्वार पर उपस्थित हैं।
सार्व०—मुझे पता है, वह वस्तुतः महा-पण्डित हैं।
राजा—प्रवेश कराओ।
द्वार०—आपकी जैसी आज्ञा। (जाकर ले आता है)
सार्व०—आइये श्रीमान् जी ! (उठते हैं)
मल्ल०—(राजा को आशीर्वाद देकर) भट्टाचार्य ! यह क्या कर रहे हो, मैं आपके द्वारा उठकर स्वागत करने योग्य नहीं हूँ। अथवा—

सुमेरु पर्वत सदा ही ऊँचा रहता है, मेघ सदा ही गम्भीर एवं लक्ष्मी सदा ही लोगों की इष्ट रहती है और पण्डित-लोग सदा विनय से ही शोभा धारण करते हैं ॥२०॥

राजा—यह आसन है।
मल्ल०—जैसी आज्ञा, बैठता हूँ (बैठते हैं)
राजा—कर्णाटराज कुशल से तो हैं ?
मल्ल०—आपके ऐसे जिसके मित्र हैं उसकी कुशल तो सदैव रहती है परन्तु इस समय तो और भी अधिक है।
राजा—वह कैसे ?
मल्ल०—महाराज ! इसी देश से तीर्थ-यात्रा के बहाने से कोई स्वर्ण के समान कान्ति वाले यती जब से दक्षिण दिशा को गये हैं तब से महाराज आनन्द-मग्न रहते हैं।
सार्व०—भट्ट जी कहो कहो ! ॥२१॥
राजा—कैसे ?

मल्ल०—उत्तर-देश के समान ही दक्षिण-देश में भी कुछ ज्ञान-मार्ग के पण्डित हैं और कुछ कर्म-मार्ग के। भक्त-लोग बहुत कम हैं। जो हैं वे अधिकतर शैव हैं उनमें भी पाखण्डी ही अधिक हैं। वे एक दूसरे के खण्डन में ही लगकर अस्त व्यस्त रहते हैं एक दूसरे को ऊँचा नीचा कहते रहते हैं। अतः हमारे महाराज इन आचार्यों से बड़े उद्विग्न हो गये थे ॥२२॥
राजा—तब फिर ?
मल्ल०—उन यति महाराज के प्रवेश करते ही वहाँ सभी ओर बाल-वृद्ध-युवक आनन्द और चमत्कार से मुग्ध हो गये, पण्डित लोग भी देखने को आये तथा अत्यन्त सुन्दर उनके शरीर की शोभा से ही उनकी महिमा को समझ बिना उपदेश सुने ही "मैं ऐसा कब हो सकूँगा" इस तत्काल उदित बलशाली भावना से रोमाञ्चित होकर आँसू बहाते हुए सभी ने अपना अपना मत छोड़कर, उनके मत में प्रविष्ट हो गये। उन लोगों में एक दूसरे के द्वारा फैली हुई बात को सुनकर हमारे महाराज ने आनन्दित होकर उनका विशेष चरित जानने के लिये गुप्तरूप से ब्राह्मणों को भेजा। सेतुबन्ध तक एवं वहाँ से लौटने तक उनके अलौकिक चरित तथा चमत्कारों को उन लोगों के मुख से सुनकर महाराज इस संसार की अग्नि-ज्वाला को बिलकुल भूल गये ॥२३॥
राजा—मन्त्री ! तुम्हारा वह राजा धन्य है।
सार्व०—क्या क्या सुना ? कुछ तो बताओ ?
राजा—हाँ मन्त्री जी कहिये !
मल्ल०—एक दिन सुख के आवेश में आँसुओं से सोने के समान शरीर को भिगोते हुए, खिला भया कदम्ब-वृक्ष के समान रोमाञ्च से युक्त, गद्गद कण्ठ से भगवान् के नाम का कीर्तन

करते हुए आनन्द के वश में, वेग से, मार्ग अमार्ग भावना से मुक्त होकर भी ठीक मार्ग पर चलते हुए श्रीमहाप्रभु जी को देखकर एक पाखण्डी ने सोचा, यह संन्यासी वैष्णव है, भगवान् के प्रसाद के नाम से खा लेगा अतः इसे यह अन्न खिलादें । सो कुत्ते के खाने योग्य अपवित्र अन्न थाली में रखकर सामने पहुँचकर स्वामी जी ! यह भगवान् का प्रसाद है ग्रहण करें यह शीघ्रता से सुनाकर कहा ॥२४॥ (भगवान्—सर्वज्ञ होकर भी भगवान् के प्रसाद के नाम से ही उसका त्याग न कर सके। पात्र को हाथ में लेकर, हाथ ऊपर उठाकर चल पड़े। तुरन्त ही एक बड़े पक्षी ने उसे भगवान् के हाथ से अपनी चोंच में रखकर उड़ गया।)

सार्व०—अरे ! कहीं इन लोगों पर मोह की महिमा चलती है ? लोकपाल भी जिनकी माया से मोहित हो जाते हैं उन्हें भी मोहित करने के लिये यह क्षुद्र-लोग प्रयत्न करते हैं ॥२५॥

मल्ल०—दूसरे दिन और कहीं ब्राह्मण के घर में स्वेच्छा से पहुँचकर उसे राम राम जपते देख कर चले गये। लौटते समय उसे देखने पुनः वहाँ गये तो उसे कृष्ण कृष्ण जपते देख पूँछा क्यों भाई ! जाते समय तो तुम राम राम जपते देख पड़े थे अब कृष्ण कृष्ण कैसे जप रहे हो ? इसका क्या रहस्य है बताओ। तो उसने कहा—भगवन् ! यह आपका प्रभाव है कि बचपन से मैंने राम राम जपा है किन्तु आपके दर्शन होने के बाद मुख से कृष्ण कृष्ण निकलता है, बल लगाने पर भी नहीं रुकता है। अतः यह आपके दर्शन का ही दोष (फल) है मेरा नहीं ॥२६॥

भट्टा०—महाराज ! यद्यपि दोनों का एक ही अर्थ है—

सत्य, आनन्द, चिद् रूप अनन्त में ही योगी-लोग रमण करते हैं अतः राम शब्द से परब्रह्म का ही अर्थ प्रकट होता है।

एवं—

"कृष्" का अर्थ है होना, और "ण" का अर्थ है आनन्द। उनकी एकता ही परब्रह्म है जिसे कृष्ण कहते हैं।

इस प्रकार परब्रह्म के अर्थ में दोनों समान हैं फिर भी रति-युक्त रसिकों में राम कहने से रघुनाथ और कृष्ण कहने से व्रजराजनन्दनकी स्फूर्ति होती है। श्रीकृष्णचैतन्य श्रीकृष्ण-स्वरूप ही हैं अतः उनके दर्शन से श्रीकृष्ण की स्फूर्ति मन में उठती है यह तात्पर्य है। और भी—"हे वरानने ! राम नाम हजार नामों के बराबर है और पुण्यदायक सहस्र नामों को तीन बार पढ़ने से जो फल होता है वह एक बार कृष्ण नाम कहने मिल जाता है।" इस प्रकार राम नाम से कृष्ण नाम अधिक कल्याणकारी है ॥२७॥

मल्ल०—यह ठीक है, हम लोगोंने महाराज की सभामें भी यही निर्णय किया था। इस प्रकार दक्षिण में जो वैष्णव हैं वे स्वाभाविक रूप से राम के प्रति विशेष भक्ति रखते थे क्योंकि वन-गमन के द्वारा पञ्चवटी आदि में राम ने विशेष लीला की है। लेकिन अब इन योगीराज के दर्शन करके वे वैष्णव भी कृष्ण के पक्षपाती होगये हैं।

इस प्रकार कहीं (गीता पाठी के स्थान पर) अन्यन्त मूर्ख होने के कारण बिना समझे अशुद्ध रूप से गीता पढ़ने पर सभी के उपहास का होने पर भी जितना पढ़े उतना ही अधिक रोमाञ्चित एवं अश्रु युक्त होते हुए एक ब्राह्मण को देखकर यह उत्तम अधिकारी है यह सोचकर भगवान् ने उससे पूँछा "जो पढ़ रहे हो उसका अर्थ समझते हो" ? उसने उत्तर दिया—स्वामी जी ! मुझे किसी अर्थ का ज्ञान नहीं है किन्तु जितना पढ़ता हूँ उतना ही मुझे पार्थ के रथ पर बैठे तोत्रपाणि होकर

तमाल के समान श्याम श्रीकृष्ण मुझे देख पड़ते हैं। तब भगवान् ने कहा "आप गीता पढ़ने के उतम अधिकारी हैं"। यह कह कर उससे चिपट गये। तब गीता-पाठ से भी अधिक आनन्द प्राप्त करके "स्वामी जी! आप ही तो वह है" यह कह कर भूमि पर गिर करके प्रणाम करता हुवा अत्यन्त विह्वल हो गया ॥२८॥

सार्व०—यह ठीक ही है, निरन्तर भगवान् के स्मरण के स्फुरण से हृदय निर्मल हो जाता है तब तत्व का स्फुरण होता ही है।

मल्ल०—इसी प्रकार हमारी सभा में भी निश्चय हुआ है। और महाराज! उन गूढ़ पुरुषों ने अनेक बातें बतायीं हैं कहाँ तक वर्णन करूं।

सार्व०—ऐसा ही है।

राजा—(उत्सुकता के साथ) भगवान् के दर्शन कब होंगे? ॥२९॥

(नेपथ्य में) यही दर्शन का समय है, देर मत करो।

राजा—(आनन्द से) भट्टाचार्य! इसने ऐसे मौके से दर्शन के समय की बात कही है कि लगता है श्रीकृष्णचैतन्य जी भी आ ही रहे होंगे।

भट्टा०—महाराज! ऐसा ही लगता है।

राजा—भट्टाचार्य! यह भगवान् श्रीकृष्ण-चैतन्य जी पुरुषोत्तम क्षेत्र में बीज रूप होंगे इनसे अनेक अंकुर फूटेंगे उससे नीलाचल-चन्द्र जगन्नाथ देव की सेवा की परम्परा भी चलेगी।

भट्टा०—यह सत्य ही है! पुण्यात्मा राजा देवों के अंशस्वरूप होते हैं अत: जो आपके मन में आया है वह सत्य ही होगा ॥३०॥

(नेपथ्य में) अरे हां ठीक बिलकुल ठीक है।

राजा—(सानन्द) इस बार भी वही वाणी-शकुन हुआ है। जाओ, देखो, कौन है?

भट्टा०—तीर्थयात्री एक दूसरे से उत्कण्ठा पूर्वक जगन्नाथ-दर्शन की बात कर रहे हैं।

द्वारपाल—(प्रवेश करके) देव! तेजी से दौड़ते हुए कुछ लोग आरहे हैं।

राजा—देखो वे सशस्त्र हैं या निरस्त्र?

द्वारपाल—(जाकर फिर आता है) सभी निरस्त्र हैं।

सार्व०—अवश्य ही देव लौटे आरहे हैं ॥३१॥

पुन: नेपथ्य में—(हरि बोल हरि बोल की मिली हुई ध्वनि)

सार्व०—अरे! यह कौन है, कौन है? सच ही देव आ रहे हैं।

(नेपथ्य में—) आज विधाता हम सब के लिये अनुकूल हो रहा है। उन सभी तीर्थों में इनकी उतनी तृप्ति नहीं मिली अत: यह देखो गतिशील सुमेरु के शिखर के सदृश हमारे यह भगवान गौरचन्द्र समुद्र-तट-वर्त्ति पुरुषोत्तम क्षेत्र में शीघ्रता से ही लौट आये हैं।

सार्व०—महाराज! जब यह गोपीनाथाचार्य जी आनन्द से पुकार रहे हैं तो लगता है कि भगवान् आ ही गये हैं। अत: मैं उनके पास जा रहा हूँ।

राजा—भट्ट! शीघ्रता करो। मल्लभट्ट! अब तुम भी विश्राम करो। मैं भी किसी काम से जारहा हूँ (सब का प्रस्थान)॥३२॥

॥ इति चैतन्यचन्द्रोदयनाटके कुसुसरोवरनिवासी कृष्णदास-कर्त्तृक अनुवादित तीर्थपर्य्याटन नामक सप्तमोऽङ्कः ॥

अष्टम अङ्क

(तब सार्वभौम और जगदानन्द आदि के साथ महाप्रभु का प्रवेश)

श्रीकृष्णचैतन्य—सार्वभौम ! इतनी दूर तक भ्रमण किया परन्तु आप जैसा दूसरा व्यक्ति नहीं दीखा । हाँ रामानन्दराय हैं किन्तु वह तो अलौकिक मनुष्य हैं ।

सार्वभौम—इसीलिये कहा था कि उनसे अवश्य मिल लेना ॥१॥

श्रीकृष्णचै०—कितने वैष्णव देखे, पर वे सब नारायण के उपासक हैं । कुछ तत्ववादी हैं, किन्तु वे वैसे ही हैं, उनका मत ठीक नहीं समझा, और बहुतसे शैव हैं । पाखण्डी-लोग तो बहुत प्रबल हैं ही, किन्तु भट्टाचार्य ! रामानन्द का ही मत मुझे पसन्द है ।

सार्व०—स्वामी जी ! वह तो आपके मत में प्रविष्ट हुए हैं, उन्होंने नया मत थोड़े ही चलाया है । इसके बाद तो हमारा ही मत सर्वशास्त्र सम्मत होने से मान्य होगा ॥२॥

गोपीनाथाचार्य—भट्टाचार्य ! भगवान् के रहने के लिये स्थान का विचार करना है ।

भट्टा०—(धीरे से) राजा ने ही विचार कर लिया है ।

गोपो०—(धीरे से) कहाँ ?

भट्टा०—काशीमिश्र के घर में ।

गोपी०—वाह बहुत अच्छा ! वह तो सिंहद्वार के निकट है । सुख से श्री जगन्नाथ जी के दर्शन हो सकेंगे । (समुद्र-तट से पुरुषोत्तम गाँव में प्रवेश करते हैं)

(तब भगवान् श्री जगन्नाथ का प्रसाद व माला लिये हुये जगन्नाथदेव के पशु-पालक, काशी-मिश्र एवं परोक्षा-पात्र का प्रवेश)

सब—यही तो स्वामी श्रीकृष्णचैतन्य देव हैं (उत्सुकता से निकट जाते हैं)

सार्व०—भगवन् ! यह देखो जगन्नाथ जी के पशुपाल हैं यह श्री-काशीमिश्र जी हैं भगवान् के सर्व कार्याध्यक्ष एवं न्यायाधिकारी।

(काशीमिश्र और परीक्षामहापात्र जाकर दण्डवत् करते हैं)

पशुपालक—(गले में माला डालकर प्रणाम करते हैं) ॥३॥

भगवान्—अरे ! यह क्या ? आप लोग भगवान् के सेवक हैं अतः मेरे पूज्य हैं इसलिये यह उल्टी बात क्यों कर रहे हैं ? (सब को प्रणाम कर आलिङ्गन करते हैं)

पशुपालक—सार्वभौम ! अब भगवान् का दिवस में सोने का (दिवा विश्राम) समय हो गया है, क्या स्वामी जी अब वहीं चलकर रुकेंगे या स्नान आदि करके आयेंगे ।

सार्व०—स्नान करके भगवान् का दर्शन करेंगे ।

काशीमिश्र—तो फिर इधर आइये । (अपने घर ले जाता है)

सार्व०—भगवन् ! यह उन्हीं मिश्र जी का घर है आपके लिये साफ कर रखा गया है । अतः आप यहीं चलें (सब लोग प्रवेश करते हैं) (पशुपालक आदि का प्रणाम करके प्रस्थान) ॥४॥

(तब अनेक उड़िया महाशयों का प्रवेश)

कुछ—उस समय हम लोगों का उतना सौभाग्य नहीं था अतः उन करुणामूर्त्ति देव का दर्शन न कर सके । किन्तु इस समय हमारा सौभाग्य हैकि स्वयं अपने नेत्रोंसे हम सब गतिमान नीला-चल-पति को खोज रहे हैं । (निकट जाते हैं) ॥५॥

सार्व०—यह जनार्दन हैं, अनवसर पर भगवान् के अंगों की सेवा करने वाले अन्तरंग सेवक, यह सोने का बेंत धारण करने वाले पार्षद कृष्णदास हैं, यह लेखन-अधिकारी शिखीमाहाती हैं और ये दोनों इनके भाई हैं। यह दास महा सोआर नामक रसोई के अधिकारी हैं, यह जगन्नाथ जी के परम भक्त हैं। ये उत्तम ब्राह्मण चन्दनेश्वर, मुरारि और हंसेश्वर हैं, यह राज-महा पात्र और स्वभाव से वैष्णव, यह हैं महापात्र प्रहरराज परम भगवद्भक्त, यह प्रद्युम्नमिश्र जी हैं, यह विष्णुदास हैं, ये सब रामानन्दराय के भाई हैं जिनमें यह वाणीनाथ-पट्टनायक हैं। ये उनके पिता भवानन्दराय हैं। यह और सब गौड़-देश निवासी तथा उत्कलवासी हैं, आपके चरणों में इन सब का मन और प्राण स्थित हैं। ये आपको दण्डवत् कर रहे हैं। इनको अपना समझकर इन पर कृपा कीजिये ॥६॥

भगवान्—यह तो हमारी आत्मा ही हैं इन्हें और अपना क्या समझना होगा। विशेष रूप से यह सब तो जगन्नाथ जी के सेवक हैं।

सार्व०—जगन्नाथ जी एवं आप दोनों ही यद्यपि समान रूप से कृष्णचैतन्य हैं, फिर भी वे दारु-ब्रह्म हैं और आप नर-ब्रह्म हैं।

भगवान्—(कान बन्द कर) हे सार्वभौम ! यह तुम्हारी अत्युक्ति कानों को बड़ी कटु लगती है। गुड़ का पाक ज्यादा पक जाने पर अस्निग्ध हो जाता है और स्वाद तीता हो जाता है।

सार्व०—भगवन् ! गौड़देश के रस का पाक तो बड़ा स्वादिष्ट है ही, वहाँ तो आप उत्पन्न हुए हैं।

श्रीकृष्णचै०—रुको रुको ! अब तो जगन्नाथ जी के दर्शन का समय हो गया है।

सार्व०—हाँ ठीक है, चलिये (भगवान् को आगे करके घूमते हैं)

(नेपथ्य में—)

यह देखो आँखों को तृप्त करने वाले परमानन्द रूपी पुरी के ईश्वर, पापियों को दमन करने के लिये दण्डधारण करने वाले श्रीजगन्नाथ जी उदय हो रहे हैं।

सार्व०—(सुनकर) इसके कहने से तो लगता है कि दर्शन का समय हो गया है ॥८॥

श्रीचै०—(मन में) अहो ! मुनीन्द्र माधवपुरीश्वर के शिष्य ही परमानन्दपुरीश्वर हैं, जिनमें कि अपने बड़े भाई विश्व-रूप का समस्त तेज और ऐश्वर्य प्रवेश किया है। वही आये हैं ? अच्छा देव-दर्शन के बाद इसका तत्व जानूँगा।

सार्व०—यह सामने भगवान् के परमानन्दपुरी है आप प्रवेश करें (सब लोगों का दर्शनार्थ भगवान् के साथ प्रस्थान) ॥९॥

(तब परमानन्दपुरी का प्रवेश)

परमानन्दपुरी—(उत्सुकता से) भक्त रूप धारी इन भगवान् का दर्शन कब प्राप्त होगा इस उत्कण्ठा के कारण यह मेरा मन चंचल हो रहा है। बहुत दिनों के बाद आज फल मिलने का समय आया है, पता नहीं मेरे इस भाग्य-वृक्ष में कैसे फल लगें ? (घूमते हैं) हे जगन्नाथ जो ! आपके दर्शन न करके पहले श्री गौरसुन्दर के दर्शन करने जा रहा हूँ, क्षमा करना। आप तो सर्वज्ञ हैं मन की उत्कण्ठा जानते ही हैं। (सामने देख-कर) वे भगवान् यही होंगे, क्योंकि—

श्री जगन्नाथजी के द्वार से भी अधिक मनुष्यों का समूह यहाँ कोलाहल कर रहा है, हट नहीं रहा है। अतः लगता है कि हे धरणि ! तुम धन्य हो तुम्हारे पुण्य से ही प्राप्त वे भगवान् यहाँ विराज रहे हैं, अतः निकट चलूँ। (निकट जाते हैं) ॥१०॥

तब परिजनों के साथ दर्शन के आनन्द से शान्त-चित्त श्रीकृष्णचैतन्य का प्रवेश)

श्रीकृष्णचै०—(स्मरण करके) अरे हाँ! परमानन्द-पुरीश्वर अब आयेंगे ऐसा लग रहा है, भगवान् के दर्शन सुख के बाद कोई अन्य सुख होने वाला है क्योंकि आने वाले सुख का सूचक मन की प्रसन्नता है जो अकस्मात् ही हो रही है। (उत्सुक होते हैं) ॥११॥

पुरीश्वर—(सामने देखकर) इन गौरचन्द्र की जय हो!, यह नीलाचलचन्द्र श्री जगन्नाथ जी के दर्शन-रस के आस्वादन के आनन्द से निस्तब्ध हैं और इनके स्वर्णमणि की शिला के समान सुन्दर वक्ष पर आँसू गिर रहे हैं इनका शरीर लगातार रोमाञ्चित हो रहा है।

श्रीचै०—(सामने देखकर) यहीं हैं क्योंकि आकस्मिक रूप से इनका आना हुआ है। (उठकर प्रणाम करके) स्वामी जी! आप पुरीश्वर हैं?

पुरी०—(हड़बड़ाकर) भगवन् आपके ही दर्शनार्थ उत्सुक होकर मैं वाराणसी से चला आ रहा हूँ।

श्रीचै०—बड़ी कृपा की।

जगदानन्द—(निकट जाकर) स्वामी जी! इधर आइये (बिठाता है)

सार्व०—हे स्वामी जी! यह बड़ा आश्चर्य है कि— इस संसार में जो भी नद और नदी बहते हैं उनमें से किसी का भी समुद्र को छोड़कर कहीं अन्यत्र न तो स्थिति ही है और न तो प्रवेश ही ॥१२॥

(नेपथ्य में—)

संसार में सभी लोग प्रेम से श्रीकृष्णचैतन्य को अलग न मानकर इन्हें श्रीकृष्ण स्वरूप ही मानते हैं। इससे लगता है कि इन्हें भी रस और कला से युक्त भगवान् के रसाचार्य रूप शरीर को स्पष्ट करने के लिये अभेद दामोदर स्वरूप में संन्यासी वेष से युक्त कर दिया है।

सार्व०—इन भगवान् में लोगों की स्वाभाविक रति है, अतः पीठ पीछे भी इनका भगवान होना ही कहते हैं।

श्रीचै०—(सुनकर) दामोदरस्वरूप यह मधुर नाम सुनाई पड़ा है लगता है कोई आरहा है।

सार्व०—भगवान! प्रायः आपके अवतार लेने के पहले और बाद में आपके पार्षद अवतार लेते ही रहते हैं, और समय पर मिलेंगे ही। इसीलिये बहने वाले नद नदी समुद्र में मिलते हैं यह बात कही थी ॥१३॥

(तव दामोदर-स्वरूप का प्रवेश)

दामोदरस्वरूप—(आकाश की ओर देखकर)

हे दयानिधि श्री चैतन्य! खेल खेल में सभी दुःखों को दूर करने वाली, निर्मल, सुगन्धि फैलाने वाली, सभी शास्त्रों के विवाद को समाप्त करने वाली, रस देने वाली, चित्त में उन्माद भर देने वाली, सभी समय भक्ति से आनन्दित होने वाली एवं मादक, माधुर्य की सीमासे युक्त आपकी दया हृदयमें उदय होवे। (यह कहकर निकट जाता है) ॥१४॥

गोपी०—(सामने देखकर, मन में) मैंने सुना हैकि श्रीचैतन्यानन्द के शिष्य, परम विरक्त, भगवान् के भक्त, अति विद्वान् एक दामोदरस्वरूप जी हैं जिनसे गुरू जी ने बहुत कहा कि वेदान्त का पठन पाठन करो परन्तु उन्होंने नहीं किया। अपितु—

वैराग्य के कारण समस्त त्याग करके ही केवल उन्होंने संन्यास ले लिया था किन्तु श्रीकृष्ण के चरण-कमल को रेणु में राग होने के कारण संन्यास आश्रम को धारण करते हुये भी उसे विशेष महत्व नहीं देते हैं।

ये वे ही हैं। अतः भगवान् से निवेदन करूँ। (निकट जाकर) भगवन् यह वही प्रसिद्ध दामोदरस्वरूप जी हैं।

भगवान्—कहाँ है कहाँ है (उत्सुकतापूर्वक निकट जाते हैं)

स्वरूप—(निकट आकर चरणों में प्रणाम करते हैं।)

श्रीचै०—(उठाकर भुजाओं से आलिङ्गन करते हैं) ॥१५॥

नेपथ्य में—ईश्वरपुरी की सेवा से और स्वयं कृष्णभक्त होने से निर्मल हृदय वाले तथा विषयों से विरक्त यह आरहे हैं।

सार्व०—(सुनकर) कोई भगवान् का सेवक आरहा है, कौन है? क्या परीक्षा-महापात्र का कोई प्रतिनिधि है? किन्तु वे तो इतने विरक्त नहीं है।

श्रीचै०—अहा! पुरीश्वर के पास से कोई आरहा है।

सार्व०—देखकर पता लगाऊँ (देखता है)

(तब गोविन्द का प्रवेश)

गोविन्द—(मन में) महाप्रभु की सेवा करने जाओ यह कहकर मुझे ईश्वरपुरी ने भेजा है, अब यहाँ तो आगया हुँ। आगे भाग्य की महिमा का पता नहीं है। (निकट जाकर प्रणाम करके, हाथ जोड़कर) हे स्वामी जी! "मैंने जिस रूप में पहले देखा था उसी से मुझे शान्ति मिल गई है अतः अब दूसरे वेश में नहीं देखूँगा। तुम्हों उनके पास जाओ" यह कहकर पुरीश्वर ने मुझे आपके चरणों में भेजा है ॥१७॥

श्रीचै०—हाँ मेरे प्रति उनका अखण्ड वात्सल्य प्रेम है।

सार्व०—तुम उनके परिचारक हो?

गोविन्द—और क्या?

सार्व०—स्वामिन्! अब्राह्मण को उन्होंने परिचारक कैसे बना लिया?

श्रीचै०—ऐसा न कहो भट्टाचार्य!

भगवान् स्वतन्त्र हैं, उनकी कृपा भी स्वतन्त्र है, उसे कुल जाति आदि की अपेक्षा नहीं रहती है। श्रीकृष्ण ने सुयोधन अन्न प्रसन्नता पूर्वक छोड़कर विदुर का ही अन्न ग्रहण किया था ॥१८॥

सार्व०—ऐसा हो है।

श्रीचै०—पूज्यलोगों के परिचारकों से अपनी सेवा नहीं करानी चाहिये फिर भी उनकी आज्ञा से वैसा ही करना होगा। (उसको स्वीकार कर लेते हैं)

(शीघ्र प्रवेश करके—)

मुकुन्द—स्वामिन्! ब्रह्मानन्द भारती आपके दर्शनार्थ आये हैं कहिये तो प्रवेश कराऊँ।

श्रीचै०—अरे चुप! वे मान्य हैं, मैं ही चलता हूँ।

सार्व०—अलौकिक लोग भी लौकिक व्यवहार करते हैं, उससे उनका अलौकिकत्व ही सिद्ध होता है। गंगा के पृथ्वी पर आगमन से शरीर धारियों को स्वर्ग तक पहुँचा ही देता है।

(भगवान् को आगे कर घूमता है) ॥१९॥ (तब चर्माम्बर-धारी ब्रह्मानन्द का प्रवेश)

ब्रह्मानन्द—(सामने देखकर) यही श्रीकृष्णचैतन्य हैं। क्योंकि सोने के परिघादण्ड के समान विशाल भुजा वाले, कांचन केतकी के समान वर्ण वाले, नये दमनक की माला से शोभित यह सुन्दर गति से चले आरहे हैं ॥२०॥

श्रीचै०—(निकट जाकर तथा उन्हें देखकर भी चर्माम्बर-

धारण अनुचित है यह बताने के लिये, अपना भाव छिपाते हुए) मुकुन्द ! वे कहाँ हैं ?

मुकुन्द—यह हैं ।

श्रीचै०—नहीं नहीं, यदि वे होते तो चर्म्माम्बर धारण करके बाह्यवेश में विशेष आवेश क्यों प्रकट करते ।

ब्रह्मा०—(सुनकर, मन में ही) अरे ! इन्हें चर्माम्बर अच्छा नहीं लगता है । ठीक ही है क्योंकि—

चर्माम्बर आदि वस्तुएँ केवल दम्भ ही को सिद्ध करती हैं, ये वास्तव में लक्ष्य के साधन नहीं हैं । पृथ्वी-पर सीधे चलने वाले सुख से लक्ष्य की प्राप्ति कर लेते हैं । अतः इसका क्या काम ? (चर्माम्बर को त्यागना चाहते हैं)

श्रीचै०—(दामोदर की ओर देखते हैं)

दामोदर—(संकेत समझकर तुरन्त कपड़े देते हैं) ।।२१।। (ब्रह्मानन्द जी पहन लेते हैं) तब श्रीकृष्णचैतन्य निकट जाकर प्रणाम करते हैं) ।

ब्रह्मा०—(भय एवं आदर के साथ) संसार की शिक्षा के लिये आपका यह करना ठीक है किन्तु इससे हमें भय लगता है, अतः यह अनुचित कार्य न करें । देखिये—

नीलाचल की महिमा का, हम जैसे लोग वर्णन नहीं कर सकते हैं, यह अलौकिक है, क्योंकि यहाँ पर इस समय चर और अचर दो रूपों में प्रतीत हो रहे गौर एवं नीलवर्ण वाले दो ब्रह्म स्थित हैं ।।२२।।

श्रीचै०—आपने 'इस समय' यह कहा है अतः अभी अभी आये हुए आप ही गौरब्रह्म हैं, वैसे आपके नाम में भी ब्रह्म शब्द तो है ही ।

ब्रह्मा०—ब्रह्मत्व का निर्णय तो सीमित और असीमित के

निर्णय से ही संभवित है । देखिये ! मैं सीमित हूँ यह तो चर्म के त्याग से सिद्ध ही है ।।२३।।

सार्व०—आपने बिलकुल ठीक कहा ।

ब्रह्मा०—सार्वभौम ! देखो !

सुवर्ण-वर्ण, हेमाङ्ग, वराङ्ग, चन्दन के बाजूबन्दधारी, यह भगवान् के सभी नाम इनमें सार्थक हो रहे हैं । आपके भुजाओं में श्री जगन्नाथ के प्रसाद का चन्दन लगा है अतः मानो जगन्नाथ जी ने स्वयं इन्हें चन्दन के बाजूबन्द पहना रक्खे हैं । देखो—भगवान् के सभी रूप परम-आनन्द देते हैं फिर स्वयं श्रीकृष्ण के रूप का क्या कहना ।

आहा ! जिनके दर्शन-मात्र से मनुष्यों की बाह्य एवं अन्तर वृत्तियाँ लुप्त हो जाती हैं जो साक्षात् प्रगाढ़ आनन्द-स्वरूप ही हैं उन महाप्रभु का रूप देखो । जो आनन्द-प्राप्ति के लिये इसका त्याग कर, हृदय में निराकार का ध्यान करते हैं, मैं समझता हूँ वे कोई भयङ्कर दुर्वासना के चक्कर में फँसे हुए हैं। और भी—

यदि भगवान् का तत्व निराकार माना जाता है तो मनुष्य की ईर्ष्या आदि भी भगवत्तत्व सिद्ध हो जायेंगी । साकार और निराकार का कोई नियम नहीं है किन्तु जो स्वयं परमानन्द है जिससे परमानन्द प्राप्त होता है वह सब ईश्वर-तत्व है यह हमारा मत है ।।२४।।

सार्व०—हे स्वामिन् ! "अभ्यास से आनन्दमय होता है" इसकी व्याख्या में भी ऐसा ही कहा गया है कि यह आनन्द रूप हैं एवं दूसरों को भी आनन्द रूप करते हैं । जैसे अतिधनी दूसरों को भी धन देता है । अतः आनन्दमय का अर्थ है अत्यधिक

आनन्दवाला, लेकिन यदि उसकी कृपा होजाय तो निराकारभावना से हटकर लोगोंकी श्रीमूर्तिमें माधुर्य भावनाही आ जावेगी॥२५॥

विद्वानों ने कहा भी है—निजानन्द-रूपी सिंहासन पर दीक्षित होकर हम अद्वैतियोंके पूज्य बन गये थे कि बलात् किसी गोपियों के शठ लम्पट ने मुझे अपनी दासी बना लिया। (तब दामोदर ने ब्रह्मानन्द से कहा कि स्वामिन्! मैंने आपको निमन्त्रण दे रखा है अतः अब स्नानादि के लिये पधार)

श्रीचै०—हाँ यही ठीक है।

ब्रह्मा०—जैसी आपकी रुचि। (दामोदर आदि कुछ लोगों के साथ प्रस्थान) ॥२६॥

श्रीचै०—सार्वभौम! तुम भी जा सकते हो।

सार्व०—कुछ कहना है।

श्रीचै०—क्या है?

सार्व०—स्वामिन्! अभय दीजिये तो निवेदन करूँ।

श्रीचै०—बिना घबड़ाहट के कहो।

सार्व०—महाराज आपके दर्शन को उत्सुक हैं, आज्ञा हो तो ले आऊँ।

श्रीचै—(कान बन्दकर) सार्वभौम! आप भी यह कहते हैं?

निष्किञ्चन, भगवद्भजन में तल्लीन, भवसागर के पार जाने के इच्छुक मनुष्य के लिये विषयी-लोगों और स्त्रियों को देखना विष खाने से भी अधिक बुरा है॥२७॥

सार्व०—स्वामिन्! यह ठीक है किन्तु वे तो जगन्नाथ जी के सेवक हैं।

श्रीचै०—स्त्री और विषयी लोगों के आकार से भी भय करना चाहिये क्योंकि जैसे साँप से मन में क्षोभ उत्पन्न होता है वैसे ही इनकी आकृति से भी होता है।

यदि ऐसा फिर कहोगे तो मैं यहाँ नहीं रुकूँगा।

सार्व०—(चुप हो जाता है)

श्रीचै०—भट्टाचार्य! बड़ा समय हो या है।

सार्व०—स्वामी की जो इच्छा। (प्रस्थान। ॥२८॥

श्रीचै०—मुकुन्द! मेरे चल जाने के बाद श्रीपाद नित्यानन्द कहाँ गये थे।

मुकुन्द—गौड़ देश को। कह गये थे कि भगवान् के लौटने के समय का अनुमान कर अद्वैत आदि के साथ यहाँ आऊँगा।

गोपीनाथाचार्य—अब तो दो राज्यों का झगड़ा भी समाप्त हो गया है, मार्ग भी सुगम है, जगन्नाथ जी की रथयात्रा भी होने वाली है, अतः उनके आने का प्रवन्ध (सामानादि) पूरा है यदि आपके लौटने का समाचार उतनी दूर पहुँच गया हो अथवा सदेह करना व्यर्थ है क्योंकि—

किरणों से अन्धकार नष्ट करके उदय होने वाले सूर्य या चन्द्रमा का समाचार सं ार में कौन किससे बताता है। लोकोत्तर-वस्तु की तो यह शैली ही है कि स्वयं ही अपने को चतुर्दिक् प्रकट करती है। अतः स्वामिन्! जगन्नाथ जी के सायंकालीन धूप का समय हो गया है। यदि आज्ञा हो……… (आधी बात कह करके कुछ भय का अनुभव किया) ॥२९॥

श्रीचै०—आचार्य! जाइये, धूप दर्शन करिये। मैं भी पुरीश्वर एवं स्वरूप के साथ बात करने जा रहा हूँ। (भगवान् का प्रस्थान)

गोपी०—अरे! भगवान् चले ही गये। तो मैं भी धूप देखकर वहीं मिलूँ। (थोड़ा चलता है) ॥३०॥

(नेपथ्य में)—अखिलेश्वर श्रीजगन्नाथ जी की रथयात्रा को निकट जानकर यह महाराज प्रतापरुद्र आये हैं। मैं अत्र महायती गौरमूर्ति के दर्शनार्थ प्रयत्न करूँ।

गोपी०—अरे ! यह तो भट्टाचार्य की वाणी सुनाई दे रहो है। तो लगता है कि महाराज गजपति भी आगये हैं, ठीक ही है क्योंकि रथयात्रा अति निकट है। तो मैं शीघ्रता से जगन्नाथजी के दर्शन कर आऊँ। (प्रस्थान) ॥३१॥

(भट्टाचार्य का प्रवेश)

भट्टा०—आते ही गजपति ने मुझे बुलाया है इससे लगता है कि श्रीकृष्णचैतन्य के दर्शनार्थ उत्सुक हैं। (घूमकर और देखकर) अहा ! यह महाराज हैं, निकट जाऊँ। (निकट जाता है)॥३२॥

(महापात्रों के साथ राजा का प्रवेश)

राजा—(मन में उत्सुक होकर)

राज्य में मुझे राज-सुख नहीं मिला, अन्य सुखों के भोग में भी अब रुचि नहीं रही है। अब यदि वे भी मुझे दर्शन नहीं देते हैं तो मैं जीवित नहीं रह सकता हूँ।

सार्व०—महाराज मन में चिन्तित से लग रहे हैं कि मैं पास में आगया हूँ, तो भी नहीं देख रहे हैं। अतः स्वयं ही परिचय करूँ। महाराज की जय हो ! जय हो !

राजा—(ध्यान देकर) अरे क्या भट्टाचार्य हैं ? आओ आओ (प्रणाम करते हैं)

सार्व०—(आशीर्वाद देकर बैठ जाते हैं)

राजा—भट्टाचार्य ! आपने क्या भगवान् श्रीचैतन्य से कहा था ? ॥३३॥

सार्व०—क्यों नहीं ?

राजा—क्या आज्ञा हुई ?

सार्व०—अब क्या बताऊँ।

राजा—(दुःखित होकर) आपने स्वयं आकर आनन्द से मुझे नहीं बताया तभी मैं जान गया था, धिक्कार है, आहा !

न देखने योग्य नीच जातियों को प्रेम से देखते हैं पर मुझे नहीं। मुझे छोड़कर सभी पर कृपा करेंगे क्या यही सोचकर भगवान् ने अवतार लिया है ?

(कुछ सोचकर) हाँ सुनो—उन सत्य प्रतिज्ञ की प्रतिज्ञा मैंने जान ही ली है, अब मैं भी यही प्रतिज्ञा कर रहा हूँ कि या तो उनके चरण-कमलों के दर्शन करूँगा या प्राण त्याग दूँगा। (आँखों में आँसू भर आते हैं) ॥३४॥

सार्व०—(मन में) इनका प्रेम तो अत्यन्त चरमसीमा तक पहुँच गया है। क्या करूँ। पुनः जाकर कहूँ तो भी बात नहीं बनती। क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा दृढ़ता और महत्ता से प्रगाढ़ है। इधर इनका उनके प्रति महानुराग भी प्रसिद्ध, बुद्धिसंगत एवं प्रौढ़ होने से हटाया नहीं जा सकता है। अतः इनमें से कोई किसी को जीत नहीं सकता है।

तो अब एक उपाय करूँ। (प्रकाश) महाराज ! शान्त हों, शान्त हों ! आपके मनोरथ को सफल बनाने के लिये एक उपाय है ॥३५॥

राजा—पता हो तो बताओ।

सार्व०—यद्यपि आपका अनुराग रूपी दूत ही सङ्गम करा सकता है फिर भी मेरी युक्ति उसकी सहायिका हो सकती है।

राजा—बताओ क्या युक्ति है ?

सार्व०—(चुपके से) जगन्नाथ के रथोत्सव के अवसर पर जब महाप्रभु नृत्य करके थकावट को दूर करने के लिये निर्जन वन में आनन्दमें मस्त होकर बाह्यज्ञानसे शून्य हो प्रवेश करें तब आप केवल अनुराग को ही दूत बनाकर अकेले ही, राजवेश को छोड़कर, बिना किसी को बताये भगवान् के दर्शन कर लें। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ॥३६॥

राजा—(निश्चिन्त होकर मृदु-स्वर में) भट्टाचार्य ! मैं यहीं करूँगा किन्तु ऐसा करना जिससे आपको छोड़ और कोई यह जान न पाये।

भट्टा०—ऐसा ही ठीक है।

(प्रवेश करके)

द्वारपाल—देव ! राजधानी से दौड़ता हुआ दूत आया है।

राजा—बुलाओ।

द्वारपाल—(तुरन्त जाकर बुला लाता है) देव ! यह है।

राजा—दूत ! घबड़ाहट का क्या कारण है ? ।।३७।।

दूत—देव ! चित्रोत्पला नदी के उधर हजारों लोग इकट्ठे हैं पता नहीं कि तीर्थ-यात्री हैं या शत्रु की सेना ? हंगामा सुनकर ही मैं दौड़ा आया हूँ।

सार्व०—तीर्थयात्री ही हैं अन्यथा पहले ही बात उठती। लगता है यह गौड़-देश निवासी हैं, श्रीकृष्णचैतन्य के परम प्रिय पार्षद हैं। कुछ भी हो परन्तु आज श्रीचैतन्य जी के साथ इन लोगों की बड़ी ही मधुर महागोष्ठी होगी ।।३८।।

(नेपथ्य में कोलाहल)

सार्व०—वे लोग वास्तव में नरेन्द्र सरोवर के तट पर आगये हैं, क्योंकि यह आनन्द का कोलाहल सुन पड़ रहा है।

राजा—सच ही तो।

सार्व०—महाराज ! यदि रुचि हो तो ड्योढी पर चढ़कर तमाशा देखें।

राजा—जैसी आपकी इच्छा। (ड्योढी पर चढ़कर रास्ते को देख) सार्वभौम ! यह कौन है जो महाप्रभु का निर्माल्य लेकर तेजी से तीर्थयात्रियों की ओर दौड़ता चला आरहा है ?।।३९।।

सार्व०—यह भगवान् के प्रिय पार्षद श्रीदामोदर हैं। अद्वैत

आदि प्रिय मित्रों का आगमन सुनकर भगवान् की प्रसाद-माला से पुरस्कृत कर उन्हें लाने के लिये भगवान् ने भेजा है।

राजा—ऐसा ही है। उनमें कोई भगवान् का कृपापात्र है ?

सार्व०—और क्या ? नहीं तो यह कैसे होता ? तो गोपीनाथाचार्य को बुलावें वे सब को पहचान लेंगे ।।४०।।

(विना पर्दा गिरे प्रवेश करके)

आचार्य—मैं यह हूँ। आज्ञा दें क्या करूँ।

राजा—सार्वभौम ! कह दो।

सार्व०—आप इन सब को पहचानते हैं तो हमें भी सब को पहचनवा दो।

आचार्य—ठीक है (बैठ जाते हैं) ।।४१।।

(नेपथ्य में हरि-कीर्तन की ध्वनि)

सार्व०—(सुनकर) यह कीर्तन की ध्वनि मिली जुली ही जब कान में पड़ती है तो अति आनन्द प्रदान करती है। बाद में जब शब्द का ज्ञान होता है तो उसका दूसरा ही रूप हो जाता है। उसके भी बाद अर्थ समझ आने पर तो बिलकुल नया रूप हो जाता है।

राजा—(देखकर) इतनी कीर्तन-कुशलता कहीं नहीं देखी।

सार्व०—यह सब भगवान् चैतन्य की सृष्टि है।

राजा—आचार्य ! जिसे इसने भगवान्की माला दी वह कौन है?

गोपी०—एक एक को बताता हूँ, यह अद्वैत हैं, यह नित्यानन्द हैं ।।४२।।

सार्व०—इन्हें जानता हूँ।

राजा—यह कुछ लोगों के साथ अलग क्यों आरहे हैं ?

सार्व०—मान्य होने के कारण दुसरे का साथ पसन्द नहीं करते।

गोपी॰—यह श्रीवास हैं, यह बक्रेश्वर हैं, यह आचार्यरत्न हैं यह विद्यानिधि हैं।

सार्व॰—इन्हें मैंने बचपन में देखा है।

गोपी॰—यह हरिदास हैं, यह गदाधर हैं, यह मुरारि हैं, यह श्रीवास के भाई हैं, यह गंगादास हैं, यह नृसिंहाचार्य हैं, और यह सब और नदिया वासी हैं। इनको मैंने भी पहले नहीं देखा है, आज्ञा हो तो पूछ आऊँ ॥४३॥

राजा--ऐसा ही करो।

गोपी॰—जैसी आपकी इच्छा (जल्दी से चलकर नेपथ्य की ओर जाकर पुनः वापिस आता है) सार्वभौम! यह आचार्य-पुरन्दर हैं, यह हरिभट्ट हैं, यह राघव हैं, यह नारायण हैं, यह कमलानन्द हैं, यह काशीश्वर हैं, यह मुकुन्द के बड़े भाई वासुदेव हैं, यह शिवानन्द हैं, यह भी नारायण हैं, यह बल्लभ हैं, यह श्रीकान्त हैं, कहाँ तक गिनाऊँ। यहाँ सब यह श्रीचैतन्य के पार्षद हैं, कोई तीर्थ-यात्री नहीं है।

राजा—यह सब जगन्नाथ-मन्दिर को ओर पीठ करके पहले श्री चैतन्य के घर को जा रहे हैं ॥४४॥

सार्व॰—स्वाभाविक प्रेम की यही महिमा है।

राजा—(दुसरी ओर देखकर) अरे! रामानन्द का छोटा भाई वाणीनाथ बहुत सा प्रसाद लेकर तेजी से क्यों भागा भागा निकट जा रहा है?

सार्व॰—यह श्र कृष्णचैतन्य के हृदय को जानता है। इसी से बिना कहे ही महाप्रसाद से सेवा करने जारहा है ॥४५॥

राजा—भट्टाचार्य! मुण्डन और उपवास यह सभी तीर्थों को विधि है। इसका उल्लंघन करके यह लोग प्रसाद कैसे ग्रहण करेंगे।

सार्व॰—महाराज! वह दुसरा मार्ग है। वह भगवान् की अप्रत्यक्ष आज्ञा है और यह तो साक्षात् आदेश है। उसमें भी यह तो भगवान् के द्वारा अपने हाथ से दिया हुआ जगन्नाथ जो का प्रसाद, इसमें तो कोई मत भेद हो ही नहीं सकता।

और भी—मन में ध्यान करने से भगवान् ज्योंहो जिसके ऊपर कृपा करते हैं त्योंही वह सांसारिक-बुद्धि और वैदिक-कर्त्तव्यों को छोड़ देता है।

और! जिससे भगवान् प्रसन्न हों वही करना चाहिये। इस कथन से भी यह भगवान् को प्रसन्न करना ही इनका लक्ष्य है तीर्थयात्रा का फल प्राप्त करना नहीं ॥४६॥

राजा—ऐसा ही है। अच्छा बताओ रथयात्रा कब है? क्योंकि आपकी वह सलाह मेरे मन में गड़ गई है सो एक एक क्षण कल्प के समान प्रतीत होता है।

सार्व॰—परसों है।

राजा—यहाँ कौन है? परीक्षा-महापात्र और काशीमिश्र को बुलाओ। (प्रवेश तथा प्रणाम करके एक मनुष्य 'जो आज्ञा' कह कर चला जाता है, उन दोनों को लेकर आता है और कहता है)—देव दोनों लोग आगये हैं ॥४७॥

राजा—महापात्र जगन्नाथ जी की रथयात्रा में भगवान् चैतन्य के हृदयज्ञ यह काशोमिश्र जो कुछ कहें उसे मेरा आदेश मान कर करना।

महापात्र—जो आपकी आज्ञा।

राजा—मिश्र जो! आ भी चैतन्य जी के मनोनुकूल हर समय चेष्टा करना।

मिश्र—यह तो मेरा अभिष्ट ही है।

राजा—और भी यह जितने भी गौड़ देशीय आये हैं वे लोग

भी जैसे भगवान् का स्वच्छन्दता पूर्वक दर्शन कर सकें ऐसा करना।

दोनों--जो आज्ञा (प्रस्थान) ॥४८॥

राजा—भट्टाचार्य ! आप जाकर इनके परस्पर वार्तालाप को सुनने का आनन्द लें। मेरा भी यदि अधिकार होता भला मैं उस परम आनन्द से वञ्चित कैसे रह सकता था। मैं भी आने वाली रथयात्रा में क्या करना है क्या नहीं इस पर विचार करूँ। (प्रस्थान) ॥४९॥

सार्व०—राजा ने मेरे अभीष्ट की ही आज्ञा प्रदान की है। अतः अब वैसा ही करूँ (गोपीनाथाचार्य के साथ थोड़ा चलकर) अरे ! यह सामने आनन्द को हुङ्कार ही जिनका गम्भीर घोष है, हर्ष रूप वायु से जिसमें नृत्य रूपी तरंगें उठ रही हैं, लावण्य-प्रवाह वाली हरिभक्ति ही जहाँ नदी है ऐसे यह (महाप्रभु) जंगम होकर आज स्थावर समुद्र को नीचा दिखा रहे हैं। अतः निकट चलें। (दोनों निकट जाते हैं) ॥५०)

(तब उपरोक्त प्रकार के सब अद्वैत आदि का प्रवेश)

अद्वैत—(सामने देखकर) पुनः माला लेकर यह कौन आरहा है?

दामोदर—यह भगवान् के अंगरक्षक गोबिन्द हैं।

(प्रवेश करके गोबिन्द माला अर्पित करता है)

अद्वैत—(सादर ग्रहण करता है)

दामो०—यह काशीमिश्र का आश्रम है, प्रवेश करिये।

(अद्वैत आदि प्रवेश करने का अभिनय करते हैं)

सार्व०—अरे ! बड़ा आश्चर्य है—प्रलय-काल में एक छोटे वरगद के पत्ते पर लेटे भगवान् के उदर में प्रविष्ट हुए समस्त ब्रह्माण्डों के समान ही इस छोटे से काशीमिश्र के घर में हजारों लोग प्रवेश करते जा रहे हैं ॥५१॥ (सामने देखकर) अरे !. यह

देखिये—श्रीचैतन्यदेव रूपी अमृत का समुद्र-वाह, अद्वैत रूपी चन्द्रमा के उदय होने से आनन्द की सीमा पार करता हुआ उच्छल तरङ्गों से तरंगित हो रहा है। विकार रहित, उत्कृष्ट रूप से अखण्ड तथा पूर्णानन्द स्वरूप होकर भी यह खण्ड-आनन्द रूपी व्यक्ति से परिपुष्ट क्यों हो रहे हैं ॥५२॥

(तब यथोक्त श्रीचैतन्य एवं पुरीश्वर आदि का प्रवेश)

श्रीचै०—(निकट जाकर नित्यानन्द को प्रणाम करके अद्वैत का आलिंगन करते हैं अद्वैत भी आलिंगन करते हैं)

सार्व०—(देखकर) प्रेम-वन के दो हाथियों के समान, प्रेम के मद से उन्मत्त, जोर जोर से ध्वनि करते हुए, एक दुसरे के करमर्दन में लगे हुए, बहते हुए आँसुओं के द्वारा एक दुसरे को भिगोते हुए अद्वैत और चैतन्य इन दोनों के इस मिलन की जय हो।

सभी—इधर उधर खूब प्रणाम करते हैं ॥५३॥ भगवान्—(आलिंगन स्पर्शन, सम्भाषण आदि से अनुग्रहीत करते हैं) अद्वैत—(अपरिचितों का परिचय कराते हैं किन्तु भगवान् स्वयं ही उनको नाम लेकर सम्बोधित करते हैं)

गोपी०—अरे ! यह तो बड़ा आश्चर्य है।

हे राघव ! तुम्हारा कल्याण हो, हे वासुदेव ! तुम्हारा मङ्गल हो, हे नारायण ! तुम्हारी कुशल हो, हे शिवानन्द ! तुम्हें आनन्द हों, हे शंकर ! प्रसन्न रहो, हे कमलानन्द तथा काशीश्वर ! तुम दोनों का मङ्गल हो, हे श्रीकान्त ! तुम्हारी कुशल हो, हे नारायण ! तुम्हारा कल्याण हो।

(इस प्रकार पहले से अपरिचित व्यक्तियों को भी परिचितों के समान ही नाम ले लेकर मधुर दयायुक्त प्रिय-वाणी से

सम्बोधित कर रहे हैं) यह इनकी ईश्वरता है, अथवा पूर्वजन्म का प्रेम है ॥५४॥

श्रीचै०—आज हमारे लिये बड़ा उत्सव है, कल या परसों दुसरा रथयात्रा नामक जगन्नाथ जी का उत्सव है। यह दोनों उत्सव ही नयनों को आनन्दित करने में समान हैं किन्तु जहाँ अद्वैत प्रकट हो वह उत्सव मुझे आनन्द देता है।

(अद्वैत आदि प्रत्येक को जगन्नाथ जी की प्रसादी माला और चन्दन लगाकर अपने हाथ से थोड़ा थोड़ा प्रसाद देते हैं)

सार्व०—इस समय मुझे निकट नहीं जाना चाहिये। मुझे देखकर रस में अन्तर पड़ जायेगा। यह दो दिन तो बीत हो गये हैं। यात्रा का सामान ठीक करने के लिये राजा ने मुझे नियुक्त किया है। तो अब वहीं चलूँ। आचार्य ! आप यहाँ रुकें। (प्रस्थान) ॥५५॥

गोपी०—(निकट जाकर) महाप्रभु की जय हो।

महापात्र—क्या आचार्य हैं, आइये, अद्वैत को प्रणाम करें।

गोपी०—(प्रणाम करते हैं)

अद्वैत—आप विशारद के दामाद हैं, आपको मैं जानता हूँ।

श्रीचै०—यह स्वयं ही महान् हैं। आचार्य ! वाणीनाथ के साथ विचार कर सब को ठहरा दीजिये।

गोपी०—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

श्रीचै०—वासुदेव ! यद्यपि मुकुन्द मेरे पुराने मित्र हैं फिर भी आज ही मिलने पर भी तुम मेरे सब से पुराने प्रिय मित्र हो ॥५६॥

वासुदेव—(दीनताके साथ) कहाँ बिचारा मैं और कहाँ आप का कृपापात्र मुकुन्द। अतः आयु में छोटा होने पर भी भगवान् की अधिक दिन कृपा पाने से वह मुझ से बड़ा ही है।

श्रीचै०—शिवानन्द ! तुम मुझ में बड़ा अनुराग करते हो यह मुझे पता है।

शिवानन्द—संसार रूपी समुद्र में चिरकाल तक डूबते रहने के बाद कठिनता से तट रूप आप मुझे प्राप्त हुए हैं। भगवन् ! आपको भी दया का सर्वोत्तम पात्र रूप से (मैं) प्राप्त हुआ हूँ। (भूमि पर गिर पड़ता है) ॥५७॥

श्रीचै०—राघव ! तुम मुझे अति प्रिय हो।

(राघव बिना उत्तर दिये ही प्रणाम करता है)

श्रीचै०—स्वरूप ! यद्यपि यह शङ्कर दामोदर के छोटे भाई हैं फिर मुझे.........(बीच में दामोदर को देखने लगते हैं)

दामोदर—नाथ ! मेरा यह बड़ा सौभाग्य ही है। आप अपनी बात पूरी करिये।

श्रीचै०—स्वरूप ! दामोदर के प्रति मेरा आदर के सहित स्नेह है किन्तु शङ्कर को मैं बस प्रेम ही करता हूँ। अतः इसे अपने पास रखो। गोविन्द ! तुम इसकी सहायता करना।

दोनों—जो आपकी आज्ञा ॥५८॥

गोपी०—(शीघ्रता से प्रवेश करके)—स्वामी जी ! आज्ञानुसार सब कर दिया, विशेष रूप से गदाधर का तो यमेश्वर के निकट सब समयों के उपयुक्त वासस्थान मिल गया है।

श्रीचै०—अद्वैत ! यह दुसरे यतीन्द्र के समान तुम्हारे गुरु के प्रियशिष्य पुरीश्वर हैं इन्हें प्रणाम करो।

(अद्वैत प्रणाम करते हैं, तब सभी उसी तरह प्रणाम करते हैं)

श्रीचै०—आचार्य अद्वैत ! 'जो सदा अपने रूप में रहें' इस अर्थ से विकार रहित होने के कारण यह स्वरूप हैं। इन्हें मेरा हृदय ही समझना ॥५९॥

अद्वैत—ऐसा ही होगा। (सब प्रणाम करते हैं)

गोपी०—भगवान्! अब इन्हें विश्राम की आज्ञा दें।

श्रीचै०—आप स्वयं कहें। मैं जाने के लिये कैसे कहूँ।

(अद्वैत आदि का संकेत समझकर प्रस्थान) ।।६०।।

श्रीचै०—स्वामो पुरीश्वर! और स्वरूप! आज मैं पूर्ण हो गया।

स्वरूप—स्वामी! ईश्वर स्वयं पूर्ण होते हुए भी पार्षदों से ही पूर्णता को प्राप्त होते हैं। पूर्ण चन्द्रमा भी किरणों के विना शून्य है।

अतः आओ! सायंकाल हो गया है। आपके बिना पुरीश्वर ने भी भिक्षा नहीं ग्रहण की।

श्रीचै०—ठीक है (प्रस्थान) ।।६१।।

(नेपथ्य में)—जगन्नाथ जी की रथयात्रा देखने के लिये शतधैर्य वाले ब्रह्मा भी अधीर हो उठे हैं, सहस्रनेत्र वाले इन्द्र भी प्रसन्न हो रहे हैं।

गोपी०—(सुनकर) अहो! दो दिन तो एक क्षण के समान बीत गये। भट्टाचार्य जी रथयात्रा की प्रस्तावना कर रहे हैं। तो देखूँ। (थोड़ी दूर चलकर) अरे! आश्चर्य है—सामने साक्षात् तीन वेदों के समान, शिव जी के तीन नेत्रों के समान, तीन देवगङ्गाओं के समान ये तीनों रथ शोभित हो रहे हैं।।६२

(पुनः नेपथ्य में)—आज रथोत्सव का दिन आया है, आज गौर हरि अपने आनन्द में मग्न होकर नीलाचल के अधीश जगन्नाथ जी के सामने नृत्य करेंगे। नृत्य के पश्चात् वे जाती बन में विश्राम करेंगे। अहा! आज ही हम जैसों का मनोरथ पूरा होगा।

गोपी०—महाराज! गजपति का सा स्वर सुन पड़ रहा है।

ध्यान देना चाहिये। (ध्यान देकर) सच में ही यह महाराज ही हैं। भट्टाचार्य के साथ बात चीत करते हुए उत्सुक हो रहे हैं देखूँ जगन्नाथ जी के रथारोहण में कितनी देर है। (देखता है) ।।६३।।

(नेपथ्य में—नगाड़ा बजता है।)

गोपी०—(देखकर) अहा!

समाधि में स्थित लोगों के हृदय के समान तेजस्वी सभी के नेत्रों को आनन्दित करने वाले जगन्नाथ जी उदयगिरि के शिखर पर सूर्य के समान रथ पर आरोहण कर रहे हैं।।६४।।

(पुनः देखकर—)

अद्वैत आदि सभी स्वमित्रों की मण्डली के साथ प्रेम-सिन्धु गौर यतीन्द्र नृत्य कर रहे हैं, स्वरूप आदि मित्र साथ में गा रहेहैं एवं वक्रेश्वर आदि कुछ मित्र आनन्द में मग्न हैं।।६५।।

(नेपथ्य में कोलाहल)

गोपी०—(आनन्द के साथ) गौड़ीय लोगों के द्वारा खेल खेल में बाएँ हाथ से पकड़कर मोटी मोटी रस्सियों के खींचे जाने के बहाने से मानो यह रथ स्वयं स्वेच्छा से ही कभी खड़ा खड़ा ही तेज से दौड़ पड़ता है, कभी कभी धीरे धीरे चलता है, कभी कभी दौड़ता दौड़ता रुक जाता है।।६६।।

(पुनः नेपथ्य में—कीर्तन का कोलाहल)

गोपी०—(देखकर, उत्सुकता से) जगन्नाथ जी के चलने पर गौरहरि आगे से आगे चलने लगते हैं, जगन्नाथ जी के रुकने पर गौर रथ के सामने आ जाते हैं। इस प्रकार एक दूसरे के लिये उत्सुक दोनों, जगन्नाथजी और चैतन्यदेव दोनों कौतुकी भगवान् खेल कर रहे हैं।

(पुन: देखकर) बलगण्डी-मण्डप के निकट जगन्नाथ जी के खड़े हो जाने पर यतीन्द्र ने नृत्य बन्द कर दिया, प्रेमी-पार्षदों के साथ विश्राम के लिये उपवन जाते हुए भगवान् शोभित हो रहे हैं। अत: अब राजा भी गुप्तवेश में वहाँ जांयगे यह भट्टाचार्य के संकेत से पता लगा है। तो मैं शीघ्र निकट पहुँचूँ। (निकट जाता है) ॥६७॥

(तब नृत्यानन्द के अनुभव से स्पन्दरहित, आंखें बन्द किये हुए, नयनों को सुख देने वाले, आंखों के आँसुओं से वक्षस्थल को भिगोते हुए उपवन के मध्यवर्ती मण्डप में बैठकर कमलनाल से भी अधिक सुन्दर चरणों को फैलाकर साक्षात् प्रेमानन्द के समान श्रीकृष्णचैतन्य एवं एक एक वृक्ष से नीचे शान्त बैठे हुए पार्षदों का प्रवेश) ॥६८॥

भगवान्—इसीलिये आनन्द देने वाले तुम्हारे चरण-युगलों का परमहंस भी आश्रय लेते हैं। (इसी को आँखें बन्द किये पुन: पुन: पढ़ते हैं) ॥६९॥

गोपी०—(देखकर) अहा ! नृत्य करते समय इन्हें श्रीकृष्ण के साक्षात्कार का जो आनन्द प्राप्त हुआ है वह ब्रह्मानन्द से भी उत्कृष्ट है क्योंकि यह देखो अब भी उसी आनन्द में मग्न हैं। यही प्रेमानन्द की महिमा है। भगवान् के कहने का तात्पर्य है कि ऊँच नीच सभी शास्त्र पढ़ कर समझ लेने के बाद भी विशेष चमत्कारी होनेके कारण सरासार विवेकी चतुरजन भगवान् के चरण कीही शरण में जाते हैं। वही भगवान् "इसीलिये" ऐसा कह रहे हैं। क्योंकि सार और असार जाननेवाले ही परमहंस हैं भगवान् अपना अनुभव बता रहे हैं कि आनन्द बरसाने वाले चरण(सब ओर देखकर)अरे सभी परम भागवत यहा हैं।

क्योंकि—ये प्रेमावेश से निश्चल, उज्ज्वल तेज से युक्त, सुन्दर शिखा वाले, स्नेह (दीपक के पक्ष में तेल) से परिपूर्ण, तम को दूर करने वाले, शुभ अवस्था वाले (पक्ष में-सुन्दर बत्ता वाले) यह पार्षद शान्त स्थान में जलते हुए मङ्गल दीपों के समान प्रत्येक वृक्ष के नीचे शोभित हो रहे हैं।

अच्छा तो यहीं कहीं छिपकर राजा के आने की प्रतीक्षा करूँ। (वैसा ही करता है) ॥७०॥

(तब राजवेश-रहित, श्वेत वस्त्रधारी राजा का प्रवेश)

राजा—(उत्सुक होकर) अत्यन्त प्रबल भय एवं तर्क को जीत कर, उत्कण्ठा मुझे चञ्चल बना रही है। अरे ! हमारे पैर क्यों रुक रहे हैं। हे भाग्य ! आज तुम्हारा परीक्षा से मेरे प्राणों की भी परीक्षा होगी। मुझे प्राणों का तनिक भी लोभ नहीं है। (धीरे धीरे घूमता है)

गोपी०—(राजा को देखकर) अहो आश्चर्य है।

इनमें तो बस प्रभाव ही एक मात्र राज—चिह्न है, यह सोये हुए वीर रस के समान हैं, आनन्द, शङ्का, भय एवं तर्क इन सब के मेल से यह अपना चरणकमल कठिनता से आगे रख पारहे हैं ॥७१॥

(चारों ओर सभी पार्षद मन में सोचते हैं)

मंगल सूत्र से बँधे हुए हाथ वाले यह राजा प्रतापरुद्र हैं। यह ब्राह्मण तपस्वी का रूप धारण किये हुये निकट क्यों जा रहे हैं। स्वामी जी अवश्य उद्विग्न होंगे। आओ देखें, यह क्या करते हैं।

राजा—धीरे से इधर उधर देखते हुए, अकस्मात् निकट जाकर हिलते हुए भगवान् के दोनों चरणों को बड़ी बड़ी भुजाओं से पकड़ लेता है ॥७२॥

सब—(देखकर) अरे ! यह महान् अनर्थ हो गया । आनन्दावेश में मग्न आँखें बन्द किये हुए प्रभु से अलक्षित रूप में ही पहुँचकर इसने पैर पकड़ लिये तो पता नहीं इसका क्या होने वाला है ?

भगवान्—(अपने आनन्द में ही मग्न, बिना आँखें खोले, बिना जाने ही आलिंगन करके) हे राजन् ! श्रेष्ठ देवताओं के द्वारा भी पूजित श्रीकृष्ण के चरणकमलों को, सब ओर मृत्यु से घिरे रहने पर कौन होश हवाश वाला मनुष्य, नहीं सेवा करेगा । (पुन: पुन: पढ़ते हैं)

गोपी०—(आश्चर्य से) साहस कहीं कहीं दोष सिद्ध होता है पर कहीं कहीं गुण रूप भी सिद्ध होता है । राजाने साहस से जो कर डाला वह सभी मनुष्योंकोतपस्याओंसे भी नहीं प्राप्त हो सकता । (पुन: देखकर) अहो ! जिन भुजाओं एवं वक्ष:स्थल की चोट से बड़े बड़े योद्धाओं की हड्डियाँ चूर चूर होगयीं वही यह राजा भगबान् की भुजाओं में दबकर मत्त-हाथी द्वारा पीसे हुये केले के खम्भे के समान हो रहे हैं । (नेपथ्य में कोलाहल)

भगवान्—(राजा को छोड़कर उस ध्वनि से रथ का प्रस्थान समझकर उसी आनन्दावेश में तुरन्त चल पड़े । (सब लोगों का उन्हीं के पीछे यथोचित रूप से प्रस्थान)

गोपी०—(निकट जाकर) महाराज ! भगवान् चैतन्यदेव जगन्नाथ जी के दर्शनार्थ चले गये । अब आपका यहाँ से चले जाना ही उचित है । (यह कहकर आनन्दावेश में मग्न राजा को लेकर प्रस्थान) (सब का प्रस्थान)

।। इति चैतन्यचन्द्रोदयनाटके कुसुमसरोवरनिवासी कृष्णदास-कर्तृक अनुवादित श्रीप्रतापरुद्रानुग्रह नामक अष्टमोऽङ्कः ॥

नवम अङ्क

(दो किन्नरों का प्रवेश)

पुरुष—प्रिये ! इस वर्ष की रथयात्रा अन्य सभी वर्षों से अधिक सुन्दर देखे पड़ी ।

स्त्री—क्यों ?

पु०—इस वर्ष मूर्तिमान् आनन्द के समान, सुवर्ण-पर्वत के सदृश गौर, यतीन्द्र वेश धारी भगवान् भक्तावतार श्रीकृष्ण-चैतन्य ने इस उत्सव को परम-रमणीय और अति सरस बना दिया ।।१।।

स्त्री०—मेरे जीवन को धिक्कार है । नाथ ! मुझे साथ क्यों नहीं ले गये थे । हाय ! इतना सुन्दर उत्सव मैं नही देख सकी ?

पु०—प्रिये ! अगले वर्ष देखना ।

स्त्री—अगले वर्ष यदि ऐसा हो तभी तो !

पु०—तब तक वे वहीं रहेंगे ?

स्त्री—इसका क्या ठिकाना ? ।।२।।

पु०—मुझे इसका कारण पता है ।

स्त्री—कैसे जाना ?

पु०—एक दूसरे से बात करते हुए उनके हृदयज्ञ पार्षदों के मुख से सुन कर जान लिया ।

स्त्री—क्या बातचीत थी ?

पु०—प्रिये ! सुनो यह भगवान् संसार में तीन प्रकार से कृपा करते हैं ।

स्त्री—तीन प्रकार कैसे ? ॥३॥

पु०—पहले तो दर्शन देकर। दूसरे मन में प्रवेश करके और तीसरे चिन्तन मात्र से प्रकट होकर।

स्त्री—समझा कर बताओ।

पु०—जो पुरुषोत्तम-क्षेत्र जा सकते हैं उन्हें दर्शन देते हैं। देखो प्रति वर्ष अनेक स्थानों से अपरिचित अनेक सहस्रों लोग आकर जगन्नाथ जी के दर्शन की अपेक्षा इन्हीं के दर्शन में उत्सुक रहते हैं ॥४॥

स्त्री—तो फिर ?

पु०—उनमें भी गौड़-देश वासी भगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं। गौड़ीयों में भी उनके अति प्रिय सैकड़ों लोगों को मैंने देखा है जिन्होंने इनका दर्शन नहीं किया है फिर भी बड़े सौभाग्यवान् हैं। जैसे श्री खण्ड देश वासी नरहरि एवं रघुनन्दन आदि अखण्ड भाग्य वाले हैं। उन्होंने प्रभु को पहले नहीं देखा है फिर भी प्रति वर्ष पुरुषोत्तम पहुँचते हैं। ऐसे ही कुलीन-ग्राम के वासी गुणराज के वंशज रामानन्द आदि प्रभु के मित्र और न्यायाचार्य आदि महाविद्वान् व्यक्ति प्रेमानन्द में मग्न हो प्रति-वर्ष ही आते हैं।

भगवान् के नाम वाले न्यायाचार्य जी भगवान् चैतन्य के दर्शन की इच्छा से पुरुषोत्तम क्षेत्र में जीवन भर के लिये ठहरे हैं। यह सब भगवान् के दर्शन रूपी कृपा प्राप्त कर रहे हैं।

जो यहाँ नहीं आ सकते हैं उनके ऊपर दूसरों के हृदय में विराजमान होकर कृपा करते हैं। जिनके हृदय में विराजते हैं वे हैं अद्वैत, नकुल ब्रह्मचारी आदि ॥५॥

स्त्री—कुछ और बताओ !

पु०—अद्वैत के हृदय में प्रवेश करने की बात तो बहुत लम्बी है। उसके बताने में देर लगेगी। नकुल ब्रह्मचारी के हृदय में प्रवेश करने का हाल सुनो—

स्त्री—बताओ, सुन रही हूँ।

पु०—अम्बुगाँव में परम वैष्णव एवं आजन्म ब्रह्मचारी नकुल नामक एक सज्जन रहते थे। एक दिन आनन्द के आँसू एवं रोमाञ्च से भरी उन ब्रह्मचारी की ग्रह से ग्रसित व्यक्ति के समान अवस्था हो गयी। उनके देखने से ही लोगों को यह लगने लगा कि इनके हृदय में श्री चैतन्य का आवेश हुआ है। इसी तरह कुछ दिन बीत गये ॥६॥

स्त्री—तब क्या हुआ ?

पु०—उसके बाद—

अपनी गौर-शोभा से सभी दिशाओं को प्रकाशित करने वाले एवं आनन्द के आस्वाद से जिनके बाह्यवृत्ति का नाश हो गया है ऐसे उन नकुल की लाखों बालक, युवा एवं वृद्ध प्रेम से पूजा करने लगे ॥७॥

स्त्री—तब तब ?

पु०—तब भाग्यवश उसी समय वहाँ पहुँचे श्रीकृष्ण—चैतन्य के एक पार्षद को शिवानन्दकी यह बात सुनकर शंका हुई और उसे देखने की इच्छा हुई। फिर उसने सोचा मैंने तो साक्षात् महा-प्रभु को देखा है अब इन्हें देखने से क्या ? उनके दर्शन में जो आनन्द आता है वह क्या इनके दर्शन में मिलेगा ! फिर सोचा मैं जाकर सब लोगों से बाहर खड़ा रहूँगा। यदि यह मुझे स्वयं समीप बुलाकर मेरा इष्ट-मन्त्र मुझे बताएँगे तो समझूँगा कि वस्तुतः इनमें चैतन्य का आवेश है। यह सोचकर वह अनेक लोगों के चुपचाप पीछे खड़े हो गये। इधर ब्रह्मचारी

उसी आवेश में बोले अरे ! कौन है ! शिवानन्द दूर खड़े हैं बुलाओ, आज्ञा मिलते ही कुछ लोग दौड़े और नाम लेकर बुलाते हुए अति दूर खड़े शिवानन्द को निकट ले गये । बदले में "हे शिवानन्द ! तुमने जो मन में सोचा हैवह सुनो, तुम्हारे मन्त्र में चार अक्षर हैं और उसके देवता गौर-गोपाल हैं" यह सुनकर उसने सोचा कि आवेश की बात ठीक ही है ।।८।।

स्त्री—आर्यपुत्र ! तीसरे प्रकार की कृपा कैसी है ?

पु०—चिन्तन-मात्र से प्रकट होना तीसरी कृपा है। वह भी सुनो—

एक बार उन्ही शिवानन्द के भांजे श्रीकान्त ने अकेले ही पहले पुरुषोत्तम क्षेत्र में आकर भगवान् चैतन्य के चरणों का दर्शन किया। उसी समय कौतूहल वश यतीन्द्र पुरीश्वर आदि के सामने प्रभु ने उससे कहा—दयालु अद्वैत आदि से कहना कि इस वर्ष वे यहाँ न आवें, मैं ही वहाँ आऊँगा, और अपने मामा शिवानन्द से कहना कि मैं पूस के महीने में वहाँ आऊँगा और जगदानन्द के यहाँ भिक्षा ग्रहण करूँगा ।

लौटते हुए श्रीकान्त ने आकर भगवान् के संदेश कह दिये । अद्वैत आदि ने चलने का विचार त्याग दिया । शिवानन्द भगवान् के पधारने की इच्छा से, भिक्षा में लगेगा यह सोचकर भगवान् का प्रिय वास्तुक (वथुआ) साग और केले के खम्भे का गूदा आदि सामान जुटाने लगे ।।९।।

स्त्री—तब उसके बाद ?

पु०—तब अकस्मात् गोदावरी तट से आये रामानन्द के अनुरोध से भगवान् न आ सके ।

स्त्री—तब फिर ?

पु०—तब समय पर साक्षात् नृसिंह के समान, परम योगीन्द्र नृसिंह ब्रह्मचारी, जिनका पहले नाम था प्रद्युम्न-ब्रह्मचारी किन्तु पीछे महाप्रभु ने ही नृसिंह-ब्रह्मचारी नाम रखा था, उनसे शिवानन्द ने कहा— आऊँगा ऐसा कहकर भी भगवान् नहीं आए । बथुए का साग देखकर मन में दुःख होता है ।।१०।।

स्त्री—तो फिर ?

पु०—तब उन्होंने कहा—दो दिन प्रतीक्षा करो मैं ले आऊँगा । यह सुनकर उनके प्रभाव को जानने वाले शिवानन्द ने विश्वास कर लिया । इधर नृसिंह के उपासक होते हुए नृसिंहानन्द उसी समय से समाधिस्थ हो गये । दो दिन बाद शिवानन्द को बुलाकर कहा—श्रीचैतन्य को मैं राघव के घर ले आया हूँ, प्रातःकाल यही आएँगे । भिक्षा मैं ही पकाऊँगा और मैं ही दूँगा । यह सुनकर शिवानन्द ने भी सभी पदार्थ वहीं इकट्ठे किये और नृसिंहानन्द स्वयं स्नान करके पवित्र हो रसोई बनाने लगे । स्वेच्छा से यथेष्ट ही बनाया और बाद में उसी समय श्री चैतन्य, श्रीजगन्नाथ और श्रीनृसिंह के तीन भोग लगाये गये । उसके बाद उन्हीं के नाम से समर्पित करके बाहर आकर, आँखें बन्द कर भीतरी नेत्र से देखा कि भगवान् चैतन्य ही तीनों भोग ग्रहण कर रहे हैं । बाद में आनन्द के आवेश में उनकी आँखों से आंसू निकलने लगे, मानों प्रेम के क्रोध से भर्त्सना करते हुए कहने लगे । बहुत अच्छा ! भाई जगन्नाथ जी और तुम एक हो तो उनका भोजन खालो, मेरे नृसिंह का भोजन क्यों खा रहे हो ? "आज मैंने नृसिंह को भूखा रखा" यह कह कर जोर जोर से रोने लगे । शिवानन्द ने पूछा क्यों रो रहे हो ? ।।११।।

स्त्री—तब ?

पु०—तब उन्होंने कहा—तुम्हारे गोस्वामी चैतन्य ने तीनों भोजन खा लिये हैं, और नृसिंह को उपवास हो गया है।

स्त्री—तब ?

पु०—तब शिवानन्द ने कहा—नृसिंह के दूसरा सामान बना ली जाय। तब दुबारा भोजन देकर ही वह स्वस्थ हुए। इस पर शिवानन्द को सन्देह हुआ कि इन्होंने यह सब आवेश के वशीभूत होकर कहा है अथवा सच है यह मन में सोचकर, दूसरे वर्ष पुरुषोत्तम में जाकर भगवान् चैतन्य के पास पहले पहुँचे। बातचीत के बीच में नृसिंहानन्द की महिमा के अन्दर भोजन वाली बात पर भगवान् ने कहा कि वे भोजन अच्छा बनाते हैं। इस पर भी विश्वास न होने से उन्होंने कहा कि पिछले पूस के महीने में मैंने उनकी भिक्षा ग्रहण की थी इसलिये कहता हूं कि वे अच्छा भोजन बनाते हैं। इस पर भी सबको सन्देह बना ही रहा पर शिवानन्द का सन्देह समाप्त हो गया।

तो मैंने तुम्हें तीनों प्रकार की कृपायें बता दीं ॥१२॥

स्त्री—अहो ! बड़ा ही आश्चर्य है ! अच्छा उन रामानन्द ने उन्हें जाने से क्यों रोका यह बताओ ?

पु०—प्रिये ! वह रामानन्द भगवान् के अधिक प्रेमी हैं अतः प्रभु का वियोग सहन नहीं कर सकते हैं। इसलिये उनके अनुरोध पर भगवान् मथुरा जाने के इच्छुक होकर भी आज कल करते-करते दो वर्ष बिता दिये ॥१३॥

पु०—अब यहीं रुकेंगे या मथुरा जायेंगे।

पु०—प्रिये ! इस समय रामानन्द से अति प्रार्थना करके आज्ञा ले गौड़देश जाने की तैयारी में हैं ॥१४॥

स्त्री—आर्यपुत्र ! क्या वे यहाँ फिर आयेंगे ?

पु०—हाँ आयेंगे।

स्त्री—इसमें सन्देह है क्योंकि मथुरा इनका प्रियस्थान है।

पु०—यद्यपि प्रिय है फिर छोटे से छोटे प्राणी को तारने की इच्छा से अवतीर्ण जगन्नाथ जी के भार को कम करने के लिये पुरुषोत्तम श्री चैतन्य पुनः पुरुषोत्तम क्षेत्र में आयेंगे ॥१५॥

स्त्री—हाँ हो सकता है।

(नेपथ्य में) भट्टाचार्य ! रामानन्द ने इसकी अनुमति कैसे दे दी ?।

पु०—प्रिय ! सुना, जो मैंने कहा था। वही उनके विरह से व्याकुल महाराज गजपति भी सार्वभौम से कह रहे हैं। तो हम लोग भी श्री जगन्नाथ जी के यहां गाने चलें। (दोनों का प्रस्थान) ॥१६॥

प्रवेशक

(तब आसन पर बैठे राजा एवं सार्वभौम का प्रवेश)

राजा—सार्वभौम ! रामानन्द के आग्रह की गाँठ ढीली करते हुए ही भगवान् गये हैं।

सार्व०—ईश्वर के साथ क्या अधिक हठ हो सकता है ? फिर भी दो वर्ष रुके रहे ॥१७॥

राजा—रामानन्द ने बड़ा उपकार किया है। क्योंकि करुणामय उन भगवान् को राजधानी से लाकर मुझे दर्शन कराये, कठिनता से उपलब्ध होने वाला उनके चरणों का स्पर्श मुझे सरलता से सुलभ हो गया। कानों के लिये मधुर पेय-स्वरूप उनकी वाणी के अमृत का पान भी कृपा पूर्वक पिलाया। जो बड़े प्रयत्नों से भी हुआ था वह सब अकस्मात् हो गया है फिर भी अतः करण शून्य लग रहा है ॥१८॥

सार्व०—महाराज ! रामानन्द एक परम भागवत हैं। श्रीमद्भागवत में कहा है कि जिन्होंने प्रेम की रस्सी से भगवान् के चरणों को हृदय में बाँध रखा है वही परम भागवत हैं। इन रामानन्द के प्रेम में भगवान् वशी-भूत हो गये थे इसीलिये भगवान् ने आपके ऊपर करुणा की थी।

राजा—रामानन्द साथ में कितनी दूर जायेंगे ?

भट्टा०—सुना है भद्रक तक।

राजा—स्वामी के साथ कितने लोग चले हैं ? ॥१६॥

सार्व०—पुरीश्वर, दामोदर, जगदानन्द, गोपीनाथ, गोविन्द यहीं पाँच छः लोग हैं।

राजा—हाय !

यद्यपि जगत् के स्वामी, परम तेजस्वी, सिंहासनासीन श्रीजगन्नाथ जी शोभित हो रहे हैं फिर भी भगवान् श्रीचैतन्यदेव के उत्तर दिशा की ओर चल देने पर तीनों लोक शून्य हो रहे हैं।

सार्व०—विशुद्ध प्रेम का यही स्वरूप है।

राजा—हमारा कोई आदमी उनके साथ नहीं गया ? ॥२०॥

सार्व०—राजन् ! आप प्रेम के कारण ही यह कह रहे हैं क्योंकि यद्यपि वे किसी राज-पुरुष की आवश्यकता नहीं समझते हैं फिर भी आपकी सीमा में आपका आज्ञा-पत्र लेकर कोई पहले ही पहुँच गया है। वह सब काम कर देगा।

यथा-हर पड़ाव पर पहले से ही नये निवास स्थान बनाकर, हर वासस्थान में सभी सामग्री जुटाकर, प्रत्येक स्थान पर पूर्व नियुक्त लोगों के द्वारा स्वागत करते हुए पैदल चलने की थकावट दूर करेगा। भगवान् यही समझेंगे कि रामानन्द का किया हुआ है ॥२१॥

द्वारपाल—(प्रवेश करके) रामानन्दराय द्वार पर आये हैं।

राजा—तुरन्त ले आओ।

द्वार०—(जो आज्ञा कहकर जाकर ले आता है)

रामा०—(निकट आकर प्रणाम करते हैं)

राजा—(सादर बैठाकर) कहो भगवान् के पीछे २ आप कहाँ तक गये ?

रामा०—'यहीं यहीं से लौट जाओ, प्रभु के यह बार बार कहने पर भी भद्रक तक गया था। किन्तु लौकिक व्यवहार का त्याग बहुत कठिन है ॥२२॥

हाय ! परम दीनों के उद्धारक उन करुणा-सिन्धु को छोड़कर आपके भय से आ गया हूँ। आहा ! मेरा वहाँ शरीर क्यों नहीं गिर गया। ओह ! मेरा शरीर बज्र से भी कठोर पदार्थ का बना है। (आँसू बहाता है) ॥२३॥

सार्व० रामानन्द ! तुम बड़े धैर्यशाली हो इस प्रकार क्यों दुःखी हो रहे हो। ईश्वर ऐसी लीलायें करते ही हैं। ब्रजवासियों को छोड़कर मथुरा गये फिर वहां से भी द्वारिका गये फिर वहाँ से भी कहीं चले गये। वहां के निवासियों ने उनका वियोग कैसे सहा ? यद्यपि भगवान् का विरह दुःसह है फिर भी वहीं सहन करेंगे, अतः पश्चात्ताप न करो। तुम्हें तो राजा को सान्त्वना देनी चाहिये, या स्वयं अपना रोना है तथा रोकर उन्हें दुःखी करना है ? ॥२४॥

राजा—कहो—

रामा०—आपकी सीमा तक आपके लोग जायेंगे उसके बाद मार्ग जानने वाले हमारे लोग गौड़-देश तक जायेंगे। उनमें से कुछ थोड़ी दूर से ही लौट आयेंगे।

द्वारपाल—(प्रवेश करके) महाराज के पीछे चलने वाले जो

राय जी के लोग थे उनमें से कुछ लोग आये हैं।

राजा—तब ?

द्वारपाल—(बुला लाता है) ॥२५॥

पु०—(प्रवेश कर) महाराज की जय हो !

राम०—कहो तुम लोग कहाँ तक साथ गये थे ?

पु०—कुलिया गाँव तक।

राजा—(सार्वभौम को ओर देखते हैं)।

सार्व०—नवद्वीप के उस पार गङ्गा के किनारे यह एक गाँव है।

राजा—प्रारम्भ से बताओ।

पु०—यहाँ से आपको सीमा तक आपके प्रभाव से ही सभी विघ्न नष्ट हो जाने से बिना किसी चक्कर के रास्ता कट गया। किन्तु गौड़ देश की सीमा में प्रवेश करने के तीन मार्ग थे, उनमें दो बन्द थे और एक में जल भरा था। भगवान् जल-वाले मार्ग से ही चल पड़े। वहाँ का सीमाधिकारी सभी को हृदय के घाव के समान कष्ट देने वाला, महाशराबी, दुराचारियों का सरगना, तुरुष्क कुद्ध होकर इधर से जाने वालों की दुर्गत कर देता है यह सुनकर सब बहुत डर रहे थे, किन्तु महाप्रभु से कोई कह नहीं रहा था। हमारे सीमाधिकारी ने कहा कि यहाँ कुछ देर रुको, तब तक मैं इससे सन्धि किये लेता हूँ। इसी समय उधर का एक आदमी आ पहुँचा ॥२६॥

राजा—तब फिर ?

पु०—आकर उसने कहा कि यदि तुम्हारी अनुमति हो तो तुम्हारे देश से आने वाले श्रीकृष्णचैतन्यदेव का मैं दर्शन कर लूँ ॥२७॥

राजा—तब तब ?

पु०—तब इसने कहा कि तीन चार लोग यदि आ सको तो आओ। यह सुनकर वहीं आकर भगवान् के परों के समीप भूमि पर गिर कर देर तक प्रणाम करता रहा। तब सबने कहा कि भगवन्! इसकी सहायता से सुख-पूर्वक जाया जा सकता है। इस पर कृपा-दृष्टि कीजिये। उसके अनुरोध से उस पर कृपा दृष्टि डालने से वह यवन रोमाञ्चित और अश्रु-युक्त होता हुआ ग्रह-ग्रसित की भाँति आविष्ट हो गया। तब गोपीनाथाचार्य ने उससे कहा कि यह महाप्रभु जी सुख पूर्वक कैसे जा सकते हैं ? उसका उपाय करो।

राजा—तब ?

पु०—तब उसने पूछा—आप लोग कितनी दूर जायेंगे ? तब गोपीनाथ ने कहा अभी पानीहाटी तक जाना है।

राजा—तब ?

पु०—तब, रोमाञ्चित होकर आँसू बहाते हुए गद्गद-स्वर में बोला कि मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मैं देव की सहायता करूँ। तुरन्त ही सज्जन मल्लाहों वाली एक नई नाव जिसके बीच में एक घर सा बना था, फिर से धोकर नदी में डाल दी गई। बाद में स्वयं एक दूसरी नाव पर चढ़ कर बोला—हे भगवन्! आप सब सवार हों। सभी लोग उस पर चढ़ गये, बाद में जलचारी डकैतों से रक्षा के लिये स्वयं आगे होकर मन्त्रेश्वर नदी को पार कर पिच्छलदा गाँव तक आया। लौटते समय भगवान् ने मनोहर नामक लड्डू जगन्नाथ जी के प्रसाद के रूप में दिये। उन्हें पाकर हरिबोल हरिबोल कहकर महाभागवत दशा में आ गया ॥२८॥

राजा—(चकित होते हैं)

सार्व०—ईश्वर की ऐसी ही लीला होती है। क्योंकि ईश्वर

स्वतन्त्र हैं, वह अनुपयुक्त स्थान पर अति कृपा दिखा देते हैं, और उपयुक्त स्थान पर भी वे बड़ी उदासीनता दिखाते हैं। रामचन्द्र जी ने गुहक को अपना सखा बना लिया और ब्रह्मा के स्तुति करने पर भी श्रीकृष्ण चुप ही रहे। ।।२६।।

पु०—भगवान् के आदेश से 'हरि बोल' का कीर्तन करते हुए मल्लाहों ने इस प्रकार नाव चलाई की एक ही दिन में हम सब पानीहाटी पहुँच गये।

राजा—वहाँ कौन है ?

सार्ब०—राघव पण्डित।

पु०—तब जो कुछ हुआ वह आश्चर्य जनक है।

राजा—कैसे ?

पु०—देव ! महाप्रभु गंगा के तट तक पहुंच भी नहीं पाए थे कि क्या कहूँ सारा स्थान मनुष्यों से घिर गया। पता नहीं बालू के कण ही मनुष्य-रूप में आगये थे, या आकाश के तारे ही मनुष्य-रूप में पृथ्वी पर उतर आये थे। तो बड़ी कठिनता से देव गंगा तट से उनके घर तक पहुँचे ।।३०।।

राजा—तब फिर ?

पु०—तब उस रात्री को वहीं बिताकर दूसरे दिन नाव मार्ग से ही चल पड़े। बाद में लगातार शुभ प्रवाह से युक्त, चंचल लहरों के समान हाथ वाले, विष्णु के चरणों में अनुरक्त आकाश से उतरने वाली लोगों की पंक्ति गंगा के समान शोभित हुई। तब कुमारहद में श्रीवास पण्डित के घर गये। गंगा तट से घर तक जहाँ जहाँ भगवान ने पैर रखा था, वहाँ वहाँ चरण धूलि लेने के लिये अनेक लोगों ने हाथ लगाया। जिससे प्रायः पूरे रास्ते में गड्ढे ही गड्ढे हो गये। वहाँ भगवान् के उतरते ही जगदानन्द जी भगवान् से छिपकर

शिवानन्द के घर चले गये। प्रेम वश भगवान् श्रीवास के यहाँ देर तक रुके रहेंगे, उन्हें यहां ले आना है यह सोचकर घर को सजाया भी। उधर प्राचीर के ऊपर और पेड़ की हर डाल पर, पृथ्वी पर, सड़क पर, गली में, सब कहीं खड़े होकर लोग 'हरि बोल' कहकर कोलाहल करने लगे। इसी समय भगवान् नाव पर चढ़कर शिवानन्द के घर की ओर चल पड़े ।।३१।।

इधर जगदानन्द ने मार्ग के दोनों ओर के खम्भ, जल-पूर्ण कुम्भ, पल्लव, दीपकावली आदि से शिवानन्द के घर तक के मार्ग को खूब सजाया। तब भगबान उस मार्ग में पहुँच कर, बाईं तरफ वासुदेव के घर के रास्ते को भी वैसा ही देख कर आगे इधर जाऊँ या उधर जाऊँ, यह सोच विचार करने लगे। तब वासुदेव ने कहा भगवन् ! पहले शिवानन्द के घर को सुशोभित करें। यह सुनकर भगवान् के वहाँ जाने पर जगदानन्द ने पैर धोये। तब शिवानन्द के पूजा गृह में पधारे। इधर जगदानन्द ने भगवान् का थोड़ा चरणोदक घर के ऊपर डालकर, कुछ अन्तपुर के लोगों को दे दिया। कुछ देर ठहर कर वासुदेव के घर आकर थोड़ा रुक कर पुनः नाव पर सवार हो अपने चरणोदक लेने के लिये गले तक पानी में खड़े लोगों की उत्सुकता देखकर भगवान् ने इतनी करुणा की कि सब को चरणोदक मिल गया। तब सभी लोग किनारे किनारे चलने लगे कोई लौटा नहीं ।।३२।।

राजा—तब ?

पुरुष—तब अद्वैत का घर आने पर हरिदास ने चरण वन्दना की। नाव के रास्ते से ही नवद्वीप के पार कुलिया नामक गाँव में माधव-दास के घर पर उतरे। नदिया के लोगों पर कृपा करने के लिये सात दिन वहाँ रहे। वहां नदिया से इतने लोग

आने लगे कि नाव का किराया जो प्रति व्यक्ति पर एक काकिणी था (पांच गण्ड) थी वह क्रम से बढ़ती एक कर्षापण (काहन) से भी अधिक हो गया ।।३३।।

और रात्रि में सुदृढ़ और लम्बे बांसों से जो पुल बांधजाते थे वह लोगों की भीड़ के धक्के से प्रातः काल ही चूर चूर हो जाते थे। इस प्रकार पूरे सप्ताह भर श्री चैतन्य के दर्शन के लिये उत्सुक मनुष्यों की इतनी भीड़ हुई कि स्वयं ईश होते हुए भी वे गङ्गा स्नान करने में समर्थ नहीं हुए। इस तरह वहां सात दिन रहकर तट के रास्ते से ही चल पड़े। यह देव जहां जहां पहुँचे, समाचार पाने के पूर्व ही, वहीं वहीं लोग पहुँच जाते थे। वहां वहां की भूमि भी कुछ झुक कर शेषनाग को चकित कर देती थी।

सुना है-गौड़ेश्वर की राजधानी से गङ्गा के पार जाते हुए भगवान् के पीछे पीछे दोनों ओर चलती हुई भीड़ को देख-कर, गङ्गातट पर अपनी चन्द्रशालिका (टेन्ट) में बैठे हुए गौड़-श्वर ने चकित होकर केशव नामक अपने अमात्य से जब पूछा कि यह क्या है ? तब उसके मन्त्री ने बताया कि महाराज ! श्रीकृष्णचैतन्य नामक कोई महा पुरुष पुरुषोत्तम क्षेत्र से मथुरा जा रहे हैं। उन के दर्शनार्थ ही यह लोग चल रहे हैं। तब राजा ने कहा कि यह साक्षात् ईश्वर हैं क्योंकि इतने लोगों को आकृष्ट कर रहे हैं। आगे सुना है कि कुछ दूर जाकर भगवान् लौट आये हैं। अब उस रास्ते से मथुरा नहीं जायेंगे। अपितु पुरुषोत्तम क्षेत्र आकर बन मार्ग से जायेंगे। पता नहीं सच है या नहीं ? ।।३४।।

(नेपथ्य में)—सत्य है, सत्य है। वह अकेले लौट आकर श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन करके लोगों की भीड़ के भय

से गुप्तरूप में वन-मार्ग से मथुरा चले गये।

राजा—(आश्चर्य से) यह तो काशीमिश्र का सा स्वर है। बुलाइये ।।३५।।

काशीमिश्र—(प्रवेश करके शीघ्रता से) यह मैं बिना बुलाए ही आ गया।

राजा—कहो क्या बात है।

काशी०—सच हां लोगों के भय से वहां से लौट कर यहां से भी बिना किसी के जाने हुए ही चले गये।

राजा—हम लोगों के हृदय में तो उनके वियोग का समान रूप से विद्यमान है। अतः सब का एक मार्ग है किन्तु वे तो अकेले हैं उनकी क्या दशा होगी ?

काशी०—भिक्षा प्रबन्ध के योग्य कुछ ब्राह्मण भेज दिये हैं किन्तु भगवान् को पता नहीं है।

राजा—वाह मिश्र ! वाह। कुछ कह गये हैं ?

काशी०—यही कि मैं शीघ्र आऊँगा ।।३६।।

राजा—आह ! वह कौन दिन होगा ? पैदल चलने वाले कुछ लोग भेज दो जिससे भगवान् का समाचार मिल जाये ।।३७।।

सार्व०—यह ठीक है।

राजा—काशीमिश्र ! महापात्र चन्दनेश्वर को मेरी ओर ऐसा करने की आज्ञा दे दो।

काशी०—देव ! परीक्षा—महापात्र से कहकर मैंने इसकी व्यवस्था करली थी। कुछ लोग तो लौट रहे होंगे।

द्वार०—(प्रवेश करके) महाराज ! महाप्रभु का समाचार लाने वाले द्वार पर उपस्थित हैं।

राजा—बुलाओ।

द्वार०—(बुलाता है) ।।३८।।

(समाचार लाने वाले प्रवेश करके महाराज की जय हो! जय हो कहने लगे)

राजा—बताओ क्या जानते हो ?

वार्ताहर—सब कुछ जानते हैं। महाप्रभु की मथुरा-स्थिति इस प्रकार है—

मथुरा-नगरी महा-सुख की गागरी देखी,
गयो वृन्दाबन चिदघन शोभा तरि है।
यमुना तट कुंजन माँह निज लीला स्मरि,
उपनीत गोवर्द्धन मधि गौर हरि हैं।
कुंजन में रमि रमि वन वन माँह भ्रमि,
सुख से बिताये दिन महा प्रेम भरि है।
गोवर्द्धन गिरि-वन मधि जो जो सुख लह्यौ,
कोटि मुख से वर्णन शेष जु न धरि है ॥३८॥

वृन्दाबन की शोभा देखकर, यमुना के तट पर कुञ्जों में घूम कर महाप्रभु मथुरा से लौट पड़े हैं। हमने उन्हें रास्ते में देखा है।

राजा—अरे! वृन्दाबन में महाप्रभु ने क्या किया वह जानते हो ? ।

वार्ता०—क्यों नहीं ? उनके साथ जो भाग्यशाली लोग लौटकर आये हैं उनके मुख से सुना है ॥३९॥

राजा—कहो !

वार्ता०—यद्यपि जन्म से ही महाप्रभु निजानन्द समूह के विकारों को तीव्रता से प्रकट करते थे, फिर भी वृन्दाबन के निकट आते समय वे तरङ्गें इतनी बढ़ गईं कि वे सब मन और वाणी के अगोचर हैं। क्योंकि—कहीं तो यमुना के किनारे वन की शोभा को देखते देखते मुक्तकण्ठ से कुछ बोलते हुए वे महाप्रभु प्रत्येक

लता एवं प्रत्येक वृक्ष से भुजाओं द्वारा लिपट २ कर विलाप करते हैं—

और कहीं गायों के समूह को देखकर आनन्द से उन्मत हो आँसू बहाकर गिर २ पड़ते हैं। जैसे बहती हुई गंगा से युक्त हवा से सुमेर पर्वत का किनारा वायुवेग से गिर-रहा है ॥४०॥

कभू जमुना के तट कानन की शोभा हेरि
मुक्त कंठ ह्वै के महाभाव दरशाये हैं
प्रति लता प्रति तरु को रुचिर भुजाओं से
आलिङ्गन देत विलपत सरसाये हैं।
गोगण देखि के परानन्द विवशित ह्वै के
मन्दाकिनी भाँति अश्रुधारा बरसाये हैं
पवन वेग से भग्न सुमेरु तटान्त वन
भाँति धरणि पतित प्रेम मूर्छा खाये है ॥४०॥

राजा—और ?

वार्ता०—तब उन लोगों ने बताया कि—

कहीं पर अकस्मात् मत मोर की गर्दन की शोभा देखकर कभी धरती में गिर गिर कर लोटते हैं, कभी काँपते हैं रोते हैं, द्रवित होकर दुःखी होते हैं और हाय ? कभी भगवान् वे मूर्च्छित हो जाते हैं।

और कभी वे वन में पूंछ उठाकर दौड़ते हुए गौ बछड़ों को देखकर कांटों वालों रास्तों में चोट खाकर इधर उधर गिर पड़ते हैं ॥४१॥

मदमुदित मयूर कंठ शोभा निरखि के
अचानक भूस्खलित लुण्ठित ह्वै जात हैं
कंपजुत चित्कार करत बार बार बहु
कभू द्रवचित्त कभू महामूर्च्छा खात हैं।

कभु धावमान गोवत्सगण को निरखि के
धरणि में निपतित गात पलपत हैं
कंटकावलि से अंग प्रत्यंग क्षत विक्षत
होत जात जग कांत चित्त वहु घात हैं ॥४१॥

राजा—और ?

वार्ता०—और एक बार कुञ्ज के पास मूर्छित होकर जब प्रभु पृथ्वी पर गिर पड़े, तो हिरण उनके मुँह के फेना और पक्षी-गण आँखों के आँसू पोने लगे।

एक बार गिरते गिरते देव गोवर्धन की गुफा में पहुँच गये। उन्हें अनुराग रूपी अमृत के समुद्र में मग्न होने के कारण पत्थर पर गिरने से लगी बाहरी चोट का पता ही नहीं चला।

बन-बन, कुञ्ज कुञ्ज देखते हुए अनुराग के कारण जब प्रभु रोते थे तो मानो साथ में लतायें तथा वृक्ष भी रोने लगते थे। पशु पक्षी मानों मूर्छित हो जाते थे। और भी जब देव मेघ के समान धीर और गंभीर करुण-स्वर में रोते थे तो कभी कभी नाचना बन्द करके मयूर आँसू भर भर कर देर तक इनके साथ में रोने लगते थे।

इतने प्रगाढ़ अनुराग में केवल ईश्वर होने के कारण ही जीवित बचे हुए। उन्हें देखकर पुण्यशाली बलभद्र-भट्टाचार्य आदि "अरे! यह तो महा-अनर्थ आपड़ा' यह सोचकर जबर्दस्ती वृन्दावन से भगवान् को बाहर ले आये। इसलिये महाप्रभु वृन्दावन में बहुत दिन नहीं रुके।

कभू कुंज सीमा माँह धरिण में मूरछित
निपतित देखि मृगीगण घेरी जात है
मुख निरगत फेनन को पान करत है
पक्षिगण नेत्रवारि मोद भरि पात है।

कभू गोवर्द्धन भूमि तलन में गिरि करि
भग्न अंग नहिं मनोवेदन अघात है
अहो अनुराग डोरी वश ह्वै के गौरहरि
वृन्दावन मधि प्रेम सागर बढ़ात है ॥४२॥

प्रतिवन प्रतिकुंज माँह मुक्तकंठ ह्वै के
बिलाप करत महा-प्रभु गौरहरि है,
मानो तरु-लता सब रोदन करत वहु
पक्षि रु हरिण मूरछित वन भरि है।

मेघ भाँति कंठध्वनि करें जब जब प्रभु
शिखीगण नृत्यत्यागि रोवें प्रेम धरि है
पाछे पाछे विलाप करत वहु घेरि घेरि
घनी भूत सान्द्रानन्द प्रभु आगे करी है॥

आनन्द वृन्द के कन्द महाप्रभु गौरचन्द्र
प्रेम को विकार वहु जन्म से दिखाये हैं
वृन्दावन गमन में परार्द्ध गुणित वह
तरंगायित वर्द्धित करिके लिखाये हैं।

जगजीव हम सब के चित रु वाणिन रु
प्रवेश न करें वर्णन में जो सिखाये हैं
ब्रह्मा-अज-शिवादि देवता सब हेरि हेरि
पुलकित ह्वै के वहु चमत्कार खाये हैं ॥४२॥

फिर जो पहले प्रियतम गौरांगदेव के गुणों से बँधे हुए संसार बन्धन से मुक्त थे, सर्वोत्कृष्ट रस को मूर्ति होते हुए भी अमूर्त थे, उन श्रीरूप को अनुपम के साथ प्रयाग में प्रेमालाप और दृढ़ आलिङ्गन द्वारा आनन्द से अनुगृहित किया ॥४२॥

राजा—उन्हें वृन्दावन बड़ा प्रिय था फिर वहाँ इतने कम दिन

क्यों रहे ?

सार्व०—लगता है उनके विरह को न सह सकने के कारण श्रीजगन्नाथ जी ने उन्हें आकृष्ट कर लिया।

और भी—जिनको स्वरूप-गोस्वामी अत्यन्त प्रिय हैं, जो साक्षात् प्रेमस्वरूप हैं, जो स्वभाव से ही मधुर हैं, और जो प्रभु के साथ एक रूप हैं उन श्रीरूपगोस्वामी को प्रभु जी ने अपनी लीला और अपने स्वरूप से अवगत कराया है।

राजा—उसके बाद ?

वार्ता०—तब वाराणसी में चन्द्रशेखर नामक ब्राह्मण के घर पर उनके पुरातन पुण्यों से वे यतीन्द्र पहुँचे ॥४३॥

राजा—तब ?

वार्ता०—उस समय तो ऐसा लगा कि मानों ईश्वर ने पूरे संसार को ही "इसे आकर देखो" यह प्रेम से आदेश दे दिया था अन्यथा उस एक ही समय में सभी लोग समान रूप से एक ही कार्य में लग जाते। क्योंकि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, संन्यासी, वनस्थ (वानप्रस्थ) याज्ञिक और व्रती सभी लोग आए। केवल कुछ दम्भी यती आदि ही न तहाँ गये और दर्शन किया।

राजा—सार्वभौम ! तपस्वियों में भी ईर्ष्या होती है यह क्या बात है ?

सार्व०—जब तक मन पर जय नहीं होती तब तक किसी को भी देवी संसारतृष्णा नहीं छोड़ती ॥४४॥

राजा—हाँ तब ?

वार्ता०—तब गौड़ेश्वर के सभापति, रूप के बड़े भाई सनातन जिन्होंने अपनी प्रचुर सम्पत्ति का त्याग करके, नए वैराग्य की शोभा धारण की, सेवार से ढके सरोवर की भाँति ऊपर से विरक्त का वेश धारण करके भी उनके हृदय में निर्मल भक्ति

भरी थी। जिनके दर्शन से ही भक्तों के हृदय में अपूर्व प्रेम उदित होने लगता था ॥४५॥

राजा—और आगे ?

वार्ता०—परम दयालु, चम्पा के समान गौर-वर्ण वाले भगवान् आखों के सम्मुख आते ही परिघा के समान बड़ी बड़ी भुजाओं से कृपा पूर्वक उन सनातन का आलिङ्गन किया।

राजा—किस तरह से उनके दर्शन मिले।

वार्ता०—उन्हीं के मुख से ऐसा सुना है।

राजा—बताओ।

पहले जो लोग गौराङ्गदेव के समीप जाते हैं हे नाथ ! वे तब निकलते हैं तो भगवान् का नाम लेकर रोमाञ्चित एवं आँसू बहाते ही निकलते हैं। आने जाने वालों का हिसाब करके उनकी चरण धूलि ग्रहण करते बाहर खड़े मुझ को सर्वज्ञ महाप्रभु ने किन्हीं लोगों से बुलवा लिया ॥४६॥

राजा—फिर ?

वार्ता०—तब फिर चारों वेदों के पारंगत होने पर भी मेरा प्रिय नहीं इत्यादि कह कर शीघ्रता से आसन से उठकर मुझे आलिङ्गन करलिया, यह सब उन्हीं सनातन ने मुझ से कहा था।

राजा—उसके बाद ?

वार्ता०—तब वहीं एक किंवदन्ती सुनी।

राजा—कौन सी ?

वार्ता०—यही कि वे लोग महाप्रभु के साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र में आकर कुछ दिन बिताकर तब पुनः वृन्दाबन लौट जायेंगे ॥४७॥

राजा—क्या देव के साथ ही या बाद में ?

वार्ता०—बाद को ही समझिये, क्योंकि वाराणसी से देव अकेले चले हैं यह तो देखा ही है और भी कुछ वहाँ सुना है।

सार्व०—वह क्या ?

वार्ता०—समय पाकर कृष्ण की वृन्दाबन सम्बन्धि लीला लुप्त हो गई है यह देख उसके प्रचारार्थ भगवान् ने विशेष रूप से कृपा रूपो अमृत से रूप एवं सनातन का अभिषेक किया है।

राजा—यह तो उचित ही है ॥४८॥

(नेपथ्य में दूर से 'जय हो' का कोलाहल)

सार्व०—(सुनकर) लगता है भगवान् श्रीकृष्ण-चैतन्य आगये हैं क्योंकि यह नया कोलाहल सुन पड़ रहा है।

(पुनः नेपथ्य में—)

आज मेरा जन्म सफल हो गया, नेत्र कृतार्थ हो गये, सब दुःख दूर हो गये, चित को शान्ति मिल गई और बहुत क्या कहूँ आज यतीन्द्र पुनः नीलाचल पर पधारे हैं।

राजा—देर क्यों कर रहे हो ? आओ वहीं चलें (सब का प्रस्थान) ॥४६॥

(तब श्रीकृष्णचैतन्य उसी समय उपनीत परमानन्दपुरी और स्वरूप का प्रवेश। काशीमिश्र आदि भी दर्शनार्थ किनारे खड़े हैं)

श्रीचै०—(पुरीश्वर से) स्वामिन् ! यद्यपि श्रीक्षेत्र और वृन्दाबन दोनों ही समान रूप से महान् हैं एवं आगे काशी आदि महान तीर्थ समूह विद्यमान हैं, प्रत्यक्ष रूप से पाप–नाशक हैं फिर भी महत् लोग ही आनन्द प्रदायक होते हैं क्योंकि आप लोगों के दर्शन का सुख ही हमारे लिये सुख रूप है। अतः आप लोगों का सत्संग अन्य तीर्थों के सेवन से भी अधिक रसमय है। इसी-लिये मैं शीघ्र चला आया।

पुरी०—हम लोगों का ऐसा सौभाग्य है कि आपके विरह की अग्नि में बहुत दिन नहीं जले ॥५०॥

(शीघ्र निकट जाकर सार्वभौम एवं रामानन्द दण्डवत् करते हैं और श्रीचैतन्यदेव उनका आलिङ्गन करते हैं)

काशी०—बल्लभभोग के बाद श्रीजगन्नाथ जी सोने की इच्छा होने पर भी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन का दर्शन कर लेंगे।

श्रीचै०—आओ, पुरीश्वर ! आओ ! (सब का प्रस्थान) ॥५१॥

इति चैतन्यचन्द्रोदयनाटके कुसुमसरोवर—निवासी कृष्णदास कर्त्तृक अनुवादित महाप्रभु का मथुरागमन नामक नवमोऽङ्क ॥



दशम अङ्क

(अनन्तर किसी वैदेशिक का प्रवेश)

वैदेशिक—मैंने सुना है कि प्रतिवर्ष रथयात्रा के समय में अद्वै-ताचार्य आदि सब श्रीकृष्णचैतन्य के दर्शनार्थ गमन करते हैं और उनके अभिभावक रूप में उन प्रभु के पार्षद शिवानन्द नामक एक व्यक्ति मार्ग में कंटक रूप घट्टपालों के कर प्रदान रूप विघ्न का निवारण करते हुए चाण्डाल तक समस्त जाति

का संरक्षण करते हुए ले जाते हैं। अतएव मैं उनके साथ जाने के लिये उनका पता करता हूँ। (ऐसा कह कर कुछ दूर जाकर अहा! सामने इस शान्त-मूर्ति मनुष्य को देख रहा हूँ, उसे पूँछूँ (ऐसा मन में विचार करके समीप उपस्थित हो जाता है ।।१।।

(अनन्तर अद्वैतदेव के सेवक गन्धर्व नामक कोई व्यक्ति प्रवेश करता है)

गन्धर्व—अये! प्रभु अद्वैताचार्य ने हमें नियुक्त किया है कि हम सब की पुरुषोत्तम यात्रा का शुभ-समय आ गया है। हम सब शीघ्र ही वहां जायेंगे, यह सम्बाद शिवानन्द से कहो कि वे यात्रा का दिवस स्थिर करके पत्र दें कि हम सब आगे पीछे यात्रा करें तो उनको कहां मिलें। अब मैं शिवानन्द के निकट जाता हूँ (ऐसा कह कर वह रंगमंच पर विचरण करता है) ।।२।।

वैदे०—(निकट में आकर) भइया! कहां जा रहे हो?

गन्धर्व—(पूर्व वृत्तान्त अर्थात् "आयत: पुरुषोत्तमस्य गमने" इत्यादि कहने लगा।

वैदे०—(हर्ष में आत्मगत) मैंने जो सुना वह यथार्थ हो रहा है। तो भी पूँछू (प्रकाश्य से) भइया! क्या वे अपरिचित लोगों का भी प्रतिपालन कर संग में ले जाते हैं?

गन्धर्व—वे तो रक्षा करते हुए कुक्कुरतक को भी ले जाते हैं, मनुष्य की बात तो कहना ही क्या है।

वैदे०—भईया! कहो वह कैसे?

गन्धर्व—भगवान् की मथुरायात्रा के पहले एक वर्ष सहस्राधिक मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र के लिये चले। दैव वश एक श्वान भी शिवानन्द जी के साथ चल दिया। उन्होंने श्रद्धा के साथ

उसकी रक्षा की, भोजन के समय अनुच्छिष्ट अन्न उसको देते थे और नद-नदी को पार करते समय पृथक् रूप में अधिक उतराई देकर नौका में चढ़ाकर ले जाते थे। इस प्रकार वह कुक्कुर बहुत दूर तक संग में ही चलता रहा। थोड़ा मार्ग अवशिष्ट रहा कि एक दिन नौकर उसको अन्न देना भूल गया। सब के भोजन के उपरान्त उसको न देखकर "आहा! आज अन्न नहीं दिया गया" ऐसा कह कर अत्यन्त दुःख के साथ इधर उधर नाम लेकर पुकारने लगे। परन्तु वह कहीं नहीं मिला। इस प्रकार दुःखित होकर पुरुषोत्तम क्षेत्र तक सब आये। परन्तु समुद्र के तट पर अकेले भगवान् चैतन्यदेव के साथ उस कुत्ते को देखकर शिवानन्द जी अपने को अपराधी मानकर उसे प्रणाम करके दूर खड़े रहे। उन्होंने देखा कि भगवान् गौरहरि जगन्नाथ-देव के प्रसादी नारियल फल के टुकड़े कर उसे दे रहे थे तथा "कृष्ण कहो कृष्ण कहो" कह रहे थे। वह तो एक एक टुकड़ा खाता रहा और कृष्ण कृष्ण बोलता भी रहा। अनन्तर उस आश्चर्य को देख कर शिवानन्द जी ने पुन: प्रणाम कर अपने अपराध की क्षमा-प्रार्थना की। तब से वह कुत्ता कहीं चला गया, उसे कोई देख न पाया। लगता है वह उस शरीर से रूपान्तर धारण कर परलोक चला गया ।।३।।

वैदे०—आज हमारे लिये बड़ा शुभ दिन है कि यह श्रीकृष्ण-चैतन्य का वृत्तान्त कानों में पड़ा। जिन देव ने कुत्ते से भी भगवान् नाम का उच्चारण करा दिया, उनकी मनुष्य-लोगों पर जो कृपा होगी उसका क्या कहना? तो भाई मार्ग में जाते समय रास्ते के कांटे ये घाटपाल कैसा व्यवहार करने लगे हैं?

गन्धर्व०—भाई सुनो! देव के प्रभाव से प्रति वर्ष जाने वाले को आने जाने में महान् सुख होना निश्चित ही है फिर भी किसी

किसी वर्ष कष्ट भी हो जाता है ।।४।।

वैदे०—वह कैसा ?

गन्ध०—एक वर्ष हमारे स्वामी जब हजारों लोगों के साथ चलने लगे तब सभी के संरक्षक शिवानन्द भी अपने परिकर के साथ चल पड़े। उन्होंने हा मेरे स्वामी आदि को छोड़ कर सभी जाने वालों को उतराई का जमानत वहीं किस व्यक्ति की कितनी उतराई हुई यह हिसाब करके चुका दी सो सभी आराम से जा रहे थे। रेमुना नामक स्थान पर घाटपालों का अधिकारी महाराज गजपति का एक मंत्री महाराज के दक्षिण की ओर चले जाने के कारण स्वतन्त्र होकर वहां आगया। उस दुष्ट ने किराया बढ़ाकर और प्रत्येक व्यक्ति का गिन कर पिछले वर्षों की भी उतराई उसी हिसाब से जमा हुआ बहुत सा उतराई का कर बसूल करने के लिये शिवानन्द को लकड़ी की बन्धनी में बांध दिया। उनके बाँधे जाने पर मेरे स्वामी आदि सभी लोग उद्विग्न होकर दैनिक कार्यों का भी त्याग कर बैठ गये ।।५।।

वैदे०—तब ?

गन्ध०–तब रात के एक पहर बीत जाने पर उसी दुष्ट ने छड़ीधारी एक नौकर के हाथ बुला भेजा। वे उस समय बड़े चिन्तित हुए कि कहीं यह मारने न लगे। अतः चैतन्य के चरणों का स्मरण करके बल्लभ के साथ उसके सामने पहुँचे। तब सो कर उठे और दीपक धारियों से घिरे उसे देख कर बहुत भयभीत हुए। तब आमात्य ने पूछा तुम किसके आदमी हो ? इन्होंने कहा चैतन्यदेव के। उसने कहा-बताओ चैतन्य और जगन्नाथ में कौन बड़ा है ? इन्होंने कहा मेरे लिये तो कृष्णचैतन्य ही बड़े हैं। यह सुनकर प्रेम पूर्वक अपराधी सा होता हुआ बोला अरे ! मैंने एक सपना

देखा है, श्रीकृष्णचैतन्य ने मुझ से कहा कि तुमने बिना कारण हमारे आदमी को बांध रक्खा है उसे शीघ्र छोड़ दो। तो मेरा यह अपराध क्षमा करो। तुम्हें कुछ भी देना नहीं, सुख से प्रातः उठकर सब के साथ चले जाओ, यह कहकर दो दीप-धारकों से कहा, जहाँ इनके परिकर हैं वहीं इन्हें पहुँचा दो। ऐसा ही हुआ, तब हमारे स्वामी आदि सभी दैनिक कार्यों में लग गये ।।६।।

वैदे०—वाह ! चैतन्यदेव की करुणा का प्रभाव और ऐश्वर्य विचित्र है।

गन्ध०—तुम कहाँ से आये हो ?

वैदे०—उत्तर राढ़ से।

गन्ध०–अकेले कैसे ?

वैदे०–नरहरिदास आदि ने भेजा है।

गन्ध०—क्यों ?

वैदे०—वे शिवानन्द पुरुषोत्तम कब जा रहे हैं यह जानने।

गन्ध०—तो यहीं मेरे स्वामी के घर के पास रुको, मैं अभी पता लगाकर आता हूँ। और भी कोई दस लोगों को हमारे स्वामी ने "मेरे साथ चलना" यह कह कर रोक लिया है ।।७।।

वैदे०—उन पर आपके स्वामी की इतनी कृपा क्यों हो गई ?

गन्ध०—उनमें से एक तरुण श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीनाथ को अत्यन्त मधुर-मूर्ति, सुन्दर, स्वतः सिद्ध कृष्ण-प्रेम से बाहर और अन्दर से अति सरस, संसार की आंखों के लिये नए रसायन सा रमणीय देखकर मेरे स्वामी को बड़ा प्रेम लगा। उन्होंने कहा कि तुम दूसरे के साथ न जाना मैं तुम्हें एकान्त में चैतन्य के दर्शन कराऊँगा। ऐसा कहकर उसके अनुरोध पर प्रायः एक महीने से दसों लोगों का भार उठाये हैं।

वंदे०—ठीक है मैं यहीं खड़ा आप की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।
गन्ध०—मैं भी शिवानन्द के पास जाता हूँ (दोनों का प्रस्थान) ।।८।।

विष्कम्भक

(तब शिवानन्द और उनके साथ जाने के इच्छुक कुछ और लोगों का प्रवेश)

शिवा०—(उनमें से एक से) अये ! तुम कहाँ से आये हो ?
वह—महात्मा ! मुझे गोवर्धनदास ने तुम्हारे पास भेजा है।
शिवा०—हाँ जान गया, आप रघुनाथ-दास का पता लेने जायेंगे।
वह—हाँ।
शिवा०—उसके पता लगाने का लक्ष्य क्या है ?
दूसरा—श्रीमान् क्या आप उन्हें जानते हैं ? ।।९।।
शिवा०—सुनो—मधुरस्वभावी, श्रीवासुदेव के प्रिय, आचार्य यदुनन्दन हैं। उनके शिष्य हैं रघुनाथ जो गुणी होने के कारण हम लोगों के प्राण से भी प्रिय हैं। श्रीचैतन्यदेव की विशेष कृपा होने से वे अति स्निग्ध स्वरूप से स्थिर वैराग्य निधि हैं उनको कौन सी नीलाचल निवासी नहीं जानता है।

और जो बिना जोते खोदे ही फसल देती है उस अपूर्व सौभाग्यवती भूमि के समान ही वह हैं क्योंकि उनक हृदय में चैतन्य के प्रेम का वृक्ष लगाने के समय में ही अनुपम फल देने लगा। फिर भी चलो मैं तुम्हारी रक्षा करते हुए ले चलूँगा। जब तक अद्वैत-देव की आज्ञा नहीं मिलती तभी तक देर है ।।१०।।

(तब गन्धर्व का प्रवेश)

गन्धर्व—यह शिवानन्द हैं, तो निकट जाऊँ। (निकट जाता है)

शिवा०—(सामने देखकर) अरे ! सामने यह आचार्य गोस्वामी का नौकर सा देख पड़ रहा है। तब तो ठीक है जो सोच रहा था वही हो गया।
गन्धव—(नकट जाकर)—महाशय ! भगवान् अद्वैत ने कहा है।
शिवा०—सुन रहा हूँ कहो !
गन्ध०—(आद्यात आदि सब पुनः कहता है)
शिवा०—मैं भी उन्हीं की आज्ञा की प्रतीक्षा में था ।।११।।
गन्ध०—एक विशेष बात है।
शिवा०—वह क्या ?
गन्ध०—इस वर्ष स्नानयात्रा भी देखनी है।
शिवा०—यह तो सभी का अभीष्ट है यह बता देना और कहना कि मैं ठीक दिन करके आ रहा हूँ। सो तुम भी जाओ मैं श्रीवास-पण्डित आदि के साथ दिन ठीक करने जा रहा हूँ ।।१२।।

(तब बिना पर्दा गिरे सार्वभौम का प्रवेश)

सार्वभौम—यद्यपि भगवान् ने इसकी अनुमति नहीं दी है फिर भी अकस्मात् वाराणसी जाकर हठ पूर्वक अनुमति ले लूँगा यही सोच कर जा रहा हूँ। पता नहीं क्या होगा ? यद्यपि भगवान् की करुणा उनकी इच्छा के अधीन है फिर भी कभी कभी करुणा इतनी बली हो जाती है कि इच्छा को दूर फेंक देतो है। अतः करुणा से जो कुछ होगा वही होगा। (टहलता है, सामने देखकर) अरे जो यह नाना देश विदेशों से आये हुए लोग इकट्ठे सामने देख पड़ रहे हैं वे सभी तीर्थ-यात्री ही हैं। (देखकर) सभी गौड़देश वासी हैं (फिर देखकर) अरे ! यह अद्वैताचार्य हैं, यह अवधूत नित्यानन्द हैं, यह श्रीवास हैं, यह हरिदास हैं, यह गदाधरदास हैं, ये गोविन्दघोष आदि हैं, यह मकरध्वज हैं,

यह काशीनाथ हैं, ये नरहरि आदि हैं, ये कुलीन ग्रामीण रामानन्द आदि हैं। ये नित्यानन्द के पार्षद गौरीदास आदि हैं। बहुत क्या कहूँ ये तो सब चैतन्य के पार्षद ही आ रहे हैं। यह अच्छा हुआ है। आज तो यहीं रुक कर इनमें से प्रत्येक को सन्तुष्ट करना है। निकट जाता है) ॥१३॥

(तब भगवान् के दर्शनार्थ चले अद्वैतादि का प्रवेश)

अद्वैत—अरे! सामने सार्वभौम मे दिख रहे हैं। क्या बात है?

सार्वभौम—(निकट जाकर अद्वैत को प्रणाम करते हैं) औरों का भी अभिवादन करते हैं। (दूर पर हरिदास को देखकर) कुल एवं जाति का विचार न करने वाले तुम्हें नमस्कार है।

हरिदास—(दूर हटते हुए, हड़बड़ा कर प्रणाम करता है)

अद्वैत—आपने श्रीकृष्णचैतन्य के चरणों का वियोग क्यों स्वीकार किया ?।

सार्व०—ऐसा ऐसा (सब कहता है)

अद्वै०—ओ भाई! आज सब लोग यहीं विश्राम करें। भट्टाचार्य के साथ गोष्ठी होगी।

सब—जैसा आपको ठीक लगे। (सब लोग रुक जाते हैं)

श्रीकान्त—(शिवानन्द से) मामा जी! यदि आपको आज्ञा हो तो मैं आगे जाऊँ।

शिवा०—आराम से जाओ (श्रीकान्त प्रणाम कर जाता है)

अद्वैत—भट्टाचार्य! आओ कहीं बैठकर सब लोग सुनेंगे। (प्रस्थान) ॥१४॥

(तब स्वरूप और गोविन्द का प्रवेश)

स्वरूप—सुना है गौड़देश से सभी अद्वैत आदि आ रहे हैं।

गोविन्द—और क्या? उन्हें बीच में छोड़ कर श्रीकान्त अभी अभी आया है।

स्वरूप—कहाँ है?

गोविन्द—महाप्रभु से बात कर रहे हैं।

स्व०—आओ हम दोनों भी सुनें (निकट जाते हैं) ॥१५॥

(तब पुरीश्वर के साथ सुख से बैठे महाप्रभु और थोड़ी दूर पर बैठे श्रीकान्त का प्रवेश)

महा०—श्रीकान्त! बताओ कौन आ रहे हैं?

श्रीकान्त—प्रभु! आपके सभी लोग, इस वर्ष वहाँ कोई रुका नहीं। कुछ लोगों ने तो अभी तक आपका दर्शन ही नहीं किया है।

स्व०—(निकट आकर) महाप्रभु की जय हो।

महा०—आओ स्वरूप! आओ (अपने निकट बैठाते हैं) श्रीकान्त-स्वरूप को प्रणाम करता है।

महा०—श्रीकान्त! हाँ जिन्होंने कभी नहीं देखा वे कौन है? ॥१६॥

श्री०—प्रभु! अद्वैताचार्य के पुत्र विष्णुदास, तथा गोपालदास आदि। और अद्वैत के साथ कोई सब के प्रिय श्रीनाथ नामक हैं।

महा०—वे शिवानन्द का साथ छोड़ उनके साथ आ रहे हैं?

श्री०—उन्होंने कहा कि मैं आपको एकान्त में महाप्रभु के पास ले जाकर विशेष कृपा-प्राप्त कराऊंगा इसी आश्वासन के कारण ॥१७॥

महा०—(हँसकर स्वरूप से) सुनिये! अद्वैत की लाई हुई यह उपहार सामग्री अत्यन्त ही स्वादिष्ट होगी इस विचार से उससे श्रीनाथ से प्रेम करना है। स्वरूप! तुम भी उनसे मैत्री का व्यवहार करना और शंकर! तुम भी उनके प्रति सुन्दर भाव दिखाना, क्योंकि अपने समान से संयोग सभी को स्वभाव

से ही मधुर लगता है।
दोनों—जैसी आपकी आज्ञा।
महा०—और कौन कौन हैं ?
श्रीका०—वासुदेव का पुत्र और मामा के दो लड़के।
महा०—उन दोनों को तो पहले देख चुका हूँ।
श्रीका०—छोटे वाले ने अभी श्रीचरणों को नहीं देखा है ॥१८॥
महा०—(पुरीश्वर से) यह आपका दास है ?
श्रीका०—हाँ प्रभो वही !
महा०—और आगे।
श्रीका०—रामानन्द-वसु का पुत्र और कुछ दूसरे लोग हैं।
महा०—स्वामी पुरीश्वर ! हे स्वरूप ! इस वर्ष इन्हीं के कारण ही ये लोग मेरा दर्शन पा सकेंगे।
दोनों—(मन में) इनकी बात का क्या सम्बन्ध है ? कुछ होगा, स्वयं स्पष्ट कर देंगे।
महा०—इस वर्ष आचार्य जी महाराज का दर्शन करेंगे ॥१९॥
श्रीका०—देव ! मैं दूर से आया हूँ, अतः इसका अर्थ नहीं समझ पा रहा हूँ।
पुरीश्वर और स्वरूप—(मन में) आहा समझ गये। गत वर्ष अद्वैताचार्य ने राजा से जो बात की थी उसका क्षोभ अब भी प्रभु के हृदय में जग रहा है।
महा०—पुरीश्वर ! मुझे तो वासुदेव का स्वभाव ही अच्छा लगता है।
पुरी०—वह बड़े भाग्यवान् हैं जिनकी प्रशंसा आप पीठ पीछे भी कर रहे हैं ॥२०॥

(नेपथ्य में-कोलाहल)

पुरी०—(सुनकर) देव ! वे लोग निकट ही आ गये हैं क्योंकि

शोरगुल सुन पड़ रहा है)
महा०—गोविन्द ! भगवान् की प्रसाद माला लेकर निकट जाओ।
गोविन्द—जो आज्ञा (प्रस्थान) ॥२१॥
वाणीनाथ—(प्रवेश करके हाथ जोड़कर) जगन्नाथ जी के महाप्रसादान्न लाया हूँ।
महा०—वाणीनाथ ! आहा ! तुम यथार्थ में ही समयाभिज्ञ हो, क्योंकि अद्वैतादि का आगमन सुनकर महाप्रसाद लाये हो, कुछ समय गोविन्द की प्रतीक्षा करो उसे कहीं रख दो ॥२२॥
वाणी०—(ऐसा ही करने लगा)
काशी०—भगवन् ! कल जगन्नाथदेव की स्नानयात्रा होगी।
महा०—हाँ ! जानता हूँ, परन्तु इस वर्ष गौड़देश के आपामर समस्त जाति जिससे अनायास स्नानोत्सव दर्शन कर सके ऐसा करना ॥२३॥
काशी०—स्वामिन् ! महाराज ने कहा है कि इस वर्ष हमारे अन्तःपुर के लोग कोई स्नानयात्रा का दर्शन नहीं करेंगे। वे सब जिस चक्रवेष्ट के (अर्थात् दूरवर्ती पदार्थ देखने के लिये उच्चस्तम्भ के) ऊपर बैठकर दर्शन करते हैं वहाँ ही सब गौड़ीय बैठा दिये जायेंगे।
महा०—उसका मंगल हो ॥२४॥

(पुनः नेपथ्य में संकीर्तन-ध्वनि)

पुरी०—स्वामिन् ! वे सब चारगणेश तक आ गये हैं।
महा०—स्वरूप ! तुम आगे चलो, मैं पीछे आ रहा हूँ।
स्वरूप—जो आज्ञा (प्रस्थान)
पुरी०—(मन में) आहा ! पहले अद्वैत के प्रति स्नेहवश भगवान् ने कितना आक्षेप किया था अब अत्यन्त आदर दिखा

रहे हैं, यह तो स्वाभाविक प्रणय की रीति है, जो आत्मयजन का दोष नहीं देखती, गुण में ही दृष्टि रखती है।

महा०—पुरीश्वर ! उठो, हम भी चलें।

पुरी०—गोस्वामिन् ! चलिये, (गमन करना)

अनन्तर भगवान् को प्रसादमाला पाने से दूना आनन्द प्राप्त कर श्रीनित्यानन्द एवं अद्वैत चारों ओर कीर्त्तन करते हुए प्रवेश करते हैं) ॥२५॥

अद्वैत०—(दूर आते हुए महाप्रभू को देखकर नृत्य करके भूमि पर गिर पड़ते हैं)

शिवा०—(सब को सुनाकर अपने पुत्र से) देखो देखो ! यह विद्युत की माला के समान ज्योतिमान्, उत्सुक मृगराज के समान सुन्दर गति वाले, सोने के परिघा के समान मोटी तथा लम्बी भुजाओं वाले, सिंह के समान ग्रीवा-वाले श्रीचैतन्यदेव नये उदित सूर्य को भाँति लाल वस्त्रों में शोभा पा रहे हैं। इन्हें प्रणाम करो प्रणाम करो। (सब लोग प्रणाम करके जब उठते हैं तब तक अद्वैत की गोष्ठी में चले गये प्रभु को वे इधर उधर देखने लगते हैं) ॥२६॥

शिवा०—(देखकर)

अहा ! अद्वैत और चैतन्य के इस दृढ़ आलिङ्गन में कोई किसी को पहचान नहीं सकता है। लोगों को कभी चैतन्य अद्वैत लगते हैं कभी कभी अद्वैत चैतन्य लगते हैं।

देखो ! देव अद्वैत को आगे करके भी दर्शनार्थ स्वयं आगे जाकर अपने आश्रम के अन्दर प्रवेश करा रहे हैं। सब लोग थोड़ा रुककर प्रवेश करें।

(सबको रोक कर एक एक करके प्रवेश कराते हैं) ॥२७॥

महा०—(बैठकर अद्वैत आदि को एक एक करके आलिङ्गन अवलोकन आदि से आनन्दित करके, मुट्ठी भर भर कर अपने हाथ से भगवान् का प्रसाद बाँटते हैं। अद्वैत आदि क्रम से ग्रहण करते हैं)

भगवान्—आज और कुछ नहीं खाना है, सभी लोग सायंकाल ही चक्रवेष्ट के ऊपर बैठ जायेंगे, जिससे सुख पूर्वक स्नान महोत्सव देखा जा सके।

सभी—जैसी आज्ञा (प्रस्थान) ॥२८॥

स्वरूप—भगवन् ! आप भी समय से ही दैनिक कार्यों से निपट लेंगे।

भगवान्—जैसी तुम्हारी इच्छा।

(स्वामी जी के साथ पुरी का प्रस्थान)

स्वरूप—काशीमिश्र ! क्या इस समय महाराज राजधानी से यात्रा के निकट आयेंगे ॥२९॥

(नेपथ्य में) आ गये।

काशी०—जैसा इसने कहा है इससे लगता है कि आ ही गये हैं।

स्वरूप—तब स्नान का दर्शन सुख से नहीं होगा।

काशी०—तो पता लगाऊँ (प्रस्थान)

स्वरूप—गोविन्द ! आओ, भगवान् के पीछे पीछे चलें। (प्रस्थान) ॥३०॥

(तब बलभी पर खड़े राजा एवं पुरोहित का प्रवेश)

राजा—पुरोहित ! इस वर्ष मैं यहीं खड़ा होकर स्नान देखूँगा। नहीं तो भगवान् गौराङ्ग को सङ्कोच होगा !

पुरो०—यह तो ठीक ही है।

राजा—अरे ! यहाँ कोई है ? काशीमिश्र को बुलाओ।

काशीमिश्र—(प्रवेश करके) मैं उपस्थित हूँ देव ! आज्ञा करें।

राजा—मिश्र ! जो यहाँ भगवान् के गौड़ीय पार्षद हैं या उन लोगों के आदमी हैं, जो उनके अनुयायी या साथ के नौकर हैं वे सब, जहाँ हमारी स्त्री, पुत्र, एवं मित्र बैठकर सुख-पूर्वक स्नान देखते हैं, वहीं बैठें।

काशी०—आपकी आज्ञा से यह पहले से ही हो गया है ॥३१॥

राजा—बहुत अच्छा किया।

कञ्चुकी—(प्रवेश करके) देव ! रानियाँ कह रही हैं कि हम लोग स्नान देखने आई थीं पर देख नहीं पा रही हैं।

राजा—कैसे नहीं ? यहीं खड़ा होकर वे भी देखें ? देखो उसकी तो दूसरी व्यवस्था की गई है।

काशी०—देव ! देखो देखो ! स्नान-गृह के सामने चन्द्रकिरणों के द्वारा शोभित अट्टालिका पर बैठे यह सब भक्तगण आकाश पर विराजमान देवताओं के समान शोभित हो रहे हैं।

राजा—यह श्रीकृष्णचैतन्य के पार्षद सुन्दरता से बैठाय दिये गये हैं। अतः अब आप जायें। जगन्नाथ जी की विजय का समय प्रायः हो गया है अतः निश्चित कार्यों को करने में देर न करिये ॥३२॥

काशी०—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

(तब रानियों का प्रवेश)

रानियाँ—महाराज की जय हो।

राजा—(देवी से) आओ देवि ! आओ ! जन्म सफल कर लो। (आदर के साथ बैठाकर) देवि ! देखो देखो यह चैतन्यदेव के पार्षद हैं जो संसार को पवित्र करने वाले हैं। कुछ ही देर में चैतन्यदेव का भी दर्शन प्राप्त करोगी। अब इन्हें प्रणाम करो।

(देवी प्रणाम करती है)

राजा—देखो ! आश्चर्य है कि—

महाज्येष्ठीयोग में भगवान् के मन्दिर की ध्वजा ऊपर को ओर उड़ती है यह किवंदन्ती अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसीलिये श्रद्धा से आँखे गड़ाये हुए पताका को देख रहे हैं जो मानों चन्द्रमा के शरीर को चाटती हुई मन्दिर की जिह्वा की भांति लग रही है।

रानी—देव ! यह किवदन्ती क्या सच है ?

राजा—तुम स्वयं देख लो (ऊपर उड़ती हुई ध्वजा दिखाते हैं) ॥३३॥

(नेपथ्य में नगाड़े की ध्वनि)

राजा—(सुनकर) देवि ! देखो देखो जगन्नाथ जी की विजय का समय हो गया है। अतः श्रीचैतन्यदेव आये कि नहीं देखूँ। (देखकर आनन्द के साथ) अरे ! यह श्रीकृष्णचैतन्य हैं। देखो देखो, घनी भीड़ होने पर भी भगवान् का श्रीमुख-मण्डल सब से ऊपर शोभित हो रहा है। मानों हंसों से शोभायमान जल में ऊँची नाल वाला कोई सोने का कमल हो ॥३४॥

देवी—आर्य पुत्र ! हमारे लिये एक से बढ़कर एक उत्सव हो रहे हैं, क्योंकि जगन्नाथ जी के दर्शन करने आये और श्रीचैतन्य के भी दर्शन कर रहे हैं।

महाराज ! सोने की मणि के समान यह कौन है जो हमारे नेत्रों के सामने उपस्थित है। सूर्य के समान इनके तेज से सभी के हृदय में वर्तमान विषय वासनायें शोषण हो जा रही हैं, इनकी रूप माधुरी दिव्य है उसके दर्शन से ही हृदय भगवान् के प्रेमामृत से सिञ्चित हुआ जा रहा है।

और ! चन्द्रमा को इनके बिम्ब पर न्यौछावर कर दूँ,

सोने के दीपकों से इनको ज्योति की आरती उतारूँ, प्राणों के फूलों से इन्हें पूजूँ। इच्छा होती है लाख लाख शरीर देकर भी इनकी करुणा प्राप्त करूँ। (प्रणाम करती है)

राजा—प्रिये ! यह तुम्हारा अनुभव सत्य है। अब वह देखो जगन्नाथ जी स्नान गृह पर चढ़ रहे हैं।

रानी—(देखकर प्रणाम करती है) ॥३५॥

(नेपथ्य में नगाड़े की ध्वनि)

राजा—देवि ! जगन्नाथ जी का स्नान देखो।

देवी—(दोनों ओर देखकर) आर्यपुत्र ! बड़ा कौतुक है।

राजा—वह क्या ?

देवी—देखो-श्याम और गौर दोनों देव निर्निमेष एक दूसरे की ओर देख रहे हैं, दोनों एक समान शोभा से युक्त हैं, करुणा के समुद्र हैं, दोनों संसार के दुःख को दूर करने की सब से बड़ी औषधि हैं, एक स्नान के जल और एक आंसुओं के जल को दुर्वार धारा से भीगे हुए हैं।

राजा—सच है ॥३६॥

देवी—भगवान् का स्नानोत्सव समाप्त हो गया है अन्यथा गौरांग देव दक्षिण की ओर न देख कर दूसरी ओर क्यों जा रहे हैं।

राजा—हाँ ! ऐसा ही है।

भगवान् के सामने से भीड़ छँट कर उनके पीछे की ओर बढ़ रही है। पार्षदगण एक दूसरे का हाथ पकड़ कर श्रद्धा से मङ्गलकार्य कर रहे हैं ॥३७॥

(नेपथ्य में)

जगन्नाथ जी के दर्शन समाप्त होने पर (अनवसर में) यतीन्द्र श्रीमहाप्रभु को अवस्था विरह से व्याकुल हो गई। ठीक

ही है, प्रेमानन्द के अवतार होने के कारण महाप्रभु जब जिस विषय पर विचार करते हैं तब उसी में तन्मय हो जाते हैं।

राजा—(सुनकर) काशी मिश्र ने यह बिलकुल ठीक ही कहा तो पुनः ध्यान दूँ। (सावधान होता है)

(पुनः नेपथ्य में)

अरे न स्नान, न तुलसी सिंचन, न चक्र दर्शन, न नाम का जप, न प्रणाम, अरे ! भिक्षा भी नहीं !! श्री नीलाचलचन्द्र जगन्नाथ के अदर्शन के बहाने स्वयं अपनी इच्छा से विरह दुःख स्वीकार करके बस दिन रात रुदन ! यही देव की अवस्था है ॥३८॥

राजा—हाय ! यह क्या प्रमाद आ पड़ा ! जब तक यह दर्शन नहीं कर लेंगे तब तक यही दशा रहेगी तो क्या होगा।

(पुनः नेपथ्य में)

इन महाप्रभु को कीर्तन अत्यन्त प्रिय है अतः इनका भाव बदलने के लिये कीर्तन को छोड़ कर और कोई उपाय नहीं है इसलिये स्वरूप कीर्तन की व्यवस्था कर रहे हैं।

राजा—वाह ! तुम्हारा भला हो। (देवी से) प्रिये ! तुम यहाँ से जाओ तो अब इनके काशीमिश्र को बुलाऊँ ॥३९॥

रानी—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

(तब काशीमिश्र का प्रवेश)

काशी०—देव की जय हो।

राजा—कहो आपने यह क्या कहा ?

काशी०—जो कहा वही है।

राजा—स्वरूप गोस्वामी ने क्या राय दी।

काशी०—भगवान् चैतन्य के द्वारा स्वीकृत विरह विकलता के अनुभव को दूर करने के लिये सभी मित्रों की राय हुई कि जग-

न्नाथ जो की विजय-यात्रा के पश्चात् यदि भगवान् मधुर भगवत् कीर्तन सुनें तो रस के परिवर्तन से विरहावस्था में शिथिलता आ सकती है। यह ठीक करके रोहिणीकुण्ड के पास प्रभु के हृदयाभिज्ञ कुछ भक्तों ने संकीर्तन प्रारम्भ कर दिया।

राजा—मिश्र ! मैं किस प्रकार उसका दर्शन करूँगा ?

मिश्र—यदि प्राचीर पर चढ़ें।

राजा—तब ऐसा ही करूँगा, (यह कहकर प्राचीर में आरोहण करते हैं) ॥४०॥

(नेपथ्य में मधुर संकीर्त्तन कोलाहल)

मिश्र—(देखकर) भो महाराज ! देखिये, देखिये, जो समस्त दिवस मूर्तिमती विरह-वेदना तथा मूर्तिमान करुणरस की भाँति अवस्थित थे वे अब संकीर्त्तन ध्वनि श्रवण से अन्य प्रकार भावाविष्ट हुए।

राजा—हाँ ऐसा ही है। क्योंकि—स्फटिक घड़ा रक्त एवं कृष्ण-वर्णादि रस से पूर्ण होन पर उसी वर्ण का धारण करता है। उस प्रकार प्रेमानन्द से अति-निर्मल भगवान् का शरीर जिस समय जिस भाव का स्पर्श करता है उस समय उसी भाव का प्रकाश करता है ॥४१॥

(पुनः नेपथ्य में गानध्वनि)

राजा—(सुनकर) मिश्र ! यह क्या आश्चर्य गीत हैं ?

काशी०—महाराज ! भगवान श्रीकृष्ण के मुरलीरव-माधुरी वर्णनमय यह संगीत है जो गौड़ीय भाषा में रचित है आप तो नहीं सुने होंगे ॥

राजा—अहो, विचित्र है, ये गौरचन्द्र पुण्यात्मा जनों के हृदय में स्वयं कृष्ण रूप में स्फुरित होकर वृन्दावन सम्बन्धि सुमधुर रस का विस्तार करते हुए आज नीलाचल में नृत्य कर रहे हैं।

स्वयं आदि पुरुष होकर भी नवीना व्रजरमणियों की कृष्णानुराग जनित अपूर्व वेदना का अनुभव कर रहे हैं। अतएव इनकी लीला अति विचित्र है ॥

(पुनः निरूपण करके) अये ! एक ही संगीत के एक ही मात्र पद का बहुकाल तक गान कर रहे हैं।

काशी०—जिस लीला में प्रभु का मन निविष्ट हो जाता है उस से पुनः विचलित नहीं होता है ॥४२॥

राजा—हाँ ऐसा ही है (पुनर्वार देखकर हर्ष के साथ) अहो ! इनकी अपूर्व माधुरी को देखो देखो, ये दोनों जानु का उत्क्षेपन, बाहु का कम्पन, चरणों का संचालन एवं नयन—भङ्गिमा द्वारा निज पार्षदवृन्द का सन्तोष विधान कर समस्त विश्व को आनन्द-सागर में डुबा रहे हैं। आहा ! लाला से आवृत इनका रमणीय मुख मण्डल मानो फेणों से आवृत स्वर्ण कमल एवं हिमावृत चन्द्रमा के समान शोभा प्राप्त कर रहा है। (पुनः दृष्टिपात करके विस्मय के साथ) अहे ! चकोर जिस प्रकार चन्द्र विनिःसृत सुधामय फेण का पान करता है उस प्रकार भगवान् के मुखमण्डल से निर्गत लाला को लेकर निर्भयचित से पान कर अत्यन्त आनन्दित हो रहा है यह कौन है ? ॥४३॥

काशी०—शुभानन्द नामक वैष्णव।

राजा—अहो ! गायकगण एक ही पद को लेकर एक ही स्वर से एक ही उल्लास के साथ दो प्रहर तक अतिवाहित करने लगे और प्रभु का भी आनन्दावेश समभाव में चल रहा है, अतएव भक्तगण रसान्तर उपस्थित करके विरहावेश तरंग को विदूरित कर रहे हैं। परन्तु प्रकृत भावान्तर का अपसारण कौन करेगा। दोनों प्रकार से ही भगवान् के आन्हिकादि परित्याग हो रहा है।

काशी०—तो भी प्रभु का महान् विरहावेश भक्तगण के निकट अत्यन्त असहनीय हो रहा है (ऐसा कहकर पुनः निर्णय कर) महाराज ! इनका नृत्योत्सव निवृत हो रहा है, क्योंकि भक्त-वृन्द प्रभु को अपने आवास में ले जा रहे हैं।

राजा—अच्छा ही हुआ, अच्छा ही हुआ, अब तो प्रभु के आन्हिकादि हो सकेगा। हे मिश्र ! अब भगवान् के निकट गमन करो, मैं यहाँ ही क्षणकाल निद्रा जा रहा हूँ।

काशी०—जो आज्ञा महाराज ! (एह कहकर प्रस्थान करना) ॥४४॥

राजा—मिश्र जी गये हैं, तब मैं सोता हूँ (कुछ समय सोकर तथा उठकर) अहो ! रात्रि तो प्रभात हो गयी है। क्योंकि चन्द्र एवं सूर्य अस्ताचल एवं उदयगिरि के प्रान्त भाग में उप-स्थित होकर मृदुवश मानो वृद्धगण को क्षणकाल दर्शन क्षम देकर समान कान्ति वहन कर रहे हैं (चार ओर देखने लगे) ॥४५॥

(नेपथ्य में) अहो ! महान् कौतुक है। प्रतिदिन प्रभात समय अद्वैत—प्रभु आनन्दावेश से रोमाञ्चित कलेवर होकर अर्घ्य, चन्दन, तुलसा एवं पुष्पादि से भगवान् की पूजा करने पर भगवान् कुछ हँस कर उनके हाथों से पुष्पादि लेकर उन्हीं की ही पूजा करते हैं तथा अंगुलिदल मुख में लगाकर मधुर-स्वर से वाद्य (मुखवाद्य) बजाते हैं और भी फलतः जिनके हस्त में पूजोपकरण-सामग्री अर्पण कर अद्वैत जी गमन करते थे वे श्रीनाथ अब प्रभु के दर्शन, स्पर्श तथा मधुरालाप श्रवण से नितान्त करुणा—भाजन हुए ॥

राजा—अये ! तुलसोमिश्र जी परीक्षामहापात्र से कुछ प्रस्ताव कर रहे हैं। उसका श्रवण करूँ, यह तो शीघ्र ही इधर आ रहे हैं ॥४६॥

(तुलसीमिश्र का प्रवेश)

तुलसी—देव ! जगन्नाथदेव की गुण्डिचा-यात्रा समीप वर्तिनी है जानकर मन्दिर-मार्जन तथा प्रक्षालन के लिये स्वयं महाप्रभु उद्यत हो रहे हैं।

राजा—मेरे लिये कुछ आदेश किया है क्या ?

तुलसी—हाँ, उनकी अनुमति के अनुसार काशीमिश्र ने समस्त सम्पादन किया है।

राजा—किस कार्य में अनुमति की ?

तुलसी—उनके जितने परिकर हैं सब के प्रति एक एक मार्ज्जनी परन्तु घड़ों का आयोजन अधिक संख्या से।

राजा—केवल इतने ही सेवा।

तुलसी—अन्य द्रव्यों से उनका क्या प्रयोजन है ॥४७॥

(नेपथ्य में कोलाहल)

तुलसी—देव ! देखो देखो,

गौराङ्गदेव प्रत्येक भक्त के शरीर में चन्दन लगाकर प्रत्येक के गले में माला डालकर आनन्द रूपी पेड़ की मंजरी की भाँति झाड़ू लिये हुए मस्त हाथी के समान धीरे धीरे चलते हुए बाहर आ रहे हैं।

और भी मनोरथ रूपी रथ, सन्तोष रुपी हाथी महान् आनन्द रूपी तुरङ्गमों से संसार को जीतने वाले सैनिकों के समान यह श्रीचैतन्य के पार्षद रोमाञ्च का कवच शरीर पर धारण कर, आँखों से निकलते हुए आंसुओं के रूप में वारुणास्त्र लेकर पद पद पर हुङ्कार कर रहे हैं ॥४८॥

राजा—मेरे राजा होने को धिक्कार है। अरे ! कब मैं जिस किसी के समान इनके बीच में आकर भगवान् के पीछे चलूँगा। हे तुलसीमिश्र ! यह इतना बड़ा कौतुक कैसे सुन

रहा हूँ ।

तुलसी—देव मेरा एक पुरुष सब समाचार जानने गया है ।

राजा—बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा ।

(शीघ्रता से प्रवेश करके) राजा को प्रणाम करके—

महापात्र ! सब देख आया ।

राजा—बताओ ।

पुरुष—देव ! सुनो ।

सुन्दर कोमल हाथ में झाड़ू लेकर सबके साथ साथ यात्रा-मण्डप के भीतर ऊपर लगे मकड़ी के जाले और धुल को साफ करते हुए उसके धब्बों से श्रीगौर नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा के समान शोभित हुए ।

बाद में जहाँ हाथ नहीं पहुँच सकता था वहाँ अत्यन्त ऊँचे स्थान दीवाल, छत आदि की धूल भी आँखें ऊपर कर धूल से भरे देव ने 'डरो नहीं' ऐसा कहकर एक को दूसरे के कन्धे पर चढ़ाकर, साफ करवाई । सिंहासन एवं जमीन स्वयं साफ की । और भी—

झाड़ू से सारा कूड़ा अपने आँचल में भर कर स्वयं ही डाल रहे हैं । कभी कभी हाथ से पहुँचने वाले स्थानों को साफ करते हुए कौतुक सहित गाते भी हैं ।।४९।।

राजा—और आगे ।

पुरुष—इस प्रकार मूलमण्डप, जगमोहन, भोगमण्डपों की सफाई के बाद कुछ लोग कुएँ से पानी निकालते हैं, कोई किसी के हाथ में घड़ा देता है वह दूसरे को फिर वह तीसरे को इस प्रकार शृङ्खला से भरे और खाली घड़ों को देने लगे मानो पूर्ण का ग्रहण और अपूर्ण का त्याग सिखला रहे हों ।

और गौराङ्ग के आदेश से कुछ लोग सिंहासन को धोने लगे, कुछ दीवाल धोने लगे, कुछ उनके हाथ पर जल डालने लगे, कुछ लोग सन्तोष से उनके चरणों में जल डालते हैं । उस चरणामृत को कोई अंजली में पान कर रहे हैं और कुछ अपने सर पर चढ़ा रहे हैं । ।।५०।।

राजा—तब फिर ?

पुरुष—बाद में पहले की ही भाँति मन्दिर धोकर अपने पैर साफ करके अपने वस्त्रों से सब जल पोंछ डाला । वहाँ से निकल कर आङ्गन में पहुँच कर उसकी सफाई के समय जब सब परिकर एक पंक्ति में बैठ गये तो कुतूहल वश स्वयं बीच में बैठकर प्रत्येक के वस्त्र में स्थित कूड़े को देखकर देखूँ कौन कितना अधिक कूड़ा इकट्ठा करता है, तो मैं करूँ मैं करूँ इस प्रतियोगितात्मक भावना से सभी उस कार्य में बड़े आनन्द के साथ जोर शोर से लग गये । इस प्रकार पूरे आँगन को अपने चरित्र के समान ही निर्मल और अपने हृदय के समान स्निग्ध करके उन लोगों ने भगवत् कीर्तन आरम्भ किया । जैसे कि—

पृथ्वी की मृगनैनी स्त्रियाँ विक्षुब्ध हो उठीं, सूर्यदेव ठहर गये, दिशावधुएँ काँपने लगीं, पवन स्तब्ध हो गया, इन्द्र के हजारों नेत्रों में आँसू भर आए । सप्तर्षि समूह को पसीना आ गया । ध्रुव को परम रसमय आनन्द प्राप्त हुआ । ब्रह्मा का ध्यान टूट गया । इस प्रकार वह भगवान् के कीर्तन का आनन्द की ध्वनि जय हो ।

फिर—

कुछ देर स्वयं सुन्दर नृत्य करके गौरहरि ने अद्वैत के पुत्र गोपाल-दास को सुन्दर नृत्य कराना आरम्भ कर दिया ।

सुख के कारण नाचते नाचते उसे मूर्च्छित होकर देहान्तर में जाते हुए सा देखकर, अद्वैत जब दुःखित होने लगे तो देव ने करकमल के स्पर्श से उसे जिला दिया।

"अहो हरि" यह ध्वनि बड़ी जोर से उठी ॥५१॥

राजा—हाय ! मेरा दुर्भाग्य जो यह भी नहीं देखा।

पुरुष—तब नरसिंहनाथ मण्डप को भी साफ करके दौड़कर इन्द्रद्युम्न सरोवर में जल विहार करके सभी लोगों ने निकट-वर्ती कुसुमोद्यान में विहार किया। उसके बाद वाणीनाथ-पट्टनायक के लाये हुए भगवान् के प्रसाद आदि सबने ग्रहण किया ॥५२॥

(नेपथ्य में)—कल भगवान् के श्रीमुख-दर्शन से सभी के नेत्रों को आनन्द उत्सव प्राप्त होगा। यह विचार कर आनन्दमय मूर्ति गौरहरि आनन्दरस में निमग्न हुए।

राजा—महापात्र ! यह काशीमिश्र जैसा कह रहे हैं उससे लगता है आपको ही सुना रहे हैं। तो इस समय नेत्रोत्सव के कार्यों को आप देखें।

तुलसी—जो आज्ञा ! (प्रस्थान) ॥५३॥

(तब प्रवेश करके)

काशीमिश्र—बड़ा सुन्दर होगा। आगे काशीश्वर और पीछे गोविन्द और दोनों ओर पुरीश्वर और स्वरूप से सुशोभित वे गौरचन्द्र कल आँखों को आनन्दित करेंगे।

राजा—अरे ! इतनी तन्मयता से कह रहे हैं कि मुझे भी नहीं देख रहे हैं।

मिश्र—(दाहिनी ओर देखकर) तीनों रथ की सजावट पूरी हो गई है। विशेष रूप से यह जगन्नाथ जी का रथ फहराती हुई सहस्रों पताकाओं से अलंकृत, सुन्दर चमर और उत्तम वस्त्रों

से लिपटा हुआ, तेजोमय, समय पर आकर उपस्थित, आँखों को आनन्द देता हुआ विराजमान हो रहा है।

(सामने देखकर) अरे क्या राजा यहीं हैं ? (निकट जाकर) महाराज की जय हो। आप यहीं रहकर रथारोहण का दर्शन करें बाद में स्नान करके अपनी सेवा पर जाना ॥५४॥

राजा—यद्यपि रथ-विजय-सेवा मेरे लिये ही नियत है फिर भी उसकी मुझे इतनी उत्कण्ठा नहीं है जितनी कि महाप्रभु के नृत्य देखने की।

काशी०—रथारोहण होने के बाद आधे प्रहर के अन्दर ही महाप्रभु का नृत्य आरम्भ होगा।

राजा—(विचार करते हुए) यदि यहाँ से देखूँ तो मन को सन्तोष नहीं होगा, वहाँ निकट से देखना सम्भव नहीं है। उनकी गोष्ठी और भक्तों से घिरी होने से, मैं वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता हूँ। तो फिर उनका नृत्य कैसे देखूँ ? फिर भी नृत्य पर्यन्त वहीं ठहरूँगा। उनकी कृपा ही सहायता करेगी ॥५५॥

काशी०—महाराज ! कञ्चुकी के द्वारा रानियों ने प्रार्थना की है कि वे यहीं से गौरहरि का नृत्य देखें।

राजा—सुख-पूर्वक देखें और नेत्र तथा जन्म दोनों सफल करें।

काशी०—तो जल्दी करिये, जगन्नाथ जी का रथारोहण समय निकट है।

राजा—ऐसा ही है।

काशी०—मैं भी भगवान् के पास जा रहा हूँ (दोनों का प्रस्थान) ॥५६॥

(तब कञ्चुकी के साथ उसी दीवाल पर चढ़ी हुई रानियों का प्रवेश)

कञ्चुकी—आप देखें—

दर्शकों के नेत्र तथा मन सहित जगन्नाथ जी रथ के अन्दर पहुँच गये हैं। गौरहरि भी रथ के पथ पर उपस्थित हो गये हैं। भावाक्रान्त लोगों के नेत्र एवं मन पूर्व अर्थात् जगन्नाथ जी की ओर से हटकर भी पर अर्थात् गौरहरि की ओर से नहीं हट रही हैं। अतएव 'बाद वाली विधि अधिक बली होती है यह शास्त्रों का कथन ठीक हो है।

और भी यह सोने के समान गौर अपने लोगों की तीन मण्डलियों से घिरे हुए शोभित हो रहे हैं जैसे कि सहस्रदल कमल का सुन्दर बीजकोष हो ॥५७॥

रानियाँ—(उत्सुकता के साथ देखकर प्रणाम करती हैं)

कञ्चु०—देवियों! देखो देखो।

बाहरी घेरे के प्रमुख हैं काशीश्वर, बीच के घेरे के प्रमुख हैं श्रेष्ठ पुरुष श्रीगोविन्द, अन्दर के घेरे के प्रमुख मणि के समान तेजस्वी स्वरूप जो हैं और प्रभु के सामने हैं सभ्यतम श्रीपुरोश्वर।

(कुछ देर देखकर) अरे! बड़ा कौतूहल है—यह देखो संकोच के कारण राजा प्रतापरुद्र चैतन्यदेव के पार्षदों को हटा तो नहीं रहे हैं पर उन भक्तों के घने घेरों से गौरहरि के घिरे होने के कारण दर्शन न पाकर हरिचन्दन के कन्धों पर हाथ रख कर उचक कर देखने की इच्छा से इधर उधर देखते हुए घूम रहे हैं ॥५८॥

रानियाँ—इनको जैसी उत्सुकता है वैसा ही व्यवहार कर रहे हैं।

कञ्चु०—अहा क्या प्रमाद है—राजा की दृष्टि के बीच में पड़ने वाले श्रीवास को धीरे हाथ से हरिचन्दन ने हटा दिया। श्रीवास ने रुष्ट होकर उन पर प्रहार कर दिया। हरिचन्दन के भी प्रतिरुष्ट होने पर राजा नीति से अनुनय करके उसे सान्त्वना दे रहे हैं ॥५९॥

रानियाँ—वैसे विरक्त लोगों के सामने विचारा हरिचन्दन कौन है?

कञ्चु०—देखो देखो! ईश्वर जब तीव्र ताण्डव करने लगे तो सभी भक्तगण एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए हाथ फैलाकर उनको घेर कर चल रहे हैं कि कहीं भूमि पर गिर कर वे चोट न खा जायें।

रानियां—इस समय तो आराम से देख पड़ रहे हैं ॥६०॥

कञ्चु०—देखो—यतीन्द्र अपनी आनन्द तरङ्ग से कभी सिंह के समान उछलते हैं, कभी हाथी के समान दौड़ते हैं, और कभी चर्खी के समान घूमने लगते हैं।

और भी प्रभु के हृदय के भाव को जानने वाले तथा उदारमना लोगों में श्रेष्ठ श्रीस्वरूप जो भी गाने का आदेश देते हैं वही सब लोग प्रेम से गाने लगते हैं। मानों साक्षात् उस गान का अर्थ हो प्रतिबिम्बित कर रहे हों, इस प्रकार गाने के अनुसार ही स्तम्भ, आँसू, स्वरभङ्ग, कम्पन, रोमाञ्च और पसीना-मूर्छा के द्वारा श्रीगौर नृत्य पर नृत्य करते जा रहे हैं।

रानियां—अरे! यह प्रेमानन्द की चमत्कार! महिमा है ॥६१॥

कञ्चु०—देखिये पता नहीं, आनन्द-समुद्र की किन ऊँची नीची लहरों से भगवान् नृत्य के उन्माद के मद से आनन्दमूर्छा को प्राप्त हो गये। मुख का फेना सूख रहा है, आंसू रुक गये हैं, सांस का पता नहीं लगता है केवल मुख की निर्मल-कान्ति ही मित्रों को आश्वासन दे रही है।

रानियां—यह ईश्वर हैं, इनकी मृत्यु नहीं होती इसी विश्वास

पर सभी जीवित हैं। अन्यथा क्या यह देखा जा सकता ?

कञ्चु०—(कुछ देर देखकर)—अरे! होश में आ गये, शरीर में रोमाञ्च होने लगा, आंखों में फिर आंसू आ गये, मुख से फिर फेना निकलने लगा, सांस फिर नीचे चलने लगी, सभी लोगों में इधर उधर आनन्द का कोलाहल उठने लगा और ईश्वर ने आनन्द-मूर्च्छा को त्याग हृदय को जाग्रत कर दिया (जग पड़े) ॥६२॥

रानियां—ओ हो हम लोग जो गये।

कञ्चु०—(पुनः देखकर) अरे! आश्चर्य! जिस गीत से मूर्च्छा हुई थी फिर उसी गीत से होश आया है। क्या यह कोई अद्भुत-मन्त्र है जो कि प्रयोग और रोक थाम दोनों कार्यों में समर्थ है।

और भी प्रबल आनन्द के पवन से इनकी नृत्य-उन्माद की नदी धीरे धीरे बढ़ती हुई, उससे उसमें ऐसी लहरों के प्रवाह का क्रम उत्पन्न हुआ कि एक तरङ्ग दूसरी को और दूसरी तीसरी को इसी प्रकार नष्ट करने लगी। इस तरह भगवान् की यह विविध वृत्तियाँ वस्तुतः गीतार्थ से उत्पन्न न होकर आनन्द की तरंगों से ही उत्पन्न होती हैं।

अहो !! अहो ! स्वरूप की प्रेम माधुरी !!

धीरे से उठकर बैठे हुए सुख की तरगों में मस्त भगवान् तर्जनी से भूमि पर कुछ लिखते से लगे। पृथ्वी को आशङ्का (ईश्वर कहीं पृथ्वी को नष्ट न करदें) से दयावान् स्वरूप ने अपने हाथ से प्रभु के हाथ को रोक लिया।

(पुनः देखकर) हाय! कष्ट है—रथ पर विराजमान यह जगत्पति (जगन्नाथ) दोनों भुजाएँ फैलाए हुए मानों श्रीगौरचन्द्र को प्रेम से उठाकर रथ पर बठाने के लिये ही

जा रहे हैं। गौरचन्द्र मानों वामता प्रकट होने के कारण नाचते २ दूर हटते जा रहे हैं, हाय! दोनों ही ईश्वर अब आँखों से ओझल हो गये हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है, अतः अब हम यहाँ से उतर पड़ें क्योंकि राजा भी इधर ही आ रहे हैं। (रानियों को उतार कर उनके साथ प्रस्थान करती है) ॥६३॥

(तब राजा और काशीमिश्र का प्रवेश)

राजा—ओह! रथोत्सव तो पूरा हो गया। एक तो यात्रा-मन्दिर में स्थित हैं और दूसरे उपवन में चले गये हैं। किन्तु यह दोनों देवता ही लोगों के चित में तो एक हो साथ प्रवेश कर गये हैं।

काशीमिश्र! होरा-पञ्चमी को भगवती लक्ष्मी की प्रयाणयात्रा बड़ी सुन्दर हो ऐसी व्यवस्था करना। छत्र-चँवर आदि जितने भगवान् के भण्डार में हैं और जितने मेरे कोषागार में हैं सब के सब ले आना। जिससे कि रथोत्सव से भी अधिक आँखों को अच्छी लगने से साक्षात् अद्भुत रस ही उतर आवे।

काशी०—जो आज्ञा ॥६४॥

राजा—तुम आज से ही व्यवस्था करो, मैं घर जा रहा हूँ। (प्रस्थान)

काशी०—(मन में) उपवन में आने के बाद महाप्रभु और अद्वैत आदि के क्या समाचार है जरा देखूँ! (जगन्नाथबल्लभ नाम के उपवन में प्रवेश कर देखकर सहर्ष) अहो! भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य के सम्मुख कल मेरे यहाँ, परसों मेरे यहाँ, उसके बाद नरसों मेरे यहाँ, तरसों मेरे यहाँ, इस प्रकार प्रभु की भिक्षा का दिन निश्चित करते हुए अद्वैत-आदि बड़ा कौतूहल प्राप्त कर रहे हैं। अतः इस समय मेरा यहाँ प्रवेश करना

उचित नहीं हैं। तो मैं निकटवर्ती होरापञ्चमी की सामान जुटाने में लगूँ। (प्रस्थान) ॥६५॥

(तब श्रीकृष्णचैतन्य और उनके चारों ओर अद्वैत आदि का प्रवेश)

श्रीचै०—स्वरूप ! यद्यपि श्री जगन्नाथ जी द्वारिका की लीला का ही अनुसरण करते हैं तथापि यात्रा के बहाने वृन्दाबन-विहार का स्मरण कराने वाले इन उपवनों में बिहार कर प्रति-वर्ष नीलाचल छोड़कर सुन्दराचल पर आते रहते हैं किन्तु वे लक्ष्मी देवी का परित्याग करते हैं।

स्वरूप—"वृन्दाबन विहार का स्मरण" यह तो आपने स्वयं बताया है, यही सिद्धान्त है। क्योंकि वृन्दाबन में लक्ष्मी के साथ बिहार न होकर गोपिकाओं के साथ बिहार है।

श्रीचै०—फिर भी लक्ष्मीजी रुष्ट होती हैं।

स्वरूप—प्रणयिनी का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे अपनी अयोग्यता नहीं देखतीं ॥६६॥

(नेपथ्य में महान नगाड़े की ध्वनि)

सब—(सुनकर) अरे ! चार दिन एक क्षण को तरह बीत गये। क्योंकि यह तो होरा-पञ्चमी का उत्सव आ गया है।

श्रीचै०—जैसी अभी बात हो रही थी, यह लक्ष्मी जी की कोप-यात्रा का उत्सव है। इसे अवश्य देखना है।

सब—यही ठीक है। (सब लोग उचित स्थान पर पहुँचते हैं) (पुन: नेपथ्य में जय-ध्वनि) ॥६७॥

स्वरूप—(देखकर) भगवन् ! यद्यपि यह मान की परिपाटी नहीं है फिर भी ये लक्ष्मी जी अपने वैभव को सूचित करने वाली बड़ी दिव्य ठाठ बाठ से भगवान् के सम्मुख स्वयं जा रही हैं। इससे लगता है कि क्रोध के स्थायी-भाव से जो रौद्र

रस प्रकट हो रहा है वह केवल इन देवी लक्ष्मी जी की चतु-रता है।

पुरी०—स्वरूप ! यह तो सच ही है किन्तु देखो पुन: अद्भुत ही रस है। क्योंकि—मानों लक्ष्मी के कलह को देखकर शेषनाग रथ पर लगी पताकाओं के रूप में अपनी दो हजार जिह्वाओं से दशों दिशाओं को चाटने लगे हैं और रथ में लगे चलने वाले चँवर समूह ऐसे लगते हैं जैसे आकाश रूपी बावली हँसों से घिरी हों, श्वेत-छत्र मानों उस बावली में खिले श्वेत-कमल हों।

और भी ! धूप के सभी ओर फैलते हुए धुयें से लगता है बादल छा गये हों और मृदंग की गम्भीर-ध्वनि के रूप में मेघ गरज रहे हों, श्वेत-मालायें बिलकुल बगुलों की पंक्ति के समान लग रही हैं यह देखकर मयूरगण मत्त होकर नृत्य करने लगे हैं ॥६८॥

अद्वैत—गुणों में रम्भादि को जीतने वाली, लीला युक्त लास्य से पुन: पुन: चारों ओर नृत्य अभिनय करती हुई नर्तकियों, एवं पंखे, पानदान, मणिवाले जल-पात्र आदि लिए सुन्दर दासियों के द्वारा यह लक्ष्मी जी घिरी हुई हैं।

और भी विमान को भी तिरस्कृत करने वाली सुवर्ण-मणियों से बनी चतुर्दोलो पर तेजस्वी-रूप से विराजमान यद्यपि यह क्रोध से अन्धी हो रही हैं फिर भी गर्व से इनका हृदय भरा होने के कारण लगता है कि इनके अन्दर पैतृक अहङ्कार उत्पन्न हो गया है।

स्व०—(उपहास करके) क्या ही मान की चतुरता है ॥६९॥

श्रीचै०—स्वरूप ! मानचातुरी क्या ?

स्व०—जो जैसी होती है वैसी उसकी मानचातुरी होती है।

श्रीचै०—फिर भी सुनूँ तो।

स्वरूप—एक बार श्रीकृष्ण के अपराध करने बाद तथा आकर खुशामद करने पर श्री राधा ने कहा था—क्यों पैरों पर गिरते हो ? मैं रुष्ट नहीं हूँ, आप भी अपराधी नहीं हैं। बिना कारण के बुद्धिमान न क्रोध ही करते हैं और न अपराधी ही होते हैं। जो योग्य होती है उसी से बिहार किया जाता है, तो फिर मुझ अयोग्य से क्या मतलब ? इसलिये हे कृष्ण ! आज से तुम स्वच्छन्द ही रहो। यह है मान-चातुरी। दूसरी विधि भी है-मेरे जाने पर दूर से ही उठ कर खड़ी हो गई, निकट जाने पर आसन हाथ से दिया, बात करने पर मुस्कराकर मधुवर्षी मीठी बोली, आसन के ऊपर चढ़ने पर प्रसन्न हुई, आलिङ्गन करने पर प्रत्यालिङ्गन किया इस प्रकार विरोध न करते हुए भी उसने मनका विरोध प्रकट कर दिया ॥७०॥

श्रीचै०—यह तो पहले से भी अधिक सरस है।

श्रीवास—(हँसते हुए) गोपियों के पास इतना ऐश्वर्य ही कहाँ था ? ऐश्वर्य से ही गर्व होता है—अरे इस मद की महिमा देखो कि-स्वामिनी के गर्व से ही महा गर्व के मद में चूर यह दासियाँ जगन्नाथ के मुख्य मुख्य प्रत्येक सेवक को कमर बाँध कर खींचती हुई स्वामिनी के पैरों पर चोरों के समान लाकर पटक रही हैं। नौकर के अपराध पर स्वामी को दण्ड देना तो सुना था पर यह तो उलटा है, बड़ा आश्चर्य है।

स्वरूप—(श्रीवास से) हे पण्डित ! देखो अपनी देवी की चातुरी। अरे ! इस अचेतन बेचारे रथ का क्या अपराध है इसे नौकर क्यों पीट रहे हैं। मैं निकट ही जा रहा हूँ ऐसा ईश्वर के कहने पर इनका महान् क्रोध शान्त ही क्यों हो गया ॥७१॥

श्रीवास—ईश्वरी की रीति है।

श्रीचै०—श्रीवास ! नारद होने से आपको द्वारिका की लीला प्रिय है अतः तुम्हें ऐश्वर्य अंश में ही विशेष रुचि है। स्वरूप को वृन्दाबन प्रिय है अतः उन्हें उस प्रकार की आनन्द चातुरी ही प्रिय है।

अद्वैत—भगवन् ! यह आपके चरण-कमलों की कृपा से ही हम लोगों का ऐसा सौभाग्य हुआ है कि महोत्सव साक्षात् रूप से हमारी आँखों के सम्मुख उपस्थित हुए हैं।

श्रीचै०—तुम्हारा और क्या उपकार करूँ ॥७२॥

अद्वैत—और क्या उपकार करेंगे ? खेल ही खेल में कलि का नाश कर दिया, भक्ति योग का प्रचार किया और उसमें भी परमगूढ़ प्रेम नामक तत्व का प्रकाश किया। उसमें भी कभी कभी राधा के महाभाव की विशुद्ध विद्या जो रसिकों को परम मङ्गल दायिनी है उसको प्रकट किया है। हमें तो धर्मार्थ कामों से घृणा है, मोक्ष की कभी भी इच्छा नहीं है, हे देव ! यही इच्छा है कि दूसरे लोक में भी तुम्हारे इन्हीं लोगों के साथ रहने को मिले ॥७३॥

श्रीचै०—यही होगा। मैं वृन्दाबन स्थित होकर सरस विलासों से अपने आपको घन आनन्द में मग्न करके रहता हुआ तुम लोगों को भी रुचि के अनुसार शरीर धारण कराकर वृन्दाबन में सदानिष्ठ कर दूँगा। मेरे बड़े कार्य में यही बाकी है उसे पूरा करूँगा। और भी—

जो द्वारिकाधीश के दास्य और सख्य रस के पात्र हैं उन्हें राधामाधव के दास एवं सखा बनाऊँगा। और जो लोग दूर अवतारों के प्रति दास्य और सख्य आदि भाव धारण करते हैं वे लोग भी मेरे प्रति हृदय के भाव अर्पण करेंगे, उन्हें

भी मैं वृन्दावन के परिकरों में कर लूंगा ॥७४॥

अद्वैत—ऐसा ही हो ! आप अपनी इच्छा से जो भी दूसरा स्थान या दूसरी देह देंगे वहीं पर सब जन्मों के स्मरण के द्वारा आपके आश्चर्यमय चरित्र की वन्दना करेंगे। फिर भी हे नाथ ! हमारी प्रार्थना है कि–कविगण कल्प–पर्यन्त केवल आपकी ही विशुद्ध विलास लीला पर ही ग्रन्थ रचें, नर्तकगण उसीका अभिनय करें, सभ्यगण (सज्जन लोग) उसे ही सुनें, निन्दकगण ईर्ष्या को छोड़कर उसी का आन्दोलन से सन्तोष लाभ करें और भूपतिगण तुम्हारी चरण–सेवा में निरत होकर प्रजाओं का पालन करें।

भगवान—तथास्तु (परिशेष में सब का प्रस्थान) ॥७५॥

इति श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटके कुसुमसरोवरनिवासी कृष्णदास–कर्त्तृक अनुवादित महा महोत्सव नामक दशमाङ्क।



आहा ! जिनकी जूठन खाने से मैं काव्य-रचना में समर्थ और सरस्वती का कृपापात्र हुआ। उन्हीं गौराङ्गदेव की गुणावली का कीर्तन करने में मेरा जो कर्तव्य था वही किया है। जो विद्वान् इसमें अपवाद करें वे अन्य विषय सुनें। उन को नमस्कार है कि इस चरित को वे कपोल-कल्पना न जान लें।

श्रीचैतन्य की कथा को अपनी बुद्धि के अनुसार जैसी देखी जैसी सुनी वैसी ही उनकी कृपा से ग्रन्थ में मुझ मूर्ख ने जो लिखदी उसे, हाय ! सारी भक्त–मण्डली के पूर्ण रूप से अन्तर्द्धान हो जाने से, कौन जानेगा, कौन सुनेगा ? सो इससे स्वयं कृष्ण ही प्रसन्न हों।

जिन्होंने उन भागवत-लोगों के दर्शन किये हैं एवं प्रेमार्द्र चित्त होकर उनके साथ खड़े होकर तत्व का निर्णय किया है वे धन्य हैं, किन्तु इस सुख से वञ्चित मुझ जैसे लोग तो जीते हुए ही मृत हैं यदि पुनः मरना है तो जन्म के साथ ही मृत्यु का विधान क्यों नहीं कर दिया ? हे विपरीत दैव ! आपको नमस्कार है।

पृथ्वी के मंगल रूप श्रीगौरहरि शकाब्द १४०७ में अवतीर्ण हुए थे। शकाब्द १४९४ में किसी के मुख से उनकी लीलावली से युक्त यह ग्रन्थ प्रकट हुआ।

इति दशमोऽङ्कः।

इति चैतन्यचन्द्रोदयनाटकं समाप्तम्।

इति सम्वत् २०२५ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी गुरुवार तदनुसार दिनाङ्क ११-४-६८ को राधारमणमन्दिर, वृन्दाबन में गोस्वामी श्रीदामोदर महाराज जी के घर में बाबा कृष्णदास के द्वारा यह अनुवाद समाप्त हुआ।

परिशिष्टमें

★★★

गौडदेश पाखंड मेंटि कियो भजन परायन।
करुणासिंधु कृतज्ञ भये अगतिन गति दायन।
दशधा रस आक्रांत महतजन चरण उपासे।
नाम लेत निष्पाप दुरित तिहि नरके नासे।
अवतार विदित पूरब मही उभै महंत देह धरी।
श्रीनित्यानंद कृष्णचैतन की भक्ति दशों दिसि विस्तरी॥

कवित्त (भक्तमाल में)

गोपिन के अनुराग आगे आप हारे श्याम,
जान्यो यह लालरंग कैसे आवे तन में।
एतो सब गौर तनी नख शिख बनी ठनी,
खुल्यो यो सुरंग अंग अंग रंगे बन में।
श्यामताई मांझ सो ललाई हू समाइ जाहि,
ताते मेरे जान फिरि आई यह मन में।
जसुमति सुत सोई शचीसुत गौर भये,
नये नये नेह चोज नाचे निज गन में॥
आवै कभूं प्रेम हेमपिण्डवत तन होत,
कभूं संधि संधि छुटि अंग बढ़ि जात है।
और एक न्यारी रीति अश्रु पिचकारी मानो,
उभै लाल प्यारी भावसागर समात है।
ईशता बखान कहाँ करो सो प्रमाण याको,
जगन्नाथ क्षेत्र नेत्र निरखि साक्षात है।
चतुंभुज षट्भुज रूपलै दिखाय दियो,
दियो जो अनूप हित बात पात पात है॥
(प्रियादास जी कृत भक्ति रसबोधिन्याम्)

प्रेमाकुलत्वदशा

शोष ये रहिल प्रभुर द्वादश वत्सर।
कृष्णेर विरह स्फूर्त्ति हय निरन्तर॥
श्रीराधिकार चेष्टा यैछे उद्धव दर्शने।
एइमत दशा प्रभुर हय रात्रि दिने॥
निरन्तर हय प्रभुर विरह उन्माद।
भ्रममय चेष्टा सदा प्रलापमय वाद॥
रोमकूपे रक्तोद्गम दन्त सब हाले।
क्षणे अंग क्षीण हय क्षणे अंग फुले॥
गम्भीरा भितरे रात्रे नाहि निद्रा लव।
भित्ते मुख शिर घषे क्षत हय सब॥
काँहा नाहि शुनि सेइ भावेर विकार।
येइ भाव हय प्रभुर शरीरे प्रचार॥
हस्त पद सन्धि यत वितस्ति प्रमाणे।
सन्धि छाडि भिन्न हय चर्म रहे स्थाने॥
हस्त पद शिर सब शरीर भीतरे।
प्रविष्ट हय कूर्म्मरूप देखिते प्रभुरे॥
मनेते शून्यता वाक्ये हाहा हुताश।
एइमत अद्भुतभाव शरीरे प्रकाश॥

(चै० च० मध्यलीला २ परिच्छेद)

उद्दण्ड नृत्ये प्रभुर अद्भुत विकार।
अष्ट सात्त्विक भावोदय हय समकाल॥

मांस-व्रण सह रोमवृन्द पुलकित ।
शिमुलीर वृक्ष येन कराटके वेष्टित ॥
एकेक दन्तेर कम्प देखि लागे भय ।
लोके जाने दन्त सब खसिया पड़य ॥
सर्वांगे प्रस्वेद छुटे ताते रक्तोद्गम ।
ज ज ग ग ज ज ग ग गद्गदवचन ॥
जलयंत्र धारा येन वहे अश्रुजल ।
आश पाश लोक यत भिजिल सकल ॥
देह कान्ति गौर कभु देखिये अरुण ।
कभु कांति देखि येन मल्लिकापुष्प सम ॥
कभु स्तम्भ कभु प्रभु भूमिते पडय ।
शुष्क काष्ठ सम हस्त पद ना चलय ॥
कभु भूमे पड़े कभु हय श्वास हीन ।
याहा देखि भक्तगणेर हय प्राणक्षीण ॥
कभु नेत्रे नासाय जल मुखे पड़े फेन ।
अमृतेर धारा चन्द्र विम्बे वहे येन ॥
(चै० च० मध्यलीला १३ परिच्छेद)

अपारं कस्यापि प्रणयिजनवृन्दस्य कुतुकी,
रसस्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः ।
रुचिं स्वामावव्रे द्युतिमिह तदीयां प्रकटयन्-
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ (स्तवमालायाम्)

राधांग-शश्वदुपगूहनतस्तदाप्त-
धर्मद्वयेन तनुचित्तधृतेन देव ।
गौरदयानिधिरभूरयि नन्दसूनो,
तन्मे मनोरथलतां सफलीकुरु त्वम् ॥
(संकल्पकल्पद्रुमे)

❀ अथ पत्रीयम् ❀

स्वस्ति स्वस्ति महामहामहिमदिग्विख्यातकीर्तिप्रभा-
पूरस्नापितविश्वपूजितजितामित्रस्वमित्रायुषः ।
कृष्णाख्येन्दोः महोमहेन्द्रमहसः यत्पंकजेषु ध्रुवं,
रुक्मिण्या विलुठंति कोटिगुणिताः शश्वत्प्रणामोऽस्मयः ॥१॥
शिवमिह भगवन् भवतः प्रसादलेशोदयात् परिस्फुरति ।
कार्यं चैतदवेहि स्वयमीश्वर ! सावधानमनाः ॥२॥
श्रुत्वा श्रुत्वा गुणगणकथाः कञ्जनाभ ! त्वदीयाः,
प्रोढ़प्रेम्नां त्रिजगति सतां चेतसि प्रोतमूलाः ।
रूपं तापत्रयभयहरं माङ्गल्यं च प्रसिद्धं
त्वय्याविष्टं न चलति मनागप्यधीरं मनो मे ॥३॥
क्वाहं मानुष्यभिमतसतां विध्यधीनप्रसिध्यत्,
कायः प्राणेन्द्रियगणमनो वाच्यवस्थानुवृत्तिः ।
क्व श्रीनाथ त्वमुरुमहिमानन्तपूरप्रताप-
श्रीमन्नारायण इह विधेरप्यधीशानुभावः ॥४॥
का पुष्पेषु प्रतिकृतिवयो वेषभूभृत्कुमारी,
विद्यावेषद्रविणविनयश्रीवयोभिः स्वयोग्यम् ।
त्वामंशेन प्रकटितनृपाकारमाश्रित्य लीला-
मिच्छत्यन्तर्जगति न पतिं पुण्यवत्यादिविष्णो ! ॥५॥
तस्माच्चेतस्यहनि भवतः प्रेम संपत्श्च योगे,
साक्षाद्द्रष्ट्यंतनुसुजने पुण्यपुष्पोरुदाम्ना ।
त्वामुद्दामश्रियमतितरां प्रेष्ठमिष्टं वृणेऽहं,
त्वं चारभ्य स्वहृदि सुतरां मां विजानीहि जायाम् ॥६॥

त्वामुद्वाहाभ्युदयविधिना वृष्णिवीर त्वदर्हां
चैद्योऽह्रद्य घटयितुमहं नैव मन्ये कदाचित् ।
को वा सर्वागमसमुदितं पूज्यमन्यं सुविद्वान्,
भागं नागान्तक समुचितं वायसाय प्रदद्यात् ॥७॥
पूर्वं किंचित्सुकृतमसकृच्छीलितं चेत्त्वदर्थे,
दानध्यानाध्ययनविधिना देवगुर्व्वर्चनाख्यम् ।
तत्प्राणेश स्वयमिहमहन्नेत्य मामुद्वह त्वं,
निर्द्धूताशाः सपदि शिशुपालादयः सन्तु भूपाः ॥८॥
अत्राहूय क्षितिपतिगणैश्चेदिपालस्य पुत्रं,
काले कस्मिन्नपि मम पिता दास्यते माममुष्मिन् ।
तत्पूर्वेद्युः प्रविशतु भवान् मद्विवाहोत्सवस्य,
प्रख्याताभिर्नरपतिपुरं सेनिकाभिः परीतम् ॥९॥
तत्रायुष्मन्नृपपतिपुरं कामपालादिभिः स्वैः,
जित्वा युद्धे यदुवर निजं वीर्य्यमाकीर्य्य शुल्कम् ।
राजन्यानां जगति विदितो राक्षसो यो विवाह-
स्तेन त्वय्यस्खलितमनसां मां कुरुष्व स्वकीयाम् ॥१०॥
बन्धूनन्तः पुरपरिसरस्थान च हत्वा कथं वा,
नेष्योमि त्वां नरपतिपुरादित्थमाशंकसे चेत् ।
माया मूलावतरणचतुर्विंशति श्रीनिकेत-
प्रायस्तत्र प्रियतम भवानेव ते त्यभ्युपायम् ॥११॥
यद्वा तद्वासरशुभसतां पूर्वं पूर्वाह्णिकौलीं,
देवीमम्बामथ निजकुलाचारधर्मेण यायाम् ।
तस्माद्वीरांगणभुवि समागत्य शक्त्या हर त्वं,
मामुद्वोढुं नृपवर वहिर्भूभृदंतः पुरस्य ॥१२॥
इत्थं शक्रस्मरहरविरिञ्च्यादिवन्द्यांघ्रियुग्म,
श्रीमच्छ्रीमन्मुखनलिन मे सुप्रसादं विदध्याः ।

नो चेत्कुर्य्यां व्रतमनशनं प्राणहानावशानाद्,
येनावश्यं भवसि सुलभः कृष्ण जन्मान्तरेऽपि ॥१३॥
इत्युक्तिर्युक्तिभाजः क्षितिपतिदुहितुर्व्यक्तविन्यस्तवर्णाः
कर्णावापूर्य्य सम्यक् सुखमखिलगुरोस्तस्थुषीराशु बिभ्रन् ।
पत्रं कृष्णस्य हस्तोपरिविलसत्यंगुलीयांशुजाल-
र्विप्रः सप्रेमचेताः स्फुटमिव शिवसंगमस्यैव चक्रे ॥१४॥
सोऽप्यन्तर्वांछितार्थप्रतिकृतिलिखनं पत्रमालोक्य शश्व-
द्विष्वक्संजातरोमोद्गमकमलतनुः श्रीपरिष्वज्यमानः ।
स्नेहेनासीमशोभाभरगुरुपरितो मेदुरस्निग्धदृष्टिः,
सानन्दं नन्दसूनुः स्मरनिभृतमनास्तां सतृष्णां विदध्यौ ॥१५॥

इति श्रीमदीश्वरपुरीपादविरचितायां
श्रीकृष्णपत्री समाप्ता

देवकीनन्दनाष्टकम्

मृगमदमदभृंगोन्निद्रनीलाम्बुजाली-
नवजलधरधाम-श्यामलैकस्वरूपम् ।
अतिचपलविशालनीलनेत्राम्बुजाभं
मृदुमधुरचरित्रं देवकीपुत्रमीड़े ॥१॥
दशनमणिरुचिभिः स्निग्धविम्बाधरान्तं
शशधरकरशुद्धचद्वन्धुजीवाभिरामम् ।
दधतमतिमनोज्ञस्मेरवक्त्रारविन्दं
प्रमदमदनवेशं देवकीपुत्रमीड़े ॥२॥
स्वकरनलिनलक्ष्मी साक्षिवंशीनिनादा-
द्रुतहृदयशयाभिर्गोपिकाभिः परीतम् ।

निजकिशलयनिंदानन्दिपादाम्बुजन्म
द्वयमयनयनाभिर्दं विकीपुत्रमीडे ।।३।।
अनुगतिगतिदानस्थूलशाखोटवाटी-
कृतसुरतरुवीथीवीतसुत्रामलोकम् ।
मदकलगजराजस्मारिलीलाविहारं
करकलितकदम्बं देवकीपुत्रमीडे ।।४।।
हृदिगतभृगुकन्याधन्यविम्बाधरौष्ठ-
स्मरमदपरिपीतस्मेरविम्बाधरौष्ठम् ।
निजमुखमनुविम्बं विभ्रतं कौस्तुभाख्यं
मणिमुरसि बहन्तं देवीकीपुत्रमीडे ।।५।।
मदगुरुनिविरीषन्स्मेरकांचीकलापा-
प्रकटकपिशवासप्रोल्लसच्छ्रिनितम्बम् ।
मलयपवनलीलाखेलनान्दोलि-भाल-
स्थलचलदलकान्तं देवकीपुत्रमीडे ।।६।।
बृहदुरसि निजोरः साक्षिलक्ष्मीकटाक्षै
रिवकुवलयमालमाभृतामादधानम् ।
मदमदनधनुः श्रीविभ्रमद्भ्रू दृगब्ज-
स्मरशरमभिलोलं देवकीपुत्रमीडे ।।७।।
कचभुवि नववर्हापीड़मापीड़यन्तं
तदुपरि नवनीपानीकमुत्तं सयन्तम ।
तदुपरि नवगुञ्जापुञ्जमिन्दीवरैकं
तदुपरि कलयन्तं देवकीपुत्रमीड़े ।।८।।
देवकीपुत्रलीलाढ्यं देवकीपुत्रबन्धुना ।
ईश्वरेणाष्टकं सृष्टं पठतां प्रेमभक्तिदम् ।।९।।

(३०० वत्सर हस्तलिखित अप्रकाशित कापी से)

श्रीशचीनन्दनविलक्षण-चतुर्दशकम्

मुमोच विषयस्पृहां ब्रजविलासिनीनागरः
करोति चरितं मुनेर्मुनिविचिन्त्यपादाम्बुजः।
तटे लवणवारिधेः स्वपिति दुग्धसिन्धुं जहौ
विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ।।१।।

अहो ! ब्रजबिहारी श्रीहरि आज विलक्षण चेष्टारूप में शचीनन्दन गौरहरि स्वरूप से विहार कर रहे हैं। आपने ब्रज-रमणियों के नागर होकर भी विषयस्पृहा का त्याग किया है, मुनिगण चिन्तनीय चरण-कमल वाले होकर भी आज मुनि-चरित्र का आचरण कर रहे हैं और क्षीरसागर का त्याग कर लवणसमुद्र के तट पर विलास कर रहे हैं ।।१।।

करोति हरिकीर्त्तनं भुवनकीर्त्तनीयः स्वयं
स्वयं नटति कौतुकान्नटयति त्रिलोकीमपि ।
जहौ गरुड़वाहनं भ्रमति मुक्तयानः क्षितौ
विलक्षणविचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ।।२।।

स्वयं भुवन-कीर्त्तनीय होकर भी हरिसंकीर्त्तन कर रहे हैं, स्वयं कौतुकवश नृत्य कर रहे हैं तथा त्रिजगत् के जीवों को संकीर्त्तन में नचा रहे हैं, आप अपने वाहन गरुड़ का त्याग कर मुक्तयान से अर्थात् पदब्रज में पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं,

इस प्रकार ब्रजबिहारी श्रीहरि आज विलक्षण चेष्टारूप में शचीनन्दन गौरहरि-स्वरूप से बिहार कर रहे हैं ।।२।।

दधावरुणमम्बरं परिजहार पीतांशुकं
सुवर्णमुरलीं जहावकृत वंशदण्डग्रहम् ।
स्थितोऽसितकलेवरः कनकगौरदेहोऽभवद्
विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ।।३।।

अहो ! पीताम्बर का त्याग कर आपने अरुणवस्त्र का परिधान किया है, स्वर्णमुरली का त्याग कर वंशदण्ड धारण किये हुए हैं, श्याम-स्वरूप आप अब सुवर्ण के समान गौरवर्ण हुए हैं इस प्रकार ब्रजबिहारी श्रीहरि आज विलक्षण-चेष्टा रूप में शचीनन्दन गौरहरि स्वरूप से बिहार कर रहे हैं ।।३।।

स्वयं भवति निर्गुणं भजति यत्तमुच्चैर्गुणं
जगन्नमति खेलयाऽखिलजगत्प्रणम्यः स्वयम् ।
अहो ! श्रयति विग्रहं परिमितं चिदात्मा विभु-
र्विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ।।४।।

अहो ! स्वयं गुणातीत होकर भी कारुण्य-सौहार्दादि उन ऊँचे ऊँचे गुणों का भजन कर रहे हैं, अखिल जग के प्रणम्य होकर भी लीलावश त्रिजगत् को नमस्कार करते हैं, स्वयं चिदात्म विभु-स्वरूप होकर भी परिच्छिन्नाकार अर्थात् विग्रह-रूप को धारण कर रहे हैं इस प्रकार ब्रजबिहारी श्रीहरि आज विलक्षण चेष्टारूप में शचीनन्दन गौर-हरि-स्वरूप से बिहार कर रहे हैं ।।४।।

स्वभक्त-कृपयाचिरादवततार कृष्णः स्वयं
प्रकाशयति नात्मनः परममायिको मायया ।
जगत्त्रितयमोहनो भवतिः मूर्च्छितः कीर्त्तने
विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ।।५।।

स्वयं श्रीकृष्ण अपने भक्तों के प्रति करुणा करते हुए अवतीर्ण हुए हैं, परम मायावी आप अपने को प्रकाश नहीं कर रहे हैं, अपनी माया से त्रिजगत् को मोहित करते हैं, परन्तु आज संकीर्त्तनरस में मूर्च्छित हो रहे हैं, इस प्रकार ब्रजबिहारी श्रीहरि आज विलक्षण चेष्टारूप में शचीनन्दन गौरहरि-स्वरूप से बिहार कर रहे हैं ।।५।।

स्वनाम-गुणकीर्त्तने पुलक-रोदनोत्कम्पन-
प्रमोद-हसितैरलं नटति निस्त्रपं गायति ।
विरिञ्चि-शिवसेवितो लुठति भुवि भूमण्डले
विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ।।६।।

अहो ! अपने नाम-गुणावली-संकीर्त्तन में पुलक, रोदन, उत्कम्प, प्रमोद-हास्यादि के साथ नृत्य कर रहे हैं, लज्जा-रहित होकर आप गान कर रहे हैं, ब्रह्म-शिवादि देवताओं से सेवित होकर भी भूमण्डल में पृथ्वी पर लुण्ठित हो रहे हैं, इस प्रकार ब्रजबिहारी श्रीहरि आज विलक्षण चेष्टारूप में शचीनन्दन गौरहरि-स्वरूप से बिहार कर रहे हैं ।।६।।

विधाय निजकीर्त्तनं भ्रमति भक्तवृन्दावृतो
निरस्यति महाभ्रमं सदसतामपि प्रेक्षिणाम् ।
प्रसिञ्चति जनोत्कर-श्रुतिविले सुधां हुङ्कृतै-
र्विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ।।७।।

आप अपने संकीर्त्तन-विधान कर भक्तों से आवृत होकर भ्रमण कर रहे हैं, दशक साधु-असाधु सबके भ्रम का निरासन कर रहे हैं, सुमधुर हुंकारों से मनुष्यों के कानों में सुधा-सिञ्चन कर रहे हैं, इस प्रकार ब्रजविहारी श्रीहरि आज विलक्षण-चेष्टा-रूप में शचीनन्दन गौरहरि-स्वरूप से विहार कर रहे हैं ॥७॥

उपेत्य तपनात्मजामनु गृहीतवान् जान्हवी-
महो ! तदनु तां जहौ लवणसिन्धुमालम्बते ।
स्वदारुमयविग्रहं प्रणमति स्वयं मायिको
विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ॥८॥

आप सूर्यतनया यमुना का त्याग कर गंगा-तट का आश्रय कर रहे हैं, बाद में गंगा को त्याग कर लवण-समुद्र का आश्रय किया है, परम मायावी आप जीवशिक्षार्थ अपने दारुमय विग्रह में विराजमान जगन्नाथ स्वरूप को प्रणाम करते हैं, इस प्रकार ब्रजबिहारी श्रीहरि आज विलक्षण-चेष्टारूप में शचीनन्दन गौरहरि स्वरूप से विहार कर रहे हैं ॥८॥

हरिं वद हरिं वदेत्यविरतं जनानादिशे—
द्दरावतरणे पुरा प्रथित–गोपभाषां जहौ ।
नहि स्मरति गोपिकां न रमणीयवृन्दावन
विलक्षण विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ॥९॥

अहो ! "हरि बोलो हरि बोलो" इस प्रकार सर्वदा मनुष्यों को आदेश कर रहे हैं तथा पूर्व-प्रथित गोपभाषा अर्थात् ब्रज-जनप्रयुज्यमान भाषा का त्याग किये हुए हैं, अपनी ब्रजरमणियों

का स्मरण नहीं कर रहे हैं एवं परम रमणीय श्रीवृन्दाबन को भी स्मरण-पथ में नहीं ला रहे हैं वे तो सर्वदा जीव जगत् उद्धार में चेष्टित हैं, इस प्रकार ब्रजबिहारी श्रीहरि आज विलक्षण चेष्टारूप में शचीनन्दन गौरहरि-स्वरूप से बिहार कर रहे हैं ॥९॥

श्रुति-प्रमितवाक्यतो भवति नित्य एकः स्वयं
धरास्वतिकुतूहलादुपलधातुदार्वादिभिः ।
स्वमूर्त्ति-निर्वहार्पणात् स्वयमनेकतामप्यगाद्
विलक्षणविचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ॥१०॥

अहो ! श्रुति प्रमाणित वचनों से आप नित्य ही एक रूप होकर भी अपनी मूर्त्ति-निर्वाहार्थ कौतुकवश बहु स्वरूप धारण करते हैं, इस प्रकार ब्रजविहारो श्रोहरि आज विलक्षण-चेष्टा रूप में शचीनन्दन गौरहरि-स्वरूप से विहार कर रहे हैं ॥१०॥

चुचुम्ब परिरभ्य यो ब्रजवधूसहस्रं पुरा
सुधांशुरुचिराटवी-रचितरासचक्रोत्सवे ।
अहो ! नयनगोचरं न कुरुते स नारीजनं
विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ॥११॥

अहो ! जिन्होंने पहले चन्द्रकिरणों से परम रुचिर श्री-वृन्दावन में रासोत्सव में सहस्र व्रजवधूओं का परिरम्भण कर चुम्बन किया था वे आज नारी-दर्शन नहीं कर रहे हैं, इस प्रकार ब्रजविहारो श्रीहरि आज विलक्षण-चेष्टारूप में शची-नन्दन गौरहरि-स्वरूप से विहार कर रहे हैं ॥११॥

स्वयं त्रिजगतां गुरुः स्वकृपया कृतोऽन्यो गुरुः
स्वयं हि यतिनां गतिर्यतिरभूत् स्वयं लीलया ।
अजः समजनि क्षितौ मनुजविग्रहः स्वेच्छया
विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ॥१२॥

आप त्रिजगत् के गुरु होकर भी कृपावश दूसरे को गुरु बना रहे हैं, परमहंसमुनि गण के गति होकर भी स्वयं लीला-वश संन्यासी बने हुए हैं, अज होकर भी पृथ्वी में अपनी इच्छा से मनुष्य शरीर धारण किये हुए हैं, इस प्रकार ब्रजविहारी श्रीहरि आज विलक्षण चेष्टारूप में शचीनन्दन गौरहरि-स्वरूप से विहार कर रहे हैं ॥१२॥

पुराण-पुरुषः स्वयं प्रकृतिभावमालम्बते
नटत्यपि निरन्तरं प्रचलदङ्गभङ्गैरलम् ।
क्वचिद् विलपति क्षितौ हरिहरिध्वनिव्याकुलो
विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ॥१३॥

स्वयं पुराण-पुरुष होकर भी प्रकृति भावापन्न हो रहे हैं, चलायमान अंग-भङ्गिमा से सर्वदा नृत्य कर रहे हैं, कहीं व्याकुल होकर हरि-हरि ध्वनि करते हैं, इस प्रकार ब्रजविहारी श्रीहरि आज विलक्षण-चेष्टारूप में शचीनन्दन गौरहरि स्वरूप से पृथ्वी पर विहार कर रहे हैं ॥१३॥

क्षणं नटति गायति द्रवति रोदिति ध्यायति
क्षणं हसति माद्यति स्खलति गर्जति भ्राम्यति ।

स्वभक्तसमुदाहृतः स्वगुणनाम-कोलाहले
विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ॥१४॥

अहो ! क्षण भर नृत्य कर रहे हैं, गान कर रहे हैं, द्रवायमान हो रहे हैं, रोदन कर रहे हैं, ध्यान कर रहे हैं, पुनः क्षणभर हँस रहे हैं, उन्मत्त सा हो रहे हैं, मूर्च्छित होकर धरती में गिर रहे हैं, गर्जना कर रहे हैं, भ्रमण कर रहे हैं, अपने गुण-नाम कोलाहल में अपने भक्तों से संकीर्त्तित हो रहे हैं, इस प्रकार ब्रज-विहारी श्रीहरि विलक्षण चेष्टा रूप में शचीनन्दन गौरहरि-स्वरूप से विहार कर रहे हैं ॥१४॥

विलक्षण-चतुर्दश-प्रमितपद्यमत्यद्भुतं
सदाशिव-रसज्ञया सरसमेतदास्वादितम् ।
शचीसुतपदाम्बुजे रसनिविड़भक्तिप्रदं
विशन्तु सुखसागरे परिपठन्तु सन्तश्चिरम् ॥

इतिश्रीसदाशिवकविराजविरचितं
श्रीशचीनन्दनविलक्षण—
चतुर्दशकं समाप्तम् ॥

विलक्षण-चतुर्दश नामक अत्यद्भुत यह पद्य (स्तोत्र) है, जिसकी रचना सदाशिव-कविराज की जिह्वाने की । जो इसका सरस आस्वादन करता है वह शचीनन्दन गौरहरि पद-कमल में रस-निविड़ भक्ति प्राप्त करेगा । साधुगण इसका चिरकाल पठन करें एवं सुखसागर में गोता लगावें ॥१५॥

इति कृष्णदास के द्वारा श्रीसदाशिव-कविराज
विरचित श्रीशचीनन्दन-विलक्षण-चतुर्दश
नामक स्तोत्र का भाषानुवाद
समाप्त हुआ।

समय-चैत्र कृष्णा-सप्तमी, सम्बत् २०२५
मंगलवार, दिनाङ्क ११ मार्च, १९६९

स्वदयितनिजभावं यो विभाव्य स्वभावात्
सुमधुरमवतीर्णो भक्तरूपेण लोभात्।
जयति कनकधामा कृष्णचैतन्यनामा
हरिरिह यतिवेशः श्रीशचीसूनुरेषः ॥

(बृहद्भागवतामृते)

